''वैदिकवाङ्मय में विश्वधर्म''

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाडा विश्वविद्यालय, औरंगाबाद

संस्कृत (पीएच्.डी.) विद्यावाचस्पति उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबंध

शोध-छात्रा

भारती सुरेखा राजेंद्र

जवाहर कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय,

अणदूर, तह. तुलजापूर, जि. उस्मानाबाद

शोध-निर्देशिका

डॉ. क्रांती व्यवहारे

सहयोगी प्राध्यापिका, संस्कृत विभाग,

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाडा विश्वविद्यालय, औरंगाबाद

जून - २०१८

प्रमाणपत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **भारती सुरेखा राजेंद्र** ने पीएच्.डी. (संस्कृत) उपाधि हेतु **"वैदिकवाङ्मय में विश्वधर्म"** इस विषय पर शोध प्रबंध मेरे निर्देशन में पूरा किया है। यह इनका मौलिक शोध कार्य है। इसे परीक्षणार्थ प्रस्तुत करने की अनुमति प्रदान की जाती है।

स्थान : औरंगाबाद **शोध-निर्देशिका**

तिथि :

डॉ. क्रांती व्यवहारे
सहयोगी प्राध्यापिका, संस्कृत विभाग,
डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाडा
विश्वविद्यालय, औरंगाबाद

शपथ-पत्र

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाडा विश्वविद्यालय, औरंगाबाद के अंतर्गत पीएच.डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत **"वैदिकवाङ्मय में विश्वधर्म"** इस विषय पर यह शोध प्रबंध मैंने **सहयोगी प्राध्यापिका डॉ. क्रांती व्यवहारे** के मार्गदर्शन में पूर्ण किया है। यह शोध प्रबंध मेरी अपनी मौलिक कृति है। मेरे अनुमान के अनुसार इस विषय पर अन्य किसी विश्वविद्यालय में शोध कार्य नहीं हुआ है।

शोध-छात्रा

स्थान : औरंगाबाद

तिथि : / /२०१८

भारती सुरेखा राजेंद्र
जवाहर कला, विज्ञान एवं वाणिज्य
महाविद्यालय,अणदूर,
तह. तुलजापूर, जि. उस्मानाबाद

ऋणनिर्देश

ओं त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ ।

प्रथम नारी शिक्षा के पुरस्कर्ता आर्य समाज के संस्थापक गुरूदेव दयानन्द जी को मैं शतशः नमन करती हू ।

मैं अपने पितृव्य (स्व. स्वामी दीक्षानन्द जी) के कारण ही गुरूकुल में पढ़ सकी अनेक वेदों की ऋचाएँ, श्लोक,सूत्रादि कंठस्थ कर सकी मैं उनको भावभीनी श्रद्धांजली अर्पित करती हूँ । वे वात्सल्य की मूर्ति थे, आजीवन ब्रह्मचारी रहकर भी उन्होंने अनेकों दीन दुःखी छात्रों को प्रेममय पितृछाया प्रदान की, उनके सुख दुःख को समझते हुए उन्हें अपने आश्रम में अध्ययन का सुअवसर दिया। उनमें से अनेकों अभियन्ता, आयुक्त, प्राध्यापक आदि विविध पदों पर कार्यरत हैं। उनका जीवन इतना मधुमय था कि लोगों का लगाव उनसे ऐसा था जैसा मधुमक्खियों का फूलों से। वे त्याग की मूर्ति थे।तपस्या की चरमसीमा थे, मानवता की पराकाष्ठा थे, और अपरिग्रह के व्रती थे। असंख्य गुणों का दर्शन मैंने उनके जीवन में किया है। उनमें से एक गुण भी मैं सार्थक कर सकी तो स्वयं को धन्य समझूँगी ।

प्रातः स्मरणीय कन्या गुरूकुल नरेला के अधिष्ठाता एवं कुलपति पितृतुल्य स्वामी ओमानन्द जी को श्रद्धांजलि समर्पि करती हूँ। जिनका तपःपूत जीवन हम सभी छात्राओं के लिए प्रेरणास्रोत रहा है। गुरूकुल में अध्ययन काल में उन्होंने जो पाठ पढ़ाया - यान्यस्माकं सुचरितानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि यह मैं कैसे भूल सकती हूँ जो जीवन का मूल मंत्र है अतः उनके आदेश का यथाशक्ती पालन करते हुए उन्हें शिरसा भावपूर्ण श्रद्धांजली अर्पित करती हूँ ।

मेरे जीवन के शिल्पकार आदरणीय गुरूदेव देवेंद्रनाथ शास्त्रा जो वेद शास्त्रों के पण्डित, व्याकरण के विदग्ध आचार्य, दर्शनों के दिवाकर, उपनिषदों के दोग्धा थे, संगीत के मानो गन्धर्ववेद थे निर्झर की शीतल वारिधारा सम उनका जीवन मेरे लिए सदैव प्रेरणा प्रद

रहा, है, और रहेगा। आज वे हमारे मध्य नही हैं अन्यथा उनकी चरण धूली से मैं अपने मस्तक को पावन करती।

गुरूकुल में अध्ययन करते समय अनेक गुरूजनों का मुझे स्नेह मिला उन सभी को मैं भूयो भूय: नमन करती हूँ।

गुरूकुल शिखापूरम् की आचार्या एवं उपाचार्या डॉ. सुमैधा जी एवं डॉ. सुकाम जी जिनका वैदूष्य एवं जीवन मेरे लिए सदैव आदर्श रहा, है, और रहेगा। उन्हें भी मैं शिरसा नमन करती हूँ तथा उनकी जीवनचर्या का अनुसरण करणे का प्रयास करती हूँ।

मेरे जीवनसर्वस्व स्वर्गीय श्रीमान् राजेन्द्र जी भारती को जिनसे मैंने कर्म योग का पाठ पढ़ा जिनमें माँ का वात्सल्य देखा, स्नेह सरिता का दर्शन किया। उन्होंने चरैवेति चरैवेति इस वाक्य को अपने जीवन से धन्य बना दिया। २० वर्ष के उनके सहवास में मैंने अनेक मानवीय गुणों का दर्शन किया उस कर्मयोगी की कर्मकुशलता का स्मरण ही रोमाञ्च खड़े कर देता है। ऐसे पतिदेव के सानिध्य में मैं धन्य हो गई । मेरा जीवन सफल बनाने में वे संकट सेतु बने । उनसे अधिक किसे समझ में आई होगी

न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवा : यह वेद वाक्य मानो उन्हें प्रेरणा देता रहा। वे अशेष कर्मो के निष्काम कर्मयोगी थे। वे कुशल वैद्य थे, कुशल कृषक थे, वाणिज्य शास्त्र के कुशल ज्ञाता थे । उनके गुणों का वर्णन करने हेतु वर्णमाला अपूर्ण है । अत: मैं उन्हें मौन श्रद्धांजलि अर्पित करती हूँ । मैं इश्वर से प्रार्थना करती हूँ कि वे जहाँ भी हों उनकी आत्मा को अपूर्व शान्ति प्रदान करें।

मेरी शोध निर्देशिका डॉ. क्रांन्ती महोदया का तो मुझे सदैव स्नेह ही मिला है। वे एक प्रतिभासम्पन्न एवं प्रत्युत्पन्नमति व्यक्तित्व की धनी हैं। उनकी मृदुता, मधुरता, ममता मेरे लिए सदैव प्रेरणा प्रद रहेगी। अनेकों संकटो से सामना करने का सामर्थ्य उन्होंने मुझे दिया है। जब जब मैं हताश हुई तब तब उन्होंने मुझे उत्साह वारिधारा से शान्त करके शक्ति प्रदान की है। वे गुणों की मालारूपक हैं। ऐसी निर्देशिका, सखी एवं भगिनी को मैं अन्त: करण से मूक धन्यवाद देती हूँ और उनकी कृतज्ञता में ही रहना चाहती हूँ।

मेरे सभी सहयोगी जवाहर महाविद्यालय के प्राध्यापक एवं प्राध्यापिकाओं ने समय समय पर मुझे प्रेरणा देते हुए मेरा उत्साह वर्धन किया है। डॉ. मीना जाधव, प्रा. गडसिंग, डॉ. मुद्कण्णा, प्रा. हिरेमठ मॅडम एवं ग्रंथालय परिचारिका स्वामी मॅडम, डॉ. मुसांडे सर, प्रा. डॉ. अंकुश कदम, प्रा. नळगे सर, प्रा. सोमगोंडे सर, प्रा. राऊत सर , प्रा. जानमाने सर आदि सभी ने मेरा उत्साह वर्धन करके कार्य को इतिश्री की ओर ले जाने में सहायता की है अत: मैं जवाहर महाविद्यालय के प्राध्यापक वृंद को हृदय से धन्यवाद देती हूँ ।

जिन्हे मराठवाडा के साने गुरूजी कहा जाता है ऐसे वात्सल्यमय पिता एवं संस्था के शिल्पकार सि.ना. अलुरे गुरूजी जिन्होंने मुझे अपनी संस्था में कार्य करने का सुअवसर देकर अनुगृहीत किया है मैं उन्हें शिरसा वंदन करती हूँ। उन्होंने मुझे जो सुअवसर दिया है उसको स्वर्ण बनाने की प्रतिज्ञा करती हूँ।

मेरे दो फूल ओमदेव एवं सोमदेव इन बालको कों मै मन से आशीष देती हूँ। शोध कार्य करते समय दोनों ने मेरे कार्य में काई व्यत्यय न आये इसका पूरा ध्यान रखा है। मेरा भतीजा चिरंजीव जगजित विद्यासागर पुरी एवं मेरी भाभी चंद्रकला पुरी जिन्होंने मेरे कार्य को पुरा करने में अनमोल सहयोग दिया हैं। उनको भी में हृदय से आशीष देती हूँ।

इस प्रबंध में जो उदाहरण दिये हैं, उनमें से अधिकांश कण्ठस्थ होने के कारण उनके लेखक, पुस्तक और प्रकाशन नाम नहीं दिये गये हैं। विद्वद् वृन्द से मेरी यह नम्र विनती है कि, अनेक समस्याओं का सामना करते हुए मैंने इस प्रबंध को पुरा किया है अत: त्रुटियों के लिए मैं क्षमा प्रार्थी हूँ।

इस शोध प्रबंध का संगणकीय टंकन का कार्य सुचारू रूपसे और कम समय में करनेवाले साहिल कॉम्प्युटर्स के संचालक इरफान इनामदार , हसन इनामदार, उनके सहकारी, नितीन भालेराव, राहुल पडघन, युवराज सरोदे, मेहमुद शेख, अर्जुन, कचरे सर, अनिल खंदारे, धम्मपाल गवई इन सभी की मैं आभारी हूँ।

भारती सुरेखा राजेंद्र
शोध-छात्रा

''वैदिक वाङ्मय में विश्वधर्म''

विषयानुक्रमणिका

अध्याय	अध्याय का नाम	पृष्ठांक
प्रथम	वैदिक वाङ्मय में विश्वधर्म का स्वरूप एवं संकल्पना	०१-४३
द्वितीय	वैदिक वाङ्मय का परिचय	४४-१२८
तृतीय	वैदिक वाङ्मय में समाजव्यवस्था स्वरूप एवं विशेषताएँ	१२९-१७९
चतुर्थ	वैदिक वाङ्मय में विश्वारोग्य एवं विश्वशान्ति	१८०-२२६
पंचम	उपसंहार	२२७-२४८
•	संदर्भ ग्रंथसूची	२४९-२५२

प्रथम अध्याय

वैदिक वाङ्मय में विश्वधर्म का स्वरूप एवं संकल्पना

---

१. प्रस्तावना

२. वेद,

३. धर्म,

४. विश्वधर्म का संक्षिप्त स्पष्टीकरण

५. धर्म की परिभाषा,

६. विश्वधर्म की संकल्पना

७ अध्ययन हेतु

८. शोधविधाएँ

९. आधारभूत साहित्य। आर्ष ग्रन्थ सम्पदा

१०. सन्दर्भसूचि : ग्रन्थ।

ओ३म् -[२] स्वस्तिपन्थामनुरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।[१] ऋग्वेद ५-५१-१५-२०४

पुनर्ददताघ्नता जानता संगमेमहि।।

ओ३म्-[१] विश्वानिदेवसवितर्दुरितानि परासुव।[२]

यद्भद्रं तन्न आसुव।।

धर्म एवं विश्वधर्म की संकल्पना

१. वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।[३]

२. यतोऽभुदय निःश्रेयससिद्धिसः धर्मः।[४]

३. धृति क्षमा

४. वेद स्मृति

५. न हि सत्यात्परो धर्मः।[५]

६. यदुचितंतद्धर्मम्, सन्मार्ग धर्म है।

७. यदनुचितं तद्धर्मम्। असन्मार्ग अधर्म है।

विवेकधर्म है। अविवेक अधर्म है।

पुण्यधर्म है- पाप अधर्म है।

दानधर्म है- याचना अधर्म है

अहिंसा धर्म है	-	हिंसा अधर्म है
संयम धर्म है	-	असंयम अधर्म है
पवित्रता धर्म है	-	अपवित्रता अधर्म है
सन्तोषधर्म है	-	असन्तोष अधर्म है।
तप धर्म है	-	असहिष्णुता अधर्म है।
अपरिग्रह धर्म है	-	परिग्रह अधर्म है।
स्वाध्यायधर्म	-	अनाध्याय अधर्म है।

प्रथम अध्याय

वैदिक वाङ्मय में विश्वधर्म का स्वरूप एवं संकल्पना

हाँ लेखनि। हृत्पत्र पर लिखनी तुझे है यह कथा,

दृक्कालिमा में डूबकर, तैयार होकर सर्वथा।

स्वच्छन्दता से कर तुझे करने पडे प्रस्ताव जो,

जग जाये तेरी नौंक से सोये हुए हों भाव जो।। **(भारत-भारती)**[१]

(अतीतखं मैथिली शरणगुप्त)

प्रस्तावना :

वेद भारतीय संस्कृति की आत्मा हैं। ये मानवजाति के लिये प्रकाश स्तम्भ हैं। विश्व को धर्म और संस्कृति का ज्ञान देने का श्रेय वेदों को है। वेद ही विश्व-शान्ति, विश्वबन्धुत्त्व और विश्व कल्याण के प्रथम उद्‌बोधक है। वेदों ने ही मानव जाति की समुन्नति का मार्ग प्रशस्त किया है। वेद ज्ञान के अथाह भंडार हैं।

"विद्यन्ते ज्ञायन्ते लभ्यन्ते एभिर्धर्मादि - पुरूषार्था इति वेदा "[१]

इस अध्याय में धर्म की परिभाषा स्वरूप एवं संकल्पना का चिन्तन किया गया है।

धर्म की परिभाषा :

जिन सत्कमों से इहलौकिक तथा पारलौकिक उन्नति होती है उन सभी उत्तम कार्यों को वैदिक वाङ्मय में धर्म कहा गया है। वैशेषिक दर्शन के प्रणेता महर्षि कणाद ने प्रथम अध्याय के द्वितीय सूत्र में यह स्पष्ट किया है कि धर्म किसे कहते हैं-

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिःस धर्मः (वै.द.प्र.अ.सू.२) पृ.५३"[२]

चोदना लक्षणोऽर्थो धर्मः (पूर्वमीमांसा-जैमिनि दर्शन १-१-२) (सूत्र २)"[३]

इसी तथ्य को समक्ष रखकर विश्वधर्म का स्वरूप प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है। महर्षि मनु ने धर्म को दशविध कहा है।

धृतिक्षमादमोऽस्तेयंशौचमिन्द्रिय निग्रहः।

धीर्विद्यासत्यमक्रोधःदशकं धर्म लक्षणम्।। (मनुस्मृति-अ.६-९२ पृ.२९०.)"[४]

[१]**धृतिः-** सदा धैर्य रखना, [२]**क्षमा- :** निन्दा

स्तुति, मानापमान हानिलाभ आदि दुःखों में सहनशील रहना,

[३]**दम-** मन को सदैव उत्तमकर्मों में मग्न रखना, अस्तेय[४]-चोरी न करना, अर्थात् बिना आज्ञा के छल, कपट द्वारा परपदार्थ को स्पर्श करना चोरी कहाता है। **शौचम-**राग, द्वेष पक्षपात छोड़कर अभ्यंतर अशुद्धि को दूर करना, और जल फेनिल आदि से बाह्य पवित्रता रखना, **६ इन्द्रिय निग्रहः-** अपनी कर्मेन्द्रियों तथा ज्ञानेन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना।

[७]**धी :-** मद्यादि मादक द्रव्य जो कि बुद्धिनाशक हैं, उनका सेवन कभी न करना, दुर्जनों की संगति से दूर रहना, सदा सज्जनो के निकट निवास करना, आलस्य प्रमाद आदि का त्याग करके सदैव बुद्धिबर्धक दुग्धदधिधृतादि द्वारा पुष्ट होकर योगाभ्यास ब्रह्मचर्य पालन आदि श्रेष्ठ कर्म करना अर्थात सदसद विवेक के साथ जीवन यापन करना, धी का कार्य है।

[८] **विद्याः-** पृथ्वी से लेके परमेश्वर परमाणु तक सभी प्रकार का यथार्थज्ञान और उन से लाभ लेना। [९]**सत्यमः-** जैसा आत्मा में वैसा मन में, जैसा मन में वैसा वाणी में, जैसा वाणी में वैसा कर्म में सत्याचरण करना। **अक्रोध :-** क्रोधादि दोषों को त्यागकर शान्त्यादि गुणों को ग्रहण करना, इन दस तत्त्वों को धर्म कहा है। सत्यार्थ प्रकाश

धर्म का स्वरूप : भौतिक उन्नति के साथ मानव की आध्यात्मिक उन्नति भी अत्यावश्यक है। मनुष्य में केवल देह और बुद्धि ही नही अपितु आत्मा भी है। वह न केवल देह की आकांक्षाओं की पूर्ति और बौद्धिक जिज्ञासाओं की तृप्ति चाहती हैअपितु आत्मोन्नति किये बिना उसे सन्तुष्टि नहीं मिलती है। जिस प्रकार देह के विकास के लिए भोजन की, बुद्धि के विकास के लिए ज्ञान की आवश्यकता है उसी प्रकार आत्मा के विकास के लिए धर्म अर्थात् सत्कर्मों की आवश्यकता है। धर्म सन्मार्ग का प्रेरक एवं संरक्षक है। धर्म के द्वारा ही

मानव अपने ज्ञान, क्रिया एवं भावना से सम्बन्धित **सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्** के चरम आदर्शों का सम्पादन कर सकता है। धर्म के बिना मानव कदापि पूर्णता को नही पा सकता। धर्म नीति का प्राण है। वह मनुष्य को नीति और सदाचार की ओर ले जाता है। वह मानव समाज का नियामक है। विश्व का कोई भी धर्म ऐसा नही है जिसने सदाचार का पाठ न पढ़ाया हो।

विश्व धर्म की संकल्पना :- धर्म का तात्पर्य है सन्मार्ग। वेद, उपनिषद, दर्शन, ब्राह्मण, आरण्यक, वेदाङ्ग स्मृतिग्रन्थ, सूत्रग्रन्थादि में धर्म की संकल्पना इस प्रकार है- : यही विश्वधर्म का स्वरूप है।

अ.क्र.	**स्वरूप**
१)	अहिंसा।
२)	सत्य ।
३)	अस्तेय।
४)	ब्रह्मचर्य ।
५)	अपरिग्रह ।
६)	शौच।
७)	सन्तोष ।
८)	तप ।
९)	स्वाध्याय।
१०)	ईश्वरप्रणिधान।
११)	परिश्रम।
१२)	सद्भाव
१३)	समता।

१४)	स्नेह।
१५)	सौहार्द।
१६)	औदार्य।
१७)	विश्वबन्धुता।
१८)	विश्वशान्ति।
१९)	विश्वारोग्य।
२०)	विश्वकल्याण।
२१)	सात्विक आहार।
२२)	सदाचार।
२३)	एकता।
२४)	आत्मचिन्तन।
२५)	गोरक्षण।
२६)	अक्षक्रीडा निषेध।
२७)	मद्यपान निषेध।

२८)	भ्रूणहत्या निषेध।
२९)	बहुपत्नीनिषेध।
३०)	पंचमहायज्ञ ।
३१)	षोडशसंस्कार।
३२)	सप्तमर्यादा।
३३)	आदर्श दिनचर्या।
३४)	योगाभ्यास।
३५)	दान।
३६)	मातृधर्म।
३७)	पितृधर्म।
३८)	पुत्रधर्म।
३९)	पुत्रीधर्म।
४०)	स्वसाधर्म।
४१)	भ्रातृधर्म।
४२)	आचार्यधर्म।
४३)	पतिधर्म।
४४)	पत्नीधर्म।
४५)	कुटुम्बधर्म।
४६)	ग्रामधर्म।

४७)	समाजधर्म।
४८)	राजधर्म।
४९)	राष्ट्रधर्म।
५०)	स्नुषाधर्म।
५१)	सासधर्म।
५२)	श्वसुरधर्म।
५३)	देवरधर्म।
५४)	ननांदाधर्म।
५५)	भ्रातृजायाधर्म।
५६)	पितामहधर्म।
५७)	मातामहधर्म।
५८)	मातामहीधर्म।
५९)	पितामहीधर्म।
६०)	मातुलधर्म।
६१)	बन्धुधर्म।
६२)	मित्रधर्म।
६३)	छात्रधर्म।
६४)	सहाध्यायीधर्म।

यह मेरी विश्वधर्म संकल्पना है।

ये सभी विश्वधर्म के नाम से जाने जाते हैं।

उद्धृत संदर्भ

१)	अहिंसा परमो धर्म :।
२)	न हि सत्यात्परो धर्मः नानृतात्पातकं महत्। (सत्यार्थ प्रकाश पृ.४७६)
३)	सत्यमेव जयते नानृतम्। (मु.उ.उ. अंक पृ २८८) (सत्यार्थ पृ.४७६)
४)	अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्। (यो.द.सा.पा.सू.३७-षड्द-पृ १५३)
५)	ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः । (सू - ३८ ष)
६)	सत्य प्रतिष्ठायां सर्वक्रियाफलाश्रयत्वम् (सू - ३६ ष)
७)	अपरिग्रह स्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः। (सू - ३९ ष)
८)	अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः। (सू - ३५ ष)
९)	शौचात्स्वाङ्गजुगुप्सापरैरसंसर्गः। (सू - ४० ष)
१०)	सन्तोषादनुत्तम; सुखलाभः। (सू - ४२ ष)
११)	द्वन्द्वसहनं तपः।
१२)	स्वाध्यादिष्ट देवता सम्प्रयोगः। (सू - ४४ ष.द.पृ.१५४)
१३)	ईश्वर प्रणिधानाद् वा। (सू - ४५ ष)
१४)	न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः। (ऋग्वेद - ४-३३-११-पृ.६८०)
१५)	परस्परं भावयन्तः श्रेयःपरमवाप्स्यथ। (गीता - ३-१२)
१६)	सहनाववतु स नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै। (अथर्व का. ३ सू. ३० मं-२ तै. आरण्यक)
१७)	सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु (अथर्ववेद -कां. १९-१५.६ पृ.१७७)
१८)	वसुधैव कुटुम्बकम। (हितोपदेश)
१९)	मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्स्वसारमुतस्वसा। का.३.३०.-३ पृ. ३२१ (२१)
२०)	मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे। (यजुः ३६-१८)

२१)	भोगाः न भुक्ता वयमेव भुक्ताः तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा। (महाभारत)
२२)	ओं द्यौःशान्तिः (शान्तिपाठ) (युजः-३६-१७)
२३)	आसन-प्राणायाम - स्थिरसुखमासनम्। (यो.द.सा.पा. षड्दर्शनम्-४६)
२४)	श्वासप्रच्छ्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायाम्: । (यो.द.सा.पा.) "४९
२५)	सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वेसन्तु निरामयाः। (सुखकामना)
२६)	संगच्छध्वं संवदध्वम्-संगठनसूक्त (ऋग्वेद १०-१९१-मं.-१,२,३,४)
२७)	भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवाः -(यजुः -२५-२१- पृ.११५)
२८)	आहारशुद्धौ सत्वशुद्धि सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः ।
२९)	प्रत्यहं पर्यवेक्षत नरश्चरितमात्मनः। किन्नु मे पशुभिस्तुल्य किन्नु सत्पुरुषैरिति (मुखोद्गत)
३०)	गावो विश्वस्य मातरः । (मुखोद्गत)
३१)	अक्षसूक्त - ऋग्वेद १०-सू.३४ पृ-५८३
३२)	ब्रह्मचर्यसूक्त - अथर्ववेद
३३)	यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म । (शतपथ ब्राह्मण -१-७-३-५)
३४)	इयं ते यज्ञिया तनुः । (यजु.४-१३ पृ.११८)
३५)	अश्मा भवतु मस्तनु : । (स्वा.सं ३३३)
३६)	स्वेन क्रतुनासंवदेत। ऋग्वेद-१०-३१-२)
३७)	दह्यान्ते ध्मायमानानां धातुनां हि यथामलाः। तथेन्द्रियाणां दह्यन्तेदोषाःप्राणस्यनिगृहात् । (मनुःद-७१)
३८)	कार्यः शरीरसंस्कार : ।
३९)	सप्तमर्यादा कवयस्ततक्षु । (ऋग्वेद-पृ ४४८-१०-५-६ स्वा.सन्दोह पृ.३५७)
४०)	अनुव्रत पितु पुत्रः । अथर्ववेद (काण्ड-३-सू.३०), पृ-३२०-३२१

४१)	वयं राष्ट्रे जागृयाम :
४२)	आब्रह्मन् । (यजुर्वेद -२२-२२ पृ.८३१)
४३)	स्तुतामया ।
४४)	त्र्यबकं यज्ञामहे (यजुर्वेद-अ.३-६० पृ.१०५)
४५)	शिवसंकल्पमन्त्र (यजु: -३४-१-२,३,४,५,६, पृ. १११२)
४६)	प्रातरुत्थान -सायं शयन मन्त्रा: (ऋग्वेद -७, सू.४१-१,२,३,४,५, पृ.

अध्ययन हेतु

सम्प्रति धर्म की दयनीय अवस्था का अवलोकन करते हुए इन पंक्तियोंका विस्फोट स्वभाविक है

धर्म कागज का खिलौना बन गया ।

चंद बूदें गिर पडीं और गल गया ।।

९ धर्म को मानव जाति के अहित एवं अनिष्ट का साधन बनाया गया है। धर्म के नाम पर मानव मानव में वैमनस्य पैदा किया है। एवं हिंसा भडकाई गई है। समाज में धर्म के नाम पर अनेक प्रकार की कुरीतियों एवं अन्ध विश्वासोंका बीज बोया गया है। इतना ही नही प्रक्षेप के व्दारा धर्म ग्रन्थों को कलंकित भी किया गया है। आवश्यकता इस बात की है कि धर्म के वास्तविक स्वरुप उसकी उपादेयता एवं आवश्यकता का व्यापक स्तर,पर प्रचार एवं प्रसार किया जाये, जिससे अज्ञानी लोगों को विनाश के गर्त मे गिरने से बचाया जा सके । धर्म के महनीय तत्वों की सार्थकता तभी है जब उसके सत्य स्वरुप को जाना जाये और त दनुकूल आचारण किया जाये।

यह मानव जाति का सबसे बडा दुर्भाग्य रहा है कि धर्म को सदा धर्ममार्तंडो ने विकृत रूप मे प्रस्तुत किया है। उसके उदात्त सत्य स्वरूप को छिपाया गया है। धर्म का सत्य स्वरुप जानने हेतु जब हम अपने प्राचीनतम साहित्य ऋग्वेद का अवलोकन करते हैं

तो देखते हैं कि इस शब्द का प्रयोग विशेषण या संज्ञा शब्द के रूप में हुआ है । प्राय: यह शब्द धर्मन् है और इसका प्रयोग नपुंसकलिंग मे हुआ हे यद्यपि यह शब्द उभयलिंगी है।

ओं ऋतं सत्यं तपो राष्ट्रं श्रमो धर्मश्च कर्म च। १७

भुतं भविष्यदुच्छिष्टे वीर्यं लक्ष्मीर्बलं जले।। (अथर्व ९.९.)[५]

अर्थवेद के इस मन्त्र में धर्म शब्द का अर्थपुण्यफल प्रतीत होता है किन्तु समयकेसाथ परिवर्तन के कारण धर्म वर्णाश्रम की विधियों के समीप आ जाता है। उपनिषद् काल में धर्म व्दारा वर्ण और आश्रमों के आचारों एवं संस्कारों का तथ्य स्पष्ट होता था। यह तथ्य छान्दोग्योपनिषद २.२३ सें सिध्द होता है **त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोडध्ययनं दानमिति प्रथमस्तपः एवेंति व्दितीयोबह्मचर्याचार्यकुल वासी तृतीयोऽ त्यन्तमात्मानमाचार्य कुले अवसादयन् सर्व एते पुण्यश्लोका भवन्ति। ब्रह्मसंक्योऽमृतत्वमेति। (छान्दोग्योपनिषद्** २.२३)

धर्म को जिस रूपमें धमशास्त्रों, धर्मसूत्रों और स्मृतियों में वर्णित किया गया है, उसके अन्तर्गत चार प्रकार के धार्मिक नियमों का निर्देश किया जा सकता है।

१. वर्णधर्म। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र

२.आश्रमधर्म। बह्मचर्य, विवाह, वानप्रस्थ, संन्यास

३.संस्कार श्रृंखला

४.पुरूषार्थ चतुष्टय

यह अत्यन्त आवश्यक है कि धर्म के उदात्त अंशो एवं आदर्शों को वास्तविकता के धरातल पर उतारा जा सके। इसी उद्देश्य से यह शोधप्रबन्ध लिखने का प्रयत्न किया जा रहा है।

अध्ययन का विशेष प्रयोजन

१. धर्म की वास्तविकता जानना।

२. धर्म के विकृत स्वरुप का परिष्करण करना ।

३. वैदिक वाङ्मय मै विहित धर्म अर्थात मानव कल्याण का सत्यमार्ग जानना। स्वयं लाभान्वित हो सकल विश्व को लाभान्वित करना।

४. ऋषियोंकी पावन परम्परा का प्रचार प्रसार करना।

५. मानव जीवन के लक्ष्य को जानना । (अन्तिलक्ष्य मोक्ष)

६. षोडशसंस्कारों की इत्थंभूत जानकारी एवं वर्तमान समय में उनकी आवश्यकता एवं उपादेयता का विश्लेषण करना।

७. यज्ञ संस्कृति तथा समाज व्यवस्था का वास्तविक स्वरूप विश्व के समक्ष प्रस्तुत करना।

८. चारों आश्रमों के कर्तव्यों को जानना।

९. समाज में एकता, समता, शान्ति सौहार्द, सहानुभुति, आरोग्य, औदार्य, विश्वबन्धुत्व, सभ्यता, संस्कार, संस्कृति, समृध्दि, मानवता, आत्मीयता इन उदात्त तत्वों को साकार करना।

१०. वैदिक वाङ्मय विषयक भ्रान्तियों को समूल नष्ट करना।

११. मनसा,वाचा,कर्मणा धर्म का पालन करते हुए

१२. अन्ततो गत्वा तदरुप होना (मोक्ष को प्राप्त करना)।

१३. **वेदोऽखिलो धर्ममूलम्** यह स्मृति वाक्य सिध्द करना। (मनु २.६)[६]

१४. **वेदों के कृण्वन्तो विश्वमार्यम्** आदेश को चारों दिशाओं में गर्जना के साथ पहुँचाना सफल बनाना समस्त विश्व को मनसा वाचा, कर्मणा आर्य (श्रेष्ठ) (सन्मार्गगामी) बनाना।

१५. सर्वज्ञानमयो हि सः (मनु.२.६)"[७] वेद समस्त विद्याओं के भण्डार है।

१६. अनन्ता वै वेदाः (ब्राह्मणग्रन्थ) वेदों में अनन्त ज्ञान है।

१७. यद् वेदेष्वभिहितं तत्सत्यम् (उपनिष्द)

जो वेदों में कहा है वह सत्य है।

संस्कृत वाङ्मय में वेदों को सभीविद्याओं का मूल स्त्रोत और प्रकाशक घोषित किया है। वेद अचिन्त्य, अतर्क्य, मोक्षदायक, धर्माधर्म का निर्णायक,परमप्रमाण है। वेद चारों वर्णो,आश्रमों, षोडश सस्कारों, पुरुषार्थचतुष्टय एवं तीनो कालों का ज्ञानदाता है । वेदसूक्ष्म वैज्ञानिक शक्तियों का परिचायक, व्यवहार साधक राजनीति की शिक्षा देनें वाला, मानवमात्र का चक्षुर्वत् मार्गदर्शक है।

धर्म के मौलिक वत्व :

धर्म से मानव जीवन में समरसता, विश्व में शान्ति तथा सद्भाव की स्थापना हो सकती है। सभी धर्मो का लक्ष्यमानव कल्याण ही है। धर्म ही अपूर्णताओं, वेदनाओं एवं निरसता से ऊपर उठाता है। धर्म मानव जीवन का आधार है। धर्म विश्वमें एकता सुरक्षाऔर शान्ति की स्थापना करता है। धर्म समाज, राष्ट्र एवं विश्व का संचालक है। मानव में विश्वबन्धुत्व की उदात भावना, प्रेम, सहानुभूति, त्याग ,दया आदि दिव्यगुण जागृत हों यही सब धर्मो का उपदेश है। सच्चा धर्म शत्रुता एव कलह से मुक्ति दिलाता है।

श्रुतिः स्मृति : सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
सम्यक् संकल्पजं कामो धर्ममूलमिदं स्मृतम्।।
(याज्ञवल्क्य स्मृति १.७)"[८]

मनुस्मृति में वेद, स्मृति, वेदज्ञों के आचरण के साथ आत्मा की तुष्टि को भी धर्मकहा गया है। वेदोऽखिलो धर्म मूलं स्मृतिहशीले चतद्विदाम्।

आचारश्चैव साधूनामात्म सन्तुष्टिरेवच।।

(मनु.२.६)"[९]

वेद और धर्म शास्त्रों पर दृष्टिक्षेप करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि धर्मशास्त्रों में जो कुछभी कहा गया है असका आधार वेद ही है। वेद की मान्यताओं के अनुसार ही धर्मसूत्रों के नियमों की रचना हुई है। वेद की संहिताओं में और ब्राह्मण ग्रंथो में धर्मसूत्रों के विषयों का प्रसंगत: उल्लेख प्रचुर मात्रा में मिलता है।

१ उदा. विवाह, उत्तराधिकार, श्राध्द आदि। संहिताओं और ब्राह्मणों में जिस समाज और सभ्यता का दर्शन होता है वह धर्मशास्त्रों की व्यवस्थाओं की व्यवहारिक पृष्ठभूमि है। आख्यानों में भी धर्म शास्त्रीय नियमों का पोषण हुआ है। जिनका उपदेश धर्मशास्त्रों ने दिया है-१-ब्रह्मचर्य का महत्व। २-उत्तराधिकारी और सम्पत्ति का विभाजन। ३-यज्ञ और अतिथिसत्कार ऐसे ही हैं जिन पर धर्मसूत्रोंसे पूर्ववर्त्ती वैदिकवाङ्मय में अनेक स्थलों पर विचार हुआ है। मानव जीवन के ४ पुरुषार्थ समन्वित होकर ही उपयोगी बनते हैं पृथक् प्रथक् नहीं। वैदिक वाङ्मयस्थ धर्म केवल आदर्शवादी नहीं है अपितु वह व्यवहारिक जीवन में वास्तविकता और आदर्श का समन्वय करता है। यह धर्म मनुष्य से भिन्न नहीं है यह उसकी मौलिक अर्हता है, जिसके अभावमें मानव पशुतुल्य हो जाता है। धर्म मनुष्य के समुचे व्यक्तित्वसे संबध्द है। वह मानव के सभी कार्यो पर सूक्ष्म दृष्टिपात करता है और नियमन करता है। मनुष्य को प्रत्येक स्थिति और व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में देखता है। सुख में दु:ख में, समृध्दि एवं विपत्ति में भी उसके सामाजिक, पारिवारिक, वैयक्तिक और पारलौकिक जीवन पर विचार करता है और उन्हें इस प्रकार व्याप्त करता है कि सम्पूर्ण जीवन धर्ममय प्रतीत होता है। संस्कारों की श्रृंङ्खला रेल गाड़ी की पटरी की तरह बनाई गई है। जिससे जीवन की गाड़ी उतरने पर अनर्थ ही होता है।

मानव जीवन में भिन्न भिन्न अवस्थाओमें उस उस अवस्था के उपयुक्त आश्रमों के नियमोंका विधान संस्कारोंकी पावनी परम्परा को और भी पुष्टिप्रदान करता है। जिसें हम दर्शन, नैतिकता,कानून और शासन कहते हैं। वे सभी धर्मकेअभिन्न अंग है । **धर्मो रक्षति रक्षितः** धर्म की रक्षा में ही हमारी सुरक्षा समाहित है। धर्महीन उच्छृङ्खल जीवन विनाश की और ले जाता है। धर्म जीवन को एक उद्देश प्रदान करता है। एक सुनिश्चित मार्ग: दिखाता है जिस पर चलकर मानव अपना आध्यात्मिक आधिदैविक एवं आधिभौतिक विकास कर सकता है। मनुष्य अपने जीवन के त्रिविध तापों को पराभूत करके आनन्द सागर में निमज्जन करता है। पारलौकिक जीवन की स्पृहासे प्रेरित होता है। परलोक की यह अभिलाषा कल्पना की तरङ्ग में बहने वाली कवि की काल्पनिक कृति (रचना) नहीं है वास्तविक जीवन की अनुभूति की अभिव्यक्ति है। वैदिकवाङ्मयस्थ धर्म और दर्शन अभिन्नता के दर्शक हैं। धर्म के साथ अर्थ, काम, और मोक्ष का सम्बन्ध हैं। यही मानव जीवन काअन्तिम लक्ष्यहै। धर्मआदर्शवादी एवं यथार्थवादी है मिथ्या कल्पाना नहीं है।

धर्म आचरण की चरमसीमा है। आचार उसका मूलाधार है,उसकी नीव हैऔर उसके कतिपय मौलिक तत्व हैं, जो उसे स्थायित्व प्रदान करते हैं। महर्षि मनु ने कहा है **आचार हीनं न पुनन्ति वेदा आचारः परमो धर्मः** आदि। वैदिक वाङमयस्थ धर्म में मानवीय प्रतिभा के विकसित रूप का दर्शन होता है। उसमें मानवजीवनकी अनेक समस्याओं पर सूक्ष्मतासे चिन्तन किया गया है और एक समुचित दिशासमाज को प्रदान की गई है सदाचार उस धर्म का मूल तत्त्व है और धर्म के ज्ञान के साथ ही उसका अनुष्ठान एवं व्यवहारही उसके वास्तविक प्रयोजन को सिध्द करता है। गौतमसूत्र के अनुसार-धर्मिणां विशेषेण स्वर्गं लोक धर्मविदाप्नोति ज्ञानाभिनिवेशाभ्याम् (गौतमधर्मसूत्र)

धर्मवेत्ता को अनुपम सुख की प्राप्ति होती है यतो हि वह ज्ञानुसार कर्म करता है । धर्म का शाश्वत सन्देश बशिष्ठ ऋषि के अनुसार इस प्रकार है -

धर्मं चरत माधर्मं सत्यं वदत मानृतं दीर्घ पश्यत माह्स्वं परं पश्यत मापरम् (वशिष्ठधर्मसूत्र) इसी प्रकार का मार्मिक उपदेश उपनिषद् मे समावर्तन संस्कार के समय जब छात्र गुरुगृह का त्याग करके, विश्व मे शान्ति, सुख, समृध्दि, आनन्द एवं आरोग्य की रक्षा हेतु प्रजाकी रक्षा हेतु संसार में आता है तब गुरू उपदेश देते हैं। उत्तम आचारण, सत्यभाषण हेतु स्वाध्याय (आत्मचिन्तन) **प्रत्यहं पर्यवेक्षेत नरश्चरितमात्मनः किन्नु मै पशुभिस्तुल्य किन्नु सत्पुरुषोरिती मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्य देवो भव।अतिथि देवो भव। यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वया सेवितव्यानि नो इतराणि। ये के च तत्र विद्वांसब्राम्हणाः तेषां आसनेन प्रश्वसितव्सम् श्रध्दया देयम्। संविदादेयम्। अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तिविचिकित्सा वा स्यात्। ये तत्र ब्राम्हणाः विदवाँस, सदाचारिणः, वेद वेत्तारः, ब्रम्हवेत्तारः समर्शिनः, युक्ता, अयुक्ता, अलूक्षा धर्मकामास्यु, यथा ते तत्र तथा तत्र वर्तेथाः, एष आदेश। एष उपदेश, एष वेदोपनिषदादेशः। एतदनुशासनम्। एवमुपासितव्यम्।** एवं चैतदुपास्यम् [७] इति (तैत्तिरीयोपनिषद १, ११, १, ४,)[१०] धर्म का आचरण कर अधर्म का नही, सत्य बोल, असत्यंनही, संकुचित दृष्टि मत रख दूर तक देख हीन वस्तु देखकर अपना विचार हीन मत बना। श्रेष्ठ वस्तु को देखो और जीवन का लक्ष्य सदा ऊँचा बनाए रखो, धर्म का मूलाधार सदाचार है। आचार के आधार पर ही समाज का निर्माण हुआ है।

आचारः परमो धर्मः सर्वेषामिति निश्चयः। हीनाचारः परितात्मा प्रेत्य चेह च नश्यति।। (वशिष्ठधर्मसूत्र-६-१)[११]

आचार हीन व्यक्ति के लिऐ इह लोक और परलोक कहीं भी सुख नही है। कोई व्यक्ति वेद और शास्त्र के ज्ञान में भले ही पारंगत हो यदि आचार से भ्रष्ट है तो सम्पूर्ण धर्म ज्ञान उसे कोई लाभ नही दे सकता ना ही आनन्द । आचार की इस महिमा के कारण ही सदाचार को धर्म का साधन माना है। एक और धर्म का मूल आधार नीति है दुसरी और नीति दर्शन का व्यवहारिक पक्ष है। इस प्रकार धर्म, दर्शन और नीति एक दूसरे के पूरक है

पृथक नहीं। वस्तुतः सदाचार वह कसौटी है जिसपर व्यक्ति की योग्यता का आकलन होता है। चरित्रहीन विद्वान् की विद्वत्ता निरर्थक होती है। उँचे पद पर आसीन और परोपदेश कुशल व्यक्ति का छदम् व्यापार एवं अनैतिक आचरण जब प्रकाश में आता है, तो दुनिया की आँखो में धूल झोंकने की उसकी सभी चालों पर लगाम लग जाती है। आचार और ज्ञान का समन्वय तथा परस्पर समायोजन ही हमारी नैतिक भावना का प्रथम सूत्र है। जिसने महान् नीति, दार्शनिकों एवं अलौकिक प्रतिभायुक्त पुरुषों को जन्म दिया है। भारतीय नीतिवाङ्मय (नीतिशास्त्र) जब किसी नियम का विधान करता है, तब वह मानव की स्वाभाविक कमजोरियों को भी ध्यान में रखता है। प्रत्येक अवसर पर वह मनोविज्ञान के अनुसार मनुष्य के आचरण में उत्कर्ष लाने की व्यवस्था करता है। वह जानता है की, गलती मनुष्य से होती है, मनुष्य पतनोन्मुख होता है यह स्वभाविक है। इन दुष्प्रवृत्तियों से दूर होने में ही वह मानव कल्याण की सम्भावना का दर्शन करता है।

वैदिक वाङ्मयस्थ धर्म में न केवल मनुष्यों को अपितु देवताओं को भी अनैतिक आचरण की ओर उन्मुख दिखाया है। उनके लिए भी आचार की पवित्रता को सर्वोपरी बताया गया है।

सूर्योदितेऽ स्तमिते शयानं विमुञ्चति श्रीर्यदिचक्रपाणि- मुखोद्गत

पाप और प्रायश्चित की धारणा के पीछे भी सदाचार के अतिरिक्त और क्या हो सकता है ?

हमारे धर्मसूत्रों में मानव को पर्याप्त महत्त्व मिला है, इस महत्व की एक कसौटी है कि, वह सदाचार का पालन करे। हमारा धर्म कहता है कि, इस संसार में मनुष्य अधम कर्म से पाप कर्म से सन जाता है। पाप और प्रायश्चित्त का विचार धर्मसूत्र में नितान्त भौतिक या व्यवहारिक है, इनका साक्षात् शरीर से संबध है क्यों कि पाप का साधन तो शरीर ही है इसे यातना देना यज्ञ,जप,दान उत्तम विचार और परोपकार की प्रेरणा देते हैं। इससे पाप का प्रकाशन और प्रायश्चित भी हो जाता है। तप उपवास, यज्ञ एवं जप धर्म में आस्था उत्पन्न करके पुनः उत्तम आचरण की प्रेरणा देते है।

प्रस्तावना :

सम्प्रति हम देख रहे हैं कि वैश्विकीरण तो हो रहा है किन्तु व्यापार की दृष्टि से मानवता का वैश्विकीरण दृग्गोचर नहीं हो रहा है। मनुष्य भौतिकता की दृष्टि से तो एक दूसरे के समीप आ गया है, लेकिन मनुष्य मनुष्यतासे कोसों दूर हो रहा है। आत्मीयता, उदारता, सुहृदता, एकता., बंधुता, संयम आदि शब्द शेष हो रहे हैं। चारों ओर ईष्या द्वेष, स्वार्थान्धता अन्याय, अत्याचार, अनीति, शोषण, व्यभिचार आदि विषधरों का विषाक्त साम्राज्य फैला हुआ है।

यदि इस जागतिकीकरण के बाजार में विश्वधर्म की ओर ध्यान नहीं दिया गया तो ये समस्त आविष्कार व्यापार, उद्योग, विकास आदि मानव जाति को विनाश की ओर ले जाएंगे।

विश्वधर्म की संकल्पना एवं स्वरूप

जिन सत्य अहिंसादि व्रतों से मानव समाज सुखमय जीवन व्यतीत कर सके जिससे मानव मात्र का ईहलौकिक एवं पारलौकिक उत्कर्ष तथा कल्याण हो सके उसे विश्वधर्म कहा जाता है। मैने इसी परिभाषा को समक्ष रखकर समस्त सत्कर्मो को विश्वधर्म यह संज्ञा दी है। प्रत्येक धर्म मानव जीवन के 'सत्यं शिवं सुन्दरम' के आदर्शो का त्रिवेणी संगम है। प्रत्येक धर्म संस्थापकों ने सुधारकों ने संतों ने गहन साधना, चिन्तन, मनन के उपरान्त अन्तःचैतना द्वारा चरमसत्ता के साक्षात्कार से प्राप्त अनुभूतियों के आधार पर अनुयायियों को नैतिक एवं आध्यात्मिक आदर्श प्रदान किया है। सन्तों महात्माओं ऋषिमुनियों ने परमेश्वर के साक्षात्कार से श्रेष्ठ ज्ञान का उपार्जन किया और परमेशवर के संदेश को जन-जन तक पहुँचाया। प्रत्येक धर्म का मूल, एक चरम, अनंत एवं दिव्य सत्ता की अनुभूति अप्रमेय के प्रति वन्दना, अदृष्ट को पाने की लालसा, परमपिता से प्रेम , सानिध्य तथा एकता की स्थापना है।

अन्ततो गत्वा जिस प्रकार सभी नदियाँ समुद्र में एक रूप हो जाती हैं उसी प्रकार सभी धर्मो का निचोड अर्थात् सार भी मानवता में मिलता हैं। मार्ग अनेक हैं, लेकिन गन्तव्यस्थान एक ही है। विविधधर्मो के सिद्धांतो, आदर्शों, परम्परों रीति रिवाजों में विभिन्नता होते हुए भी कतिपय सामान्य गुण एक जैसे हैं। इसी सत्य की अभिव्यक्ती अंग्रेजी के इस कथन से स्पष्ट होती है :

"Religions are maney but Religion is one" उपनिषद भी इसी तथ्य की ओर इंगित करते हैं - यत्र विश्वं भवत्येक नीडम्

गवामनेकवर्णानां क्षीरस्यास्त्येकवर्णता।[९]

तथैव सर्वधर्मांणां तत्त्वस्यापि एक वस्तुता। इसी तथ्य को अभिनव ने इस प्रकार प्रकट किया है।

संज्ञासु केवलमयं विदुषां विवाद :। वेदों का भी यही निनाद है,

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति। अन्यत्र आर्यभाषा में भी

कहा है, हे प्यारे यदि भेद है तो नाम ही को भेद।

जो जल लहरत उदधिमें वही ओस के स्वेद में

(मानव की सेवा में विश्व के प्रमुख धर्म पृ.क्र.१८४)"[१२]

''विश्व के प्रमुखधर्मो का संक्षिप्त सार''

१. **हिन्दू धर्म :** हिन्दूधर्म परमात्मा की सर्वव्यापकता, आत्मा की अमरता तथा आत्मा एंव परमात्मा के अन्तरंग सम्बन्ध को दर्शित करता हुआ वर्णाश्रम व्यवस्था द्वारा सामाजिक सुचारूता को महत्त्व देता है।

२. बौद्धधर्म के मूलसिद्धान्त :

बौद्धधर्म चार आर्य सत्यो अर्थात् नैतिक साधनों द्वारा शान्ति पूर्वक आत्मविकास में निहित है।

४ चार आर्यसत्य : १. दुःख (प्रथम आर्यसत्य)

२. दुःख समुदय (द्वितीय आर्यसत्य)

३. दुःख निरोध (तृतीय आर्यसत्य)

४. दुःख निरोध गामिनी प्रतिपदा।

(चतुर्थ आर्यसत्य)

प्रश्न :

१. दुःख आर्य सत्य क्या है ?

उत्तर : १. (जन्म होणे दुःख आहे) जन्म लेना दुःख है।

२. वृद्धावस्था दुःख है।

३. मृत्यु दुःख है।

४. किसी के लिए शोक करना दुःख है।

५. रोना चिल्लाना दुःख है।

६. पीडित होना दुःख है।

७. चिंता करना दुःख है।

८. त्रस्त होना दुःख है।

९. इच्छापूर्ति न होना दुख है।

१०. अप्रियों का सम्बन्ध दुःख है।

११. प्रियो का वियोग दुःख है।

संक्षिप्त रूप में ५ उपादान स्कन्ध दुःख है।

प्रश्न : ५ उपादान स्कन्ध कौन से है ?

१. रूप उपादान स्कंध

२. वेदना उपादान स्कंध।

३. संज्ञा उपादान स्कंध।

४. संस्कार उपादान स्कंध।

५. विज्ञान उपादान स्कंध।

२. दुःखसमुदय (द्वि आ.स.)

जिस कारण से दुःख उत्पन्न होता है, उसे दुःखसमुदय कहा है । अर्थात् दुःख के कारण को दुःख समुदाय यह संज्ञा दी है ।

प्रश्न - दुःख समुदय में क्या आर्य सत्य है ? कौनसा आ.स.है?

उत्तर - अनेक विषयों में रममाण (विचरण करने वाली) तृष्णा जिसे कामतृष्णा, भवतृष्णा एवं विभवतृष्णा कहते हैं। यही दुःखसमुदय नामक द्वि.आ.स.है।

१) कामतृष्णा :

सुखोपभोगार्थ उत्पन्न लालसा कामतृष्णा है। भोगविलास की आशा, आकांक्षा, इच्छा कभी शान्त नहीं होती। जिस प्रकार वायु के सहयोग से अग्नि अधिक अधिक प्रज्वलित होती है (होता है) उसी प्रकार काम पूर्ति करते करते कामतृष्णा बढ़ती ही जाती है।

महाभारत में कहा है :-

भोगाः न भुक्ता वयमेव भुक्ताः,

तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा।। मनु

२) भवतृष्णा :- शाश्वत दृष्टि को भवतृष्णा कहते हैं।

नाम रूपादि स्कंध में आत्मा अमर है, ऐसी मिथ्या दृष्टि के कारण उत्पन्न होने वाले दु:ख को भवतृष्णा कहा है। इस प्रकार संसार में सदा रहने की इच्छा या पुन:पुन: जन्म लेने की जो इच्छा उस को भी दु:ख का कारण कहा है। इसी को भवतृष्णा या भौतिकतृष्णा कहते हैं।

दन्ता: जीर्यन्ति जीर्यत: केशा: जीर्यन्ति जीर्यत: ।

चक्षुश्रोत्रेच जीर्येते तृष्णैका तरूणायते। (पंचतन्त्र नीतिशतक कथा साहित्य)

३) तीसरे आर्यसत्य :-

दु:खनिरोध :-

भगवान् बुद्ध कहते हैं कि उस तृष्णा का समूलनाश ही दु:खनिरोध है। वैराग्य, त्याग-परित्याग तृष्णा से सर्वथामुक्ति, अनासक्ति यही दु:ख-निरोध विषयक आर्यसत्य है। दु:खनिरोध अर्थात् मोक्ष-निर्वाण (मुक्ति) तृष्णाक्षय को ही निर्वाणपद - मोक्षपद कहा है।

४) दु:खनिरोधगामिनी प्रतिपदा : -

जो भोगमय, हीन, ग्राम्य, अशिष्ट, अनार्य, अनर्थकारक, शरीर को क्लेश देनेवाले, अशुभ कार्य हैं उनका समूल नाश सर्वथा त्याग करके महात्मा बुद्ध ने नेत्रोद्घाटक ज्ञान प्राप्त किया है। वह ज्ञान दु:खनाशक, सुखदायक, संयमीजीवन के द्वारा स्वपरिचायक, मोक्षार्थ (निर्वाणार्थ) है। दु:खनिरोध की ओर ले जानेवाला मार्ग ही दु:खनिरोधगामिनी प्रतिपदा है अर्थात् शाश्वत् सुख की और प्रस्थान का आरम्भ ही दु:खनिरोधगामिनी प्रतिपदा है। कैवल्य की ओर जाने वाला मार्ग ही दु:खनिरोधगामिनी प्रतिपदा के नाम से जाना जाता है। यह मार्ग शुद्धता, सदाचार, शील आदि की शिक्षा देने वाला है। निर्वाणपद की ओर ले जाने वाला मार्ग अर्थात् आर्याष्टांगिक मार्ग वह इस प्रकार का है-

आष्टांगिक मार्ग

१) सम्यक्दृष्टि, २) सम्यक्संकल्प, ३) सम्यक् वाचा, ४) सम्यक् कर्मान्त, ५) सम्यक्-आजीविका, ६) सम्यक् व्यायाम, ७) सम्यक् स्मृति एवं सम्यक् समाधि।

१) **सम्यक्दृष्टि :-** नेत्रशुचिता- मित्रस्य-चक्षुषा समीक्षामहे। यजु

२) **सम्यक संकल्प :-** तन्मेमनःशिव संकल्पमस्तु। यजुर्वेद

३) **सम्यक् वाचा - सत्यपूतां वदेत् वाचम्। मनुः**

मधमुती वाचं वदतु शन्तिवाम् (अथर्ववेद)

४) **सम्यक् कर्मांत -** ओं वायुरनिलममृतथेरं ।..। ईशोपनिषद

कुवन्नेवेह कर्माणि

५) **सम्यक् आजीविका -**मा गृधः कस्यास्विद्धनम्- कर्मकुरु

शरीरमाद्यंखलु धर्मसाधनम्.कुमारसा सम्भवम् तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा। यजुर्वेद

६) **सम्यक् व्यायाम -** अश्मा भवतु नस्तनूः। अहमिन्द्रो न पराजिग्ये धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्

७) **सम्यक् स्मृति -** आहार शुद्धौसत्व शुद्धि सत्वशुद्धौध्रुवा स्मृतिः गीता अ. १८ वा।

८) **सम्यक् समाधि -** असम्प्रज्ञातसमाधि तदेवार्थमात्र निर्भासं स्वरूप शून्यमिवसमाधिः योगदर्शन।

३) **जैनधर्म :**

जैनधर्म अहिंसा, देहदमन, संयम एवं तपस्या द्वारा आत्मा की उन्नति एवं पूर्णताका प्रतिपादन करता है।

वैदिक धर्म

१) अहिंसा परमो धर्म : (वशिष्ट ध.सू मनुस्मृति)

२) द्वन्द्व सहनं तपः योगदर्शन

३) अहमिन्द्रो न पराजिग्ये (वेद) अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहः यमाः यो.द.

ओं पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदोच्यते।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।। (वेद

४) पारसी धर्म :

पारसी धर्म ईश्वर की सहायता से असत् शक्तियों का विनाशकर जीवन को सुखी, समृद्ध बनाने का उपदेश देता है।

वैदिकवाङ्मयस्थ उदाहरण - ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रं तन्न आसुव। यर्जुवेद)

मनसा परिक्रमा मन्त्र - ओं-प्राची--आदि।

ओं अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।

होतारं रत्नधातमम्।। (ऋग्वेद प्रथम मन्त्र)

ओं - अग्ने नय सुपथा...। (ईश्वरस्तुति प्रार्थनोपासना)

सर्वे भवन्तु सुखिन...।।

५) कान्फ्युसियसधर्म : कान्फ्युसियसधर्म आदर्श सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवहार का धर्म है।

वै.वा.उदा-

१) नाहं कामयेराज्यं न स्वर्गं न पुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनार्मति नाशनम्।।

(रामायण) राम-राजा)

२) न मे स्तेनो राज्ये न कदर्यो न मद्यपी।

नानाहुताग्नि न स्वैरी स्वैरिणी कुतः।। राजा अश्वपति

३) ओं- आब्रह्मन ब्राह्मणो... । राष्ट्रप्रार्थना (वेद)

४) ओं- ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति (अथर्ववेद)

५) क्षतात्किल त्रायत इति क्षत्रिय।

६) **ताओधार्म :-** ताओधर्म ईश्वरीयमार्ग पर चलने में निहित है।

वै.वा.उदा.

१) सत्यं वद। २) धर्मंचर । ३) स्वाध्यान्मा प्रमदः।

४) संगच्छध्वं संवद्ध्वम्...।

ओं. ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।

(यजु अ. ४० म.१)"[१३]

७) **शिन्तोधर्म :** शिन्तोधर्म प्रकृति की पूजा, उपासना, राष्ट्रप्रेम, एवं पवित्र आचार का पाठ पढ़ाता है। (मानव की सेवा में विश्व के प्रमुख धर्म)

वै.वा.उदा.

१) माता भूमि पुत्रोऽहं पृथिव्याः (अथर्ववेद)

२) नमो वृक्षेभ्यः / (अ.वे.)

३) कृषिसूक्त.. । (अ.वे.)

४) राष्ट्रे वयं जागृयामः पुरोहिताःस्वाहा (वेद)

५) शौचसन्तोषतपस्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः (योगदर्शन)

६) अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।

७) विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति।। मनुः

८) दृष्टिपूतं न्यसेत् पादं, वस्त्रपूतं जलं पिबेत्।

सत्यपूतां वदेत् वाचं, मनःपूतं समाचरेत्।। मनुः

९) आचारः परमोधर्मःमनुः।

८) यहूदीधर्म :- यहूदीधर्म परमेश्वर की आज्ञा का पूर्ण पालन करने का उपदेश देता है-

वै.वा.उदा.

१) कुवन्नेवेह कर्माणि - । यजु.४०-२

२) चरैवेति २ चरन् वैमधुविन्दति।

३) मनुर्भव -

४) परिश्रमः । न ऋते श्रान्तस्य सख्यास

देवाः। (ऋ.वेद)

५) कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन

९) क्रिश्चियन धर्म (ख्रिश्चनधर्म)

क्रिश्चियन धर्म का उद्देश्य आत्मा द्वारा परमपिता के प्रति अगाध प्रेम स्थापित करना है। त्वं हि न पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ। प्रणवो धनु शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते। (मुं. उपनिषद् उप.अंक - पृ.२८४)"[१४]

१०) इस्लामधर्म :-

इस्लामधर्म समस्त विश्व के नियामक अल्लाह के प्रति निष्काम भाव से आत्मत्याग एवं शरणागति है। **ओं य आत्मदा बलदा यस्य विश्वउपासते। यस्य छाया अमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम। (यजुः२५-१३पृ १९०)"[१५] इदं प्रजापतये इदन्न मन।**

वैदिक धर्म -

वेद भारतीय संस्कृति के मूल स्रोत हैं। वेदों के पठन-पाठन से ही हमें समाज में उचित ढंग से जीने का मूल मन्त्र प्राप्त होता है। हम परस्पर किस प्रकार का व्यवहार करें? हमारा आचार-विचार आहार-विहार कैसा हो? मनुष्य के अधिकार एवं कर्तव्य क्या हैं? इन विषयों का पर्याप्त वर्णन वेदों में उपलब्ध हैं। वेद ही मानवमात्र का प्रकाशस्तम्भ और शक्ति-स्रोत है। वेदों का प्रकाश विश्व में फैलाकर मानव-जीवन में व्याप्त निराशा, अज्ञान, अन्धकार, दुर्विचार, अनाचार, दुर्गुण और दिशा भ्रम को दूर करता है। जिससे ज्ञान, संयम और सुसंस्कृति का आलोक व्याप्त होता है। समाज के अभ्युदय के लिए वेदों का ज्ञान अत्यावश्यक है। वेदें में विश्व हित का वर्णन है अत: उन्हें विश्वकल्याण कारिणीवाणी कहा जाता है। वेदों के प्रति निष्ठा, रुचि और मार्गदर्शन की भावना समाज को उन्नति की ओर अग्रेसर करती है। यजुर्वेद में वेदों का ज्ञान सभी के लिए कल्याणकारी बताया गया है-

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्य: (यर्जुवेद .२६/२)"[१६]

मैंने वेदों का ज्ञान सभी के लिए दिया है यह ईश्वरोक्ति यह सिद्ध करती है कि सभी को वेदाध्ययन का समान अधिकार है। नि:स्वार्थ कर्म करना उन्नति का चरम सोपान है:

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन - (गीता-२/४७)"[१७]

जीवन को सुखी बनाने के लिए त्याग आवश्यक है। संसार की प्रत्येक वस्तु को नि:स्वार्थ भाव से भोगना और आसक्ति को छोड़ना। अपने श्रम से प्राप्त धन का ही उपभोग करना। दूसरे के धन की लालसा न करना, दूसरे के अधिकार को न छिनना इसीसे जीवन सुखमय बनता है-

तेन त्यक्तेन भूञ्जीथा मा गृध: कस्यस्विद्धनम्

(यर्जुवेद-४०/१ पृ.१२०५)"[१८] **वै. वाङ्मयमें सुस्वास्थ विचार**

ऋग्वेद तथा अर्थववेद में स्वास्थ्य विषयक वर्णन अनेक स्थलोंपर दृग्गोचर होता है। केवल मानव के ही नही अपितु पशुओं के स्वास्थ्य की भी मंगल कामना की गई है:

इमां रूद्राय तबसे कपर्दिने, क्षयद्वीराय प्रभरामहे ।

यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वंपुष्टं ग्रामेऽस्मिन्ननातुरम्।।

इस विश्वरूपी ग्राम में सभी हृष्ट-पुष्ट और निरोगी हों।

मां वो रिषत् खनिता, यस्मै चाहं खनामि वः।

द्विपाच्चतुष्पादस्माकं, सर्वमस्त्वनातुरम्।।

(ऋग्वेद- १०/९/२०) "[१९]

(यजुर्वेद-१२/९५)"[२०]

मानव के सर्वतोमुखी विकास के लिए आवश्यक है कि इसकी सभी इन्द्रियाँ निरोगी हों। सत्य ही कहा है कि स्वस्थ शरीर एवं स्वस्थ मन ही स्वस्थ समाज का निर्माण कर सकता है। ऋग्वेद में स्पष्ट संकेत किया है कि समाज की उन्नति के लिए समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति एक स्थान पर 'एकत्र हों और समाज की समस्याओं पर विचार करके सामूहिक निर्णय लें। सद्भावनापूर्वक निर्णय करें। यह सामूहिक निर्णय सबके लिए मान्य हो। यदि समाज के सामूहिक निर्णयों का कठोरतासे पालन किया जाता है तो समाज अवश्य प्रगतिशील एवं समृद्ध होता है। **ओं समान ऊर्वे अधिसंगतासः स जानतेनयतन्ते मिथस्ते। ते देवानां न मिनन्ति व्रतानि अमधन्तो वसुभिर्योदमानः।।**

(ऋग्वेद-७/७६/५)"[२१] स्वा. सन्दोह

ऋग्वेद में उल्लेख है कि पारिवारिक श्री वृद्धि के लिए परिवार में समानता का भाव हो-

अज्येष्ठासः अकनिष्ठासः एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय।

(ऋग्वेद- ५/६०/५)"[२२]

समता का सन्देश

पृथ्वी पर अनेक प्रकार की भाषा बोलने वाले और विविध वेशभूषा धर्मों को मानने वाले लोग रहते हैं, उनमें परस्पर कोई भेदभाव न हो यह शिक्षा अथर्ववेद में मिलती है- यही विश्वधर्म है।

ओं जनं विभ्रती बहुधा विवाचसं, नानाधर्माणि पृथ्वी यथौकसम।

(अथर्ववेद- १२/१/४५) "[२३]

पारिवारिक धर्म एवं व्यवहार

जीवन को सुखमय बनाने हेतु पिता-पुत्र, माता-पिता और पति-पत्नी के सम्बन्धों पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। पुत्र के लिए आदेश है कि वह पिता का आज्ञाकारी हो। संयम और नियम का पालन करे तथा कुलपरम्परागत सद्गुणों को धारण करे। माता के प्रति पुत्र का कर्तव्य है कि वह समना हो। माता के हृदय से मिला हुआ हो। अर्थात्

आज्ञाकारी हो, माता का हितचिन्तक हो। और मातृभक्त हो। माता यदि पुत्र के कर्मों से प्रसन्न है तो उसका आशीर्वाद पुत्र को सदा प्राप्त होता है। पति-पत्नी आपस में मधुरभाषी हों जिससे परिवार में सुख-शान्ति बनी रहे-

अनुव्रतः पितुः पुत्रः, मात्रा भवतु सम्मना।

जाया पत्ये मधुमती वाचं वदतु शन्तिवाम्।।

(अथर्ववेद - ३-३०-२)"[२४]

वास्तव में वेदों के अनुकूल हम जीवन जीयें तो विश्व में भ्रष्टाचार, दुराचार, अनाचार, व्यभिचारआदि समस्याओं का अन्त स्वयमेव हो सकता है और समस्त विश्व में भ्रातृभाव एवं आनन्द का स्रोत निरन्तर बह सकता है।

एकता का सन्देश

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् स्वसारमुत स्वसा।।

सम्यञ्च सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया।।

(अथर्ववेद ३, ३०, ३ पृ.३२१)"[२५]

भाई-भाई से द्वेष न करे, बहन-बहन से द्वेष न करे। सभी एक साथ कर्म, संयम एवं अनुशासन का पालन करते हुए परस्पर मधुर तथा कल्याणकारक वाणी बोलें। वेद के ये पावन आदेश मानव मात्र को कल्याणमार्ग का पथिक बना कर अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचाने वाले हैं इन आदेशों-उपदेशों का पालन करना विश्वधर्म है।

वेदोक्त उपायों से आतंकवाद का अन्त :

सम्प्रति आतंकवाद संगठित उद्योग का रूप धारण कर रहा है । कभी सभ्यताओं के संघर्ष, के व्याज से तो कभी धर्म की आड़ में प्रतिदिन शिशु से लेकर वृद्धों तक अनेक निर्दोष व्यक्ति इसके कारण कालकवलित हो रहे है। आतंकवाद सम्पूर्ण विश्व के विनाश का कारण बन चुका है, यह समूचे मानव को अस्थिर कर रहा है। किसी बडे स्वार्थ से प्रेरित होकर, सम्पूर्ण समाज, राष्ट्र एवं विश्व के विरूद्ध किया गया अनैतिक तथा घृणित कृत्यही आतंकवाद है। आतंकवाद एक ऐसी विचारधारा है जिसका न कोई राष्ट्र होता है न समाज न धर्म वह एक पाशविक प्रवृत्ति है। समस्त विश्व इससे ग्रस्त है। वर्तमान समय में व्यक्ति अर्थ को सर्वस्व समझ रहा है और अल्प समय में अत्याधिक धनार्जन को अपने जीवन का लक्ष्यमान रहा है, इसके लिए वह भावनाहीन मानवीय संवेदना से रहित होकर कुछ भी करने हेतु उद्यत है। विशेष रूप से युवा वर्ग। आतकंवादी प्रशिक्षण के लिए युवाओं का चयन किया जाता है। इसके उन्मूलन के लिए हमें वैदिक संस्कृति को अपनाना होगा। उसमें दर्शित शाश्वत जीवनमूल्यों को अपने जीवन का अंग बनाना होगा। निःसन्देह अर्थ मानव जीवन के लिए अनिवार्य है, परन्तु धर्मानुकूल धनार्जन श्रेयस्कर है। वैदिक संस्कृति उत्तम मार्ग से धनोपार्जन किया जाता है। ऋग्वेद में सन्मार्ग से धनार्जन करने की प्रेरणा है :

अग्ने नय सुपथा राये (ऋग्वेद -१/१८९/१ पृ.९४२)[२६] अर्थर्ववेद में व्यापार को श्री और समृद्धी का साधन माना है। व्यापार में सफलता के लिए दो गुणों की नितान्त आवश्यकता होती है उत्तम चरित्र एवं उत्तम आचरण।

शुनं नो अस्तु चरितमुत्थिमं च (अथर्ववेद) इस प्रकार न्यायोचित मार्ग से उपार्जित धन ही श्रेष्ठ एवं उपभोग्य होता है। मनुस्मृति में भी धन की शुद्धता को सर्वोत्तम माना गया है।

अर्थ शुचिता

सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम् ।

योऽर्थे शुचिर्हिस शुचिर्न मृद्हारिशुचिःशुचिः ।। (मनु. ५।१०६. पृ.२५९)[२७]

आतंकवाद का निर्मूलन करने के लिए आपसी सौहार्द, मैत्री, विश्वबन्धुता आदि की भावना श्रेष्ठ उपाय हैं। वेदों में संज्ञान, सामंजस्य, एकता, संगठन आदि की प्रेरणाएँ स्थान-स्थान पर है। वैदिक वाङ्मय में सार्वजनिक कल्याण, प्रेम, शान्ति 'वसुधैव कुदुम्बकम्' की भावना से ओत-प्रोत अनेक मंत्र है अथर्ववेद में सम्पूर्ण पृथ्वी को माता कहा है।

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्या :

(अथर्ववेद - १२/१/१२. पृ.४७५)[२८]

सह अस्तित्व की भावना से आतंकवाद को समाप्त किया जा सकता है। ऋग्वेद के अन्तिम सूक्त में बड़ा ही मार्मिक उपदेश है संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।

देवा भागं यथापूर्वे संजानाना उपासते। ऋग्वेद पृ १२३९ प्रेम से मिलकर चलो बोलो सभी ज्ञानी बनो।

पूर्व जो की भांति तुम कर्तव्य के मान बनो।।

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।

समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।। (ऋग्वेद १०/१९१/१ पृ.१२४०)"[२९]

हो सभी के दिल तथा संकल्प अविरोधी सदा।

मन भरे हो प्रेम से जिससे बढ़े सुखसम्पदा।।

वेद सबका हित करने वाले हैं।

सर्व हितैषी वेद

वेद में मानव समाज के उत्कर्ष के साधन वर्णित है। ऐसी कोई भी शिक्षा वेद में नही जिससे मनुष्य का पतन हो ऐसे उत्तम ज्ञान का त्याग करने के कारण ही आज मानव दु:ख के गर्त में गिरा है, किंकर्तव्य विमूढ हो गया है। वेदों में ब्रह्मज्ञान है, जीव-शिव चर्चा है। अग्निविद्या है, जलविद्या है, प्रकृति का वर्णन है पृथ्वी से लेकर परमाणु तक सभी सूक्ष्म एवं बृहद्विद्यायें वेदों में विद्यमान हैं, इन्हें पढ़ना पढ़ाना एवं लाभ उठाना विश्वधर्म है। वेद ज्ञान के त्याग से आज मानव समाज पीड़ित है। मानव को मननशील बनने के लिए वेदों को अपनाना पड़ेगा।

मधुमयीवाक्

ओं याते अग्ने पर्वतस्येव धारासश्चन्ती पीपद्देव चित्रा।

(ऋग्वेद ३/५७/६. पृ.४७९)"[३०]

मधुरवाणी से शत्रु मित्र बनते हैं। मधुमय व्यवहार चाहने वाले स्वंय मधुमय बनें यह वेदादेश है। ऋग्वेद में कहा है - या ते जिह्वा मधुमती सुमेधा -

(ऋग्वेद - ३/५७/५ पृ.४७८)"[३१]

हे मानव तेरी वाणी मीठी हो लेकिन बुद्धियुक्त भी हो कोरी मीठी वाणी व्यर्थ होती है। वह सारगर्भित हो विद्वत्तापूर्ण हो। अनर्गल प्रलाप करने वाली न हो। अथर्ववेद में कहा है- **मधुमतीस्थ मधुमतीं वाचमुदेयम्** - (अथर्ववेद - १६/२७७२२)[३२] में सदा सुखदायिनी मधुर वाणी बोलूँ। सृष्टि के समस्त पदार्थ मधुरता का व्यवहार कर रहे हैं अत:हमें मधुरता भरा व्यवहार सब के साथ करना चाहिए इसी मन्त्र का अनुसरण करते हुए ऋषिवर दयानन्द ने कहा है सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार यथा योग्य व्यवहार करना चाहिए (सत्यार्थप्रकाश) वायु में मधु है, नदियों में मधु है, औषधि - वनस्पतियों में मधुरता है ऋतुओं में माधुर्य है तो मानव में क्यों नहो ?

अवश्य होना चाहिए यह मानव का धर्म है। हम चाहते हैं, निशा मधुमय हो, उषा मधुमय हो, मध्याह्न मधुमय, पृथ्वी मधुमय हो जो माता है, पिता अन्तरिक्ष मधुर हो तो हम उनकी सन्तान भी मधुमय बनें। जो अन्यों से चाहते हैं वह प्रथम उन्हें देना होता है तभी वह लौटकर आता है। क्रूरता के बदले में मधुरता नही मिल सकती । कठोरता के बदले में कोमलता नही मिल सकती अत: मधुमय बनना वैश्विक धर्म है जो सबको अपना बनाता है।

मधु दृष्टि धर्म :

तव स्वादिष्ठाऽग्ने संदृष्टि: (ऋग्वेद ४/१०/५ पृ.५६४)[३३] क्रान्तद्रष्टा कवियों का कहना है दृष्टि अनेक प्रकार की होती है।

१. कमनीय, २. घायलकरने वाली, ३. उन्मत्त करने वाली,
४. रक्तवर्ण, ५. वात्सल्यमय, ६. स्नेहसिक्त,
७. विवशतामयी दैन्य।

करूणायुक्त इन में तीन दृष्टियाँ कल्याण कारक है -

१. करुणामय : वह सर्वेश्वर करुणा का सागर है इसीलिए सत्यपाल पाथिक जीने कहा है।

हम जन्म-जन्म के प्यासे हैं और तुम करुणा के सागर हो।

करुणा निधि से करुणा रस की इक बूँद हमें इक बार मिले।

उसकी करुणा की एक बूँद हमारे जीवन का उद्धार कर देती है।

२. **वात्सल्यमय :** वात्सल्य माता की दृष्टि में होता है जिसे ममतामयी माता का वात्सल्य मिल गया वह धन्य हो गया। माता की दृष्टि की तुलना केवल उस परमपिता की दृष्टि से की जाती है उसकी वात्सल्यदृष्टि जिस पर पड जाती है उसका जीवन सफल हो जाता है, क्योंकि वह माताओं की माता है। पिताओं का पिता है। भ्राताओं का भ्राता है। वेद में कहा है, **त्वं हि न पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ -**

तू ही माँ है तू ही पिता है, तू ही भ्राता है, अगर तेरी दृष्टि हम पर बनी रही तो हम पुण्यात्मा बन कर पापों से मुक्त हो जायेंगे अतः हे प्रभो। आपकी वात्सल्य दृष्टी हम पर सदा रहे।

३. **स्नेहसिक्तदृष्टि :** स्नेह मित्र की दृष्टि में मिलता है, जो सच्चा सखा होता है वह स्नेहसिक्त दृष्टि वाला होता है। संसार में मित्र से अधिक निकटवर्ती कोई नहीं होता। सुदामा श्रीकृष्ण का उदाहरण सर्वविदित है। आज आवश्यकता है स्नेहमय दृष्टि की इस संसार में यदि मित्रत्वभाव आ जाए तो सभी प्रकार की समस्याओं से मुक्ति मिल सकती है। विश्व में सुख शान्ति एवं आनन्द का सागर हिलोरे लेने लग जायेगा यही तो विश्वधर्म है। ईश्वर अभिन्न सखा है उपनिषद, में बहुत सुन्दर दृष्टान्त जीवात्मा एवं परमात्मा की मित्रता का मिलता है **द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समान वृक्षं परिषष्वजाते। (तृ. मुण्डक प्रथम खण्ड मन्त्र - ३/१/१)**"[३४]

प्रकृति रूपी पेड पर दो सुन्दर पंखो वाले पक्षी बैठे हैं जो शाश्वत सखा हैं अभिन्न हैं। जीव और शिव, शिव की दृष्टि सदैव जीवपर रहती है परन्तु जिह्वा लौल्य के कारण अन्ध

हुआ आत्मा रूपी पक्षी उसकी संदृष्टि को देख नहीं पाता अतः दुःख के सागर में गोते लगता रहता है अगर वह उसकी दृष्टि को देख ले तो आन्तरिक आनन्द का अनुभव प्राप्त कर सकता है। इस विश्व में उसकी संदृष्टि सुरक्षा कवच है, जो काम, क्रोध, लोभ, मोह अहंकार आदि शुत्रुओं से हमारी रक्षा करती है। हमारी दृष्टि भी जलसम निर्मल एवं मधुमय बने यह प्रार्थना उस अभिन्न सखा से करना हमारा धर्म है वह अवश्य हमारी पुकार सुनता है।

सृष्टिनियम का पालन : धर्म है

सृष्टि के नियम सत्य हैं। सत्य की शक्ति बहुत बड़ी है। सृष्टिनियम के विपरीत आचरण करने से दुःख मिलता है। दुःख पाप का फल होता है। सृष्टि नियम का उल्लंघन पाप है। इस पाप से बचने हेतु सदा ईश्वरीय नियमों का पालन करना चाहिए। सत्य सर्वोत्तम नियम है जो मानव को सभी पापों से बचाता है। वेद में कहा है :

सत्यधर्म ऋतस्य धीतिर्वृजनानि हन्ति (ऋग्वेद - ४/२३/८. पृ)"[३५]

सत्य का पालन पापों को मारता है। इसीलिए ब्रह्मयज्ञ अर्थात सन्ध्या में आनेवाली ऋतं च सत्यच इत्यादी मन्त्रों को अधमर्षणमन्त्र कहा है ऋषियों ने कहा है जब-जब मन में पाप की भावना उठे तब-तब अधर्मषण मन्त्रों का जप करना चाहिए। जप का अर्थ है अर्थविचार तदर्थ भावकिसी वाक्य को पुनः पुनः दोहराने को जप नही कहते। योगदर्शन में कहा है - **तज्जपस्तदर्थभावनम्** - योगदर्शन (२/२८)

ऋग्वेद के नवम मण्डल में कहा है : ऋतं वदन्नृतद्युम्न (ऋग्वेद : ९/११३/४. पृ.४२७)"[३६]

सत्यवादी सत्य से चमकता है। उसका जीवन तेजोमय बनता है। **ऋतस्य दृढा धरुणानि सन्ति** : **(ऋग्वेद : ४/२३/९ पृ.६३३)**"[३७] सत्य की शक्तियाँ अतीव दृढ होती हैं। **ऋतं येमान् ऋतमिद् वनोति : (ऋग्वेद : ४/२३/१० पृ. ६३३)**"[३८]

सत्यव्रत को धारण करने वाला जीवन में सभी सफलताओं को पा लेता है। ऋतकीइतनी महिमा अवगत होने के पश्चात् अनृत को कौन चाहेगा ? इदहमनृतात्सत्यमुपैमि : वेदवेत्ता कहता है मैं अनृत का त्याग करके सत्य को धारण करता हूँ सत्य पालन का व्रत लेना विश्वधर्म है। सत्य सुख का मूल मन्त्र है। इस मन्त्र का चिन्तन, मनन, आचरण हमारा धर्म है।

श्रमधर्म :

न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवा : (ऋग्वेद : ४/३३/११ पृ.६८०)"[३९] परिश्रम के बिना देव मित्र नहीं बनते। ऐतरेय ब्राह्मण के ३३ वें अध्याय में इसका विशद वर्णन मिलता है :

नानाश्रान्ताय श्रीरस्तीति रोहित शुश्रुम।
पापो नृषद्वरो जन इन्द्र इच्चरतः सखा।। चरैवेति २
पुष्पिण्यौ चरतो जंघे भूष्णुरात्मा फलग्रहि :।
शेरेडस्य सर्वे पाप्मान : श्रेमाणं प्रपथे हतः ।। चरैवेति २
आस्ते भग आसीन स्योर्ध्व स्तिष्ठति तिष्ठानः।
शेते निपद्यमानस्य चराति चरतो भगः।।
कलि शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापर :।
उतिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं समद्येत चरन् ।। चरैवेति २
चरन् वै मधुविन्दति चरन्स्वादुमुदुम्बरम्। सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरन् ।। (चरैवेति २ ऐतरेयब्राह्मण ३३ वाँ अध्याय) "[४०]

परिश्रमी को सम्पति प्राप्त होती है। बैठा रहने वाला आलसी व्यक्ति पापी होता है। ईश्वर परिश्रमी का मित्र होता है, उसकी सहायता करता है, उसे विपत्तियों से बचाता है। चरण चलते हैं आत्मा फलाभिलाषी होना चाहता है इसीलिए चरणों को चलने की प्रेरणा देता है, श्रमशील व्यक्ति के समस्त पाप चलते हुए परिश्रम करते हुए मारे जाते है, वह पुण्यात्मा बन जाता है खड़े हुए का खड़ा हो जाता है। पापी का भाग्य सो जाता है, गतिशील

का गतिमान् बनता है सोय हुआ अर्थात् आलसी व्यक्ति मानो कलियुग है। आलस छोड़ने वाला मानो द्वापरयुग है, उठता हुआ मानो त्रेतायुग है और परिश्रम करनेवाला गतिशील मानो सत्ययुग है। परिश्रमी को अपने श्रम का मधुर फल मिलता है। परिश्रमी को इस विश्व की सभी सम्पदाएँ मिलती है। सूर्य की और देखते हुए नित्यसन्मार्ग पर चलते रहना मानव मात्र का धर्म है।

जिस प्रकार गतिरहित जल सड़ जाता है उसी प्रकार आलसी पडा रहने वाला व्यक्ति भी नष्ट हो जाता है।

अत: क्रियाशील होना आवश्यक है, वेद शास्त्र आलसी का तिरस्कार करते है। यौवन में श्रम करने से वृद्धावस्था में आराम मिलता है। यौवन में अर्जित सम्पति बुढापे में काम आती है। जिस प्रकार भौतिक शरीर के विषय में यह तत्त्व सत्य है, उसी प्रकार आत्मा के विषय में भी। यौवन में जो त्याग-वैराग्य का अभ्यास कर लेता है, जीवन की सन्ध्या में सुख-शान्ति मिलती है अत: परिश्रम करना विश्वधर्म है।

प्रथम अध्याय का सार :

१- वेद शब्द की व्याख्या एवं महत्त्व-

इस अध्याय में वेद शब्द की व्याख्या, धर्म की परिभाषा विश्वधर्म का स्वरूप, विश्वधर्म की संकल्पना इन पर प्रकाश डाला गया है।

वेद शब्द की व्याख्या -

विद्यन्ते ज्ञायन्ते लभ्यन्ते एभिधर्मादि पुरुषार्था इति वेदा : - जिन ग्रन्थो द्वारा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी पुरूषार्थ चतुष्टय का बोध होता है और उसके प्रति गति होती है वे वेद नाम से जाने जाते हैं। जो ग्रन्थ इष्ट प्राप्ति और अनिष्ट निवारण का अलौकिक उपाय बताते हैं उन्हें वेद कहते हैं। दुसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि जो

उन्नति और प्रगति का मार्ग बताते हैं, दुष्कर्मो से होने वाले कुपरिणामों से बचने का उपाय बताते है, उन्हें वेद कहते हैं।

वेद भारतीय संस्कृति की आत्मा है। ये मानव जाति के लिए प्रकाशस्तम्भ हैं। विश्व को धर्म और संस्कृति का ज्ञान देने का श्रेय नितान्त वेदों को है। वेद ही विश्वशान्ति विश्वबन्धुत्त्व और विश्व कल्याण के प्रथम उद्‌बोधक हैं। वेदों का ज्ञान सभी के लिए है यह घोषणा स्वयं वेद ने की है।

यथेमां वाचं कल्याणी मावदानि जनेभ्यः इस मन्त्रांश से यह ज्ञात होता है कि वेद किसी विशिष्ट जाति या व्यक्ति विशेष की धरोहर नही है। वेद का ज्ञानपाथेय जीवनमार्ग पर चलनेवाले प्रत्येक व्यक्ति की जिज्ञासारूपी बुभुक्षा एवं पिपासा शान्त करने हेतु है। इससे सभी लाभान्वित हो अपने जीवन को सफल बना सकते हैं, जीवन के चरमलक्ष्य को पा सकते हैं।

२- धर्म की परिभाषा -

यतोऽभ्युदय निःश्रेससिद्धि स धर्म : जिन सत्कर्मों से मानवमात्र को इहलौकिक एवं पारलौकिक सुख और आनन्द की प्राप्ति होती है उन सभी सुकर्मो को धर्म कहा जाता है। महर्षि मनु ने धर्म के दस लक्षण बताये है-

धृतिक्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधः दशकं धर्म लक्षमणम्।।

धृति अर्थत् धैर्य, संकटों से भयभत न होना, संघर्ष करते हुए आगे बढ़ना। क्षमशीलवृत्ति, स्वयंपर नियन्त्रण, परद्रव्य की लालसा न करना, चौर्य भाव का त्याग श्रमशीलता, बाह्याभ्यन्तर पवित्रता, इन्द्रियों पर नियन्त्रण अनुचित आवेगों पर नियन्त्रण , बुद्धि का विकास, विद्या की वृद्धि, सत्यव्रत का पालन, क्रोधादि दुर्गुणों का परित्याग करके शान्त्यादि सद्‌गुणों को धारण करना धर्म है।

सद्भाव, अहिंसा, अपरिग्रह, तप, स्वाध्याय, सन्तोष, ऋतुजा, मृदुता, समता, एकता , सदाचार आदि धर्म के ही मौलिक तत्त्व है, इसी को वैदिक वाङ्मय मे धर्म कहा है।

३) विश्वधर्म का स्वरूप :-

वेदः स्मृति सदाचार : स्वस्यच प्रियमात्मनः।

एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद् धर्मस्य लक्षणम् ।।

श्रुति स्मृति आदि सद्ग्रन्थोक्त सदाचार का पालन एवं आत्मकल्याण कारी सत्कर्म करना यही सत्यसनातन धर्म का स्वरूप है। दोषों से दूर रहना सद्गुणों का संग्रह करना विपत्तियों से न घबराना अपने षड्रिपुओं को जीतना **अहमिन्द्रो न पराजिग्ये** का शंखनाद करना।

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीस्थो महान् रिपुः।

नास्ति उद्यम समो बन्धु यं कृत्वा नावसीदति

के अनुसार प्रमाद रहित होकर सदैव उद्यमी बने रहना।

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिस्कृतः।

जीवन क्षणभंगुर है यह सत्य जानकर क्षण क्षण का विचार करते हुए जितना जीवन मिला है उसे सफल, सार्थक बनाना। **सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु** की कामना पूर्त्यर्थ सभी के साथ स्वयं मैत्री, करूणा, मुदिता का आचरण करना। इह लौकिक कर्तव्यों की पूर्णता के साथ पार लौकिक आनन्द अर्थात् मोक्ष को पाने हेतु स्व स्वरूप को जानना। शुद्धोऽस्मि बुद्धाऽस्मि,निरञ्जनोऽस्मि का गान करते हुए पापपंक में न फंसना। मुझे संसार सरोवर में कमल की भाँति रहना है यह तथ्य सामने रखकर जीवन यापन करना ही विश्वधर्म का स्वरूप है।

४- विश्वधर्म की संकल्पना -

श्रमनिष्ठा, शुश्रुषा, नम्रता, स्व कर्तव्य का विचार करना मानवता।

सत्यं वद-सत्य बोलो, **धर्मं चर-**सन्मार्ग पर चलो,। **नियतं कुरु कर्म त्वम्, अकर्मा**

दस्युः कर्म न करनेवाला दैत्य होता है अतः सत्कर्म करते रहना। भद्र कहना, भद्र सुनना एवं भद्र सोचना। मानव मात्र से प्रेम करना, सबको आत्मवत् समझना, किसी को क्लेश न देना, अपना और अन्यों का कल्याण करना, सदैव मृदु- मधुर बोलना दुष्कृत्यों का त्याग करना, स्वालम्बी बनना किसी का अधिकार न छिनना, अपने श्रम से प्राप्त धन से ही आजीविका चलना। सदैव प्रसन्न रहना और अन्यों को प्रसन्न रखने का प्रयास करना वेदादि सद्ग्रन्थों का अध्ययन करना चरम् लक्ष्य को पाना यही विश्व धर्म की संकल्पना है।

१- मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणिभूतानि समीक्षे।

समस्त विश्व को मित्र की दृष्टि से देखना सभी के जीवन मूल्यों का आदर करना।

२- भद्रं कर्णेभि : शृणुयामः - भद्र शब्दों का श्रवण करणा, आँखो से कल्याणकार प्रकृति के सुन्दर दृश्यों को देखना, वेद, दर्शन, उपनिषदोक्त आदेशों का पालन करना, सदा अपनी और अन्यों की रक्षा करना अपने सभी कर्मों को कुशलता से करना। अपनी जीवनचर्या महापुरुषों के तुल्य बनाना, स्वयं को कल्याणकारी नियमों में बाँधना यही धर्म है यही विश्वधर्म का स्वरूप है, यही विश्वधर्म की संकल्पना है।

सभी धर्मों के सिद्धान्तों का आदर करना, किसी की उपेक्षा न करना, किसी की निन्दा न करना, हमें जो क्लेश दायक प्रतीत होता है वैसा व्यवहार अन्यों के साथ न करना, दूसरों के दुःखो को जानकर यथाशक्ति दूर करने का प्रयास करना।

सभी आप्तेष्टों से मिलकर रहना, कलह से सदैव दूर रहना अपने जीवन को परोपकार में लगाना, अपनी सोच ऊँची रखना, क्षुद्र विचारों से दूर रहना। अपने जीवन का लक्ष्य विशाल बनाना, उस परमपिता ने हमें इस दुनियाँ में महान् कार्यों के लए भेजा है इसका स्मरण करते हुए अपना ध्येय निश्चित करना एवं तन,मन,धन से उसकी पूर्ति का प्रयास करना। **इयं ते यज्ञिया तनुः** को याद करते हुए अपने जीवन को पावन बनाना। **न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः** की ओर ध्यान देते हुए स्वयं को श्रम से थकाना और प्रभु का प्रिय सखा बनना। **अश्मा भवतु नस्तनुः** को आधार बनाकर व्यायामादि से अपने शरीर को

सुदृढ़ एवं बलवान बनाना। ज्ञान की पवित्र वारिधारा से, अपने मस्तिक को पावन करना। मातृदेवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव,अतिथि देवो भव, इन उपनिषदों के सुविचारानुसार माता,पिता, आचार्य तथा अतिथियों की सेवा करना। **यान्यस्माकं सुचरितानि** का पालन करते हुए पर दोषों को न देखना गुणग्राही बनना। **सत्यमेव जयति नानृतम्** का स्मरण करते हुए चाहे जितने भी संकट आयें कभी असत्याचरण करना। **अचार हीनं न नुनन्ति वेदाः** सदाचार का परित्याग कभी न करना क्योंकि व्यभिचारी को वेद शास्त्र भी पवित्र नहीं कर सकते। मा हिन्सीः तन्वा प्रजाः का पालन करते हुए किसी को हानि न पहुँचाना यदि भला किसी का कर सकूँ तो बुरा किसी का कभी न करूँ। यह प्रतिज्ञा ही विश्वधर्म की संकल्पना है।

संदर्भ सूची :

१. मैथिली शरणगुप्त, भारत भारती

२. वै.द.प्र.अ.सू.२, जगदीश्वरानन्द, षड्दर्शनम्, पृ.क्र.५३

३. पूर्वमीमांसा जैमिनिदर्शन १-१-२, जगदीश्वरानन्द षड्दर्शनम्, पृ.क्र.५३

४. मनुस्मृति अ. ६-९२- तुलसीरामस्वामी, मनु:भाषानुवाद, पृ.क्र.२९०

५. अथर्व९-९-१७ क्षेमकरणदास त्रिवेदी अथर्ववेद-हिन्दी भाष्य -

६. मनु: २-६ तुलसीराम स्वामी, मनु:भाषानुवाद

७. मनु: २-६ तुलसीराम स्वामी, मनु:भाषानुवाद

८. याज्ञ वल्क्य स्मृति,१-७

९. मनु: २-६ तुलसीराम स्वामी, मनु:भाषानुवाद

१०. तैत्तिरीयोपनिषद्,१-११-४

११. वशिष्ठ धर्मसूत्र ६-१

१२. मानव की सेवा में, विश्व के प्रमुख धर्म, पृ १८४,

प्रो. सिद्धेश्वर भट्ट मानव की सेवा में विश्व के प्रमुख धर्म, पृ.१८४

१३. यजु:४०-मं १, महर्षि दयानन्द सरस्वती: यजु: हिन्दी भाष्य

१४. मु.उप.अंक पृ. २८४

१५. यजु: २५-१३ म.द. सरस्वती - यजु: हिन्दी भाष्य, पृ.१९०

१६. यजु: २६-२ वही

१७. गीता - २-४७

१८. यजुर्वेद - ४०-१, पृ.१२०५ वही

१९. ऋग्वेद-१०-९-२०, महर्षि दयानन्द सरस्वती, ऋग्वेद हिन्दी भाष्य

२०. यजुर्वेद - १२-९५ वही

२१. ऋग्वेद ७-७६-५ स्वा. सन्दोह , स्वामी वेदानंद तीर्थ

२२. ऋग्वेद, ५-६०-५, वही

२३. अथर्ववेद-१२-१-४५, क्षेमकरणदास त्रिवदी, अथर्ववेद हिन्दी भाष्य

२४. अथर्ववेद -३-३०-२, वही

२५. अथर्ववेद -३-३०-३, पृ ३२१

२६. ऋग्वेद-१-१८९, महर्षिदयानन्द सरस्वती, ऋग्वेद हिन्दी भाष्य, पृ.९४२

२७. मनुः -५-१०६, पं. तुलसीराम स्वामी, मनु-भाषानुवाद, पृ.२५९

२८. अथर्ववेद-१२-१-१२, क्षेमकरणदास त्रिवेदी, अथर्ववेद- हिन्दी भाष्य पृ.४७५

२९. ऋग्वेद-१०-१९१-१, महर्षि दयानन्द सरस्वती, ऋग्वेद हिन्दी भाष्य, ११४०

३०. ऋग्वेद-३-५६-६, महर्षि दयानन्द सरस्वती, ऋग्वेद हिन्दी भाष्य, ११४०

३१. अथर्ववेद-३-५६-६५, क्षेमकरणदास त्रिवेदी , अथर्ववेद हिन्दी भाष्य, ११४०

३२. अथर्ववेद१६-२६, क्षेमकरणदास त्रिवेदी , अथर्ववेद हिन्दी भाष्य, पृ.७२२

३३. ऋग्वेद-४-१०-५, महर्षि दयानन्द सरस्वती,ऋग्वेद हिन्दी भाष्य, पृ.५६४

३४. तृ.मु.प्र.ख.मं.३-१-२

३५. ऋग्वेद-४-२३-८, महर्षि दयानन्द सरस्वती, ऋग्वेद हिन्दी भाष्य

३६. ऋग्वेद-९-११३-८, महर्षि दयानन्द सरस्वती, ऋग्वेद हिन्दी भाष्य पृ.४२६

३७. ऋग्वेद-४-२३-९, महर्षि दयानन्द सरस्वती, ऋग्वेद हिन्दी भाष्य पृ.६३३

३८. ऋग्वेद-४-२३-१०, महर्षि दयानन्द सरस्वती, ऋग्वेद हिन्दी भाष्य पृ.६३३

३९. ऋग्वेद-४-३३-११, महर्षि दयानन्द सरस्वती, ऋग्वेद हिन्दी भाष्य पृ.६८०

४०. चरैवेति २ ऐतरेय ब्राह्मण ३३ वाँ अध्याय- डॉ. सुधाकर मालवीय : ऐतरेय ब्राह्मण

*****

द्वितीय अध्याय

वैदिक वाङ्मय का परिचय

२.१ प्रस्तावना :

वेद भारतीय संस्कृति की आत्मा हैं। ये मानवजाति के लिये प्रकाश स्तम्भ हैं। विश्व को धर्म और संस्कृति का ज्ञान देने का श्रेय वेदों को है। वेद ही विश्व-शान्ति, विश्वबन्धुत्त्व और विश्व कल्याण के प्रथम उद्‌बोधक है। वेदों ने ही मानव जाति की समुन्नति का मार्ग प्रशस्त किया है। वेद ज्ञान के अथाह भंडार हैं।

"विद्यन्ते ज्ञायन्ते लभ्यन्ते एभिर्धर्मादि - पुरूषार्था इति वेदा "[१]

१. जिन ग्रन्थों के द्वारा धर्म, अर्थ, काम, और मोक्षरूपी पुरूषार्थ - चतुष्टय के अस्तित्व का बोध होता है।

२. इनसे पुरूषार्थ चतुष्टय का ज्ञान प्राप्त होता है।

३. इनसे पुरूषार्थ चतुष्टय के प्रति गति होती है।

४. इनमें पुरूषार्थ चतुष्टय का विवेचन किया गया है। इस प्रकार वेद पुरुषार्थ चतुष्ट्य के सर्वांगीण विवेचन करनेवाले ग्रन्थ हैं।

आचार्य सायण ने वेद शब्द की एक अन्य व्याख्या की है

इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहार्ययोरलौकिकं उपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेदः।

(तैत्तिरीय संहिता भाष्य की भूमिका)

अर्थात् जो ग्रन्थ इष्ट प्राप्ति और अनिष्ट निवारण का अलौकिक उपाय बताता है, उसे वेद कहते हैं। दूसरे शब्दो में कहा जा सकता है कि जो उन्नति और प्रगति का मार्ग बताता है तथा दुष्कर्मों से होनेवाले कुपरिणामों से बचने का उपाय बताता है,उसे वेद कहते हैं।

श्रुति, निगम, आगम, त्रयी, छन्दस्, आम्नाय, स्वाध्याय आदि शब्द भी वेद के वाचक हैं।

१) श्रुति : वेदों को श्रुति भी कहते हैं। इसका कारण यह है कि इन्हें गुरू-शिष्य परम्परा से श्रवण के द्वारा सुरक्षित रखा गया है। गुरू परम्परागत पद्धति से वेदों के मंत्रो को शिष्यों को पढाते थे और शिष्य श्रवण मात्र से स्मरण करते थे। इसमें इस बात पर विशेष बल दिया जाता था कि शिष्य मंत्रों के स्मरण में स्वर और उच्चारण- सम्बन्धी कोई भी त्रुटि न होने दें। श्रुति शब्द व्यापक है, यह वेदों के साथ ही ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों के लिए भी प्रयुक्त होता है। अतः एव ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों के उद्धरणों को इति श्रुति कहकर उद्धृत किया जाता है।

२) निगम : वेदों के लिए निगम शब्द का भी प्रयोग होता है क्योंकि वे निःशेष विषयों के गमक-बोधक है। निगम का अर्थ सार्थक या अर्थबोधक है। वेदों को साभिप्राय सुसंगत और गंभीर अर्थ बताने के कारण निगम कहा जाता है।

३) आगम : आगम शब्द का प्रयोग वेद और शास्त्र दोनों के लिए होता है। सभी प्रकार का ज्ञान जिससे प्राप्त होता है उसे आगम कहते है।

४) त्रयी : त्रयी शब्द का प्रयोग वेदों के लिए होता है। वेद त्रयी का अर्थ है ऋचाएँ तीन प्रकार, की हैं पद्यात्मक, गद्यात्मक तथा गीतात्मक। पद्यात्मक रचना ऋक् है। गद्यात्मक यजुः और गीतात्मक साम है। अथर्ववेद में तीनों प्रकार पाये जाते हैं। अतः वेदों को त्रयी नाम से भी जाना जाता हे।

५) छन्दस् : चारों वेदों के लिए छन्दस् शब्द का प्रयोग होता है। आचार्य पाणिनि ने **बहुलं छन्दसि (अष्टाध्यायी २/४/३९)** सूत्रों के द्वारा वेदों को छन्दस् कहा है। छन्दस् शब्द छदि संवरणे चुरादि गणी धातु से बनता है। इसका अर्थ है ढकना या आच्छादित करना। अपने

मनोभावों या विचारों को एकक्रमबद्ध रूप से बद्ध किया जाता है तोलकर शब्दों को लय में बाँधना। इसी अभिप्राय से यास्क ने निरूक्त में छन्दोंसि छादनात् कहा है

६)आम्नाय : वेदों के लिए आम्नाय शब्द का भी प्रयोग किया जात है। म्ना-अभ्यासे भ्वादि गणी धातुसे यह शब्द बनता है। यह वेदों के प्रतिदिन अभ्यास या स्वाध्याय पर बल देता है। आचार्य दण्डीने दशकुमार चरितम में वेदों के लिए आम्नाय शब्द का प्रयोग करते हुए कहा है - **अधीती चर्तुषु आम्नायेषु** अर्थात् चारों वेदों का ज्ञाता।

७) स्वाध्याय : शतपथ ब्राह्मण (११,५,६,३) में वेदों के लिए स्वाध्याय शब्द का प्रयोग हुआ है। "स्वाध्यायोऽध्येतव्य:" अर्थात् वेदों का अध्ययन करना चाहिए। उपनिषदों में भी वेदों के विषय में स्वाध्याय शब्द का प्रयोग है। "स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां मा प्रमदितव्यम्" वेदों के अध्ययन और प्रचार में प्रमाद न करें। स्वाध्याय शब्द स्व अर्थात आत्मा के विषय में मनन- चिन्तन तथा प्रतिदिन अभ्यास पर बल देता है।

''वेदों का धार्मिक महत्त्व''

धर्म के मूल तत्त्वों को जानने का एकमात्र साधन वेद है। **''वेदोखिलोधर्ममूलम्''** मनु ने वेदों को सारे ज्ञानों का आधार मानकर उन्हें सर्वज्ञानमय कहा है। वेदों में सभी प्रकार के ज्ञान विज्ञान के सूत्र विद्यमान हैं। वेदों में मानवमात्र के कर्तव्यों का निर्देश है। प्राचीन समय में वस्तुओं के नाम तथा मानव के कर्तव्य का निर्धारण वदोंसेही किया जाता था

सर्वेषां तु नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक् ।

वेदशब्देभ्य एवादौ, पृथक् संस्थाश्च निर्ममे।।

निष्काम भाव से कर्म करना, यज्ञ पर अटूट विश्वास, ईश्वर की सर्वव्यापकता, ज्ञान और कर्म मार्ग समन्वय भौतिकवाद के प्रति अनास्था, पुनर्जन्म मे विश्वास, जीवन का लक्ष्य मोक्ष आदि का वास्तविक ज्ञान वेदों से ही होता है।

''वेदों का शास्त्रीय महत्त्व''

सर्वज्ञानमयो हि सः - कहकर वेदों को सभी विद्याओं का स्रोत बताया है। वेदों में दार्शनिक सिद्धान्त, राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, अध्यात्म, मनोविज्ञान, आयुर्वेद, गणित, भौतिक शास्त्र, रसायनशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, (जीवशास्त्र) प्रौद्योगिकी, वृष्टिविज्ञान, भूगर्भविज्ञान, अर्थशास्त्र नाट्यशास्त्र, काव्यशास्त्र, कामशास्त्र और विविध कलाओं का सैकडों मन्त्रों में वर्णन है। वेदों के अध्यात्म और दार्शनिक तत्त्वों को लेकर ही विविध उपनिषदों और दर्शनशास्त्रों की सृष्टि हुई है।

''वैदिक साहित्य का विभाजन''

वैदिक वाङ्मय को सुविधा की दृष्टि से चार भागों में बाँटा जाता है।

१) वेदों की संहितायें, २) ब्राह्मण ग्रन्थ, ३) आरण्यक ग्रन्थ, ४) उपनिषद

१) वैदिक संहितायें :

वेदों की चार संहितायें हैं ऋग्वेद संहिता, यजुर्वेद संहिता, सामवेद संहिता, अथर्ववेद संहिता। संहिता का अर्थ आचार्य पाणिनि के व्याकरण शास्त्रानुसार इस प्रकार है परः सन्निकर्ष : संहिता पदों का संधि आदि के द्वारा समन्वित रूप। व्याकरण की दृष्टि से प्रयोग के योग्य पद समूह को संहिता कहा जात है। इस प्रकार मंत्र - भाग को संहिता कहते हैं।

चार ऋत्विक :

चार वेदों के अनुसार यज्ञ में चार ऋत्विक होते है १) होता, २) अध्वर्यु, ३) उद्गाता, ४) ब्रह्मा।

होता - यज्ञ में ऋग्वेद की ऋचाओं का पाठ करता है - अतएव ऋग्वेद को होतृवेद भी कहते हैं।

अध्वर्यु - यजुर्वेद के मंत्रो का पाठ करता है। यही यज्ञ भी करता है और यज्ञ में घृत आदि की आहुति देता है। उद्गाता सामवेद के मंत्रो का गान करता है। ब्रह्मा यज्ञ का संचालन करता है। वही यज्ञ का अधिष्ठाता और निर्देशक होता है। ऋग्वेद के एक मंत्र में चारों ऋत्विजों के कर्मों का निर्देश है।

ओं - ऋचां त्वः पोषमास्ते पपुष्वान्,

गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु।

ब्रह्मा त्वो वदति जातिवद्यां

यजस्य मात्रां विमिमीत उत्वः।।

"वैदिक वाङ्मय का द्विविध विभाजन"

वर्ण्य विषय की दृष्टि से समस्त वैदिक वाङ्मय को दो भागों में विभाजित किया गया है। १. कर्मकाण्ड।२. ज्ञानकाण्ड।

वेदों और ब्राह्मणग्रन्थों को कर्मकाण्ड के अन्तर्गत रखा गया है क्योंकि इनमें विविध यज्ञों के कर्मकाण्ड की पूरी प्रक्रिया दी गई है। वेदों में यज्ञिय कर्मकाण्ड से संबध्द मंत्र हैं और बाह्मण ग्रंथों में उनकी विस्तृत व्याख्या। ज्ञानकाण्ड के अन्तर्गत आरण्यक ग्रन्थ और उपनिषदें हैं। आरण्यक ग्रन्थों में यज्ञिय क्रियाकलापों की आध्यात्मिक एवं दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत की गयी है, इसी में आध्यात्मिक और दार्शनिक तत्त्वों की समीक्षा की गयी है। इनमें ब्रह्म, ईश्वर, जीव, प्रकृति, मोक्ष आदि का वर्णन है। अतएव आरण्यक और उपनिषदों को ज्ञानकाण्ड का जाता है।

"वेदांग"

वेदों के ज्ञान के लिए सहायक ग्रन्थों को वेदांग कहा गया है। ये वेदों के व्याकरण, यज्ञों के काल निर्धारण शब्दों के निर्वचन मन्त्रों की पद्यात्मक रचना, यज्ञिय क्रियाकलापों

का सांगोपांग विवेचन एवं मन्त्रों के उच्चारण आदि विषयों से संबद्ध है। वेदांग ६ हैं १) शिक्षा, २) व्याकरण, ३)छन्द ४) निरूक्त, ५) ज्योतिष, ६) कल्प।

शिक्षा व्याकरणं छन्दो निरूक्तं ज्योतिष स्तथा।

कल्पश्चे ति षडङ्गानि वेदस्याहुर्मनीषिणः।।

ये वेदांग सामान्यतया सूत्रशैली में लिखे गएँ हैं। वैदिक साहित्य के अध्ययनाध्यापन की सुव्यवस्था के लिए जिस साहित्य का निर्माण हुआ है, उस साहित्य को हम सूत्र साहित्य कहते हैं। इस सूत्र साहित्य को वेदांग की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। इस वेदांग साहित्य को वेदों के साथ सबंद्ध करने के लिए व्याकरण को मुख कहा जाता है, ज्योतिष नेत्र निरूक्त को श्रोत्र, कल्प को हाथ, शिक्षा को नासिका और छन्द को पाद कहा गया है।

शिक्षा - ''शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य''

शिक्षा का व्युत्पत्ति प्राप्त अर्थ है, वह विद्या जो स्वर वर्ण आदि उच्चारण के पुकार का उपदेश दे यथा : सूत्ररूपेण-

''अकुह विसर्जनीय कण्ठया : '' वर्णोच्चारण शिक्षा-पाणिनीय

अर्थ : अकार, कवर्ग - क, ख, ग, ङ तथा ह कार इन तथा विसर्ग इन सब वर्णो का उच्चारस्थान कण्ठ हैं। इसी प्रकार सभी वर्णों का उच्चारण किस किस स्थान से किया जाना चाहिए यह समस्त उपदेश शिक्षा में है। वेदपाठ में स्वरों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। स्वर की अशुद्धि से महान् अनर्थ की सम्भावना रहती है। पाणिनीय शिक्षा में लिखा है कि जो मन्त्र स्वर से या वर्ण से हीन होता है, वह मिथ्या प्रयुक्त होने के कारण अभीष्ट अर्थ का प्रतिपादन नहीं करता है। वह तो वाग्वज्र बनकर यजमान का ही नाश कर देता है जैसे स्वर के अपराध से " इन्द्र शुत्रु" शब्द यजमान का ही विनाशक सिद्ध हुआ यथा :

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा ।

मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह।।

स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति।

यथेन्द्रशत्रु स्वरतोऽपराधात् ।।

शिक्षा ग्रन्थों में प्रातिशाख्य प्रमुख है। ऋग्वेद प्रातिशाख्य अथर्ववेद प्रातिशाख्य, वाजसेनयी प्रातिशाख्य, तैतिरीय प्रातिशाख्य, तथा सामवेद के भी दो मुख्य प्रातिशाख्य है- एक पुष्पसूत्र दुसरा ऋक् तन्त्र। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य शिक्षाग्रन्थ भी हैं।-

पाणिनीय - शिक्षा , याज्ञवल्क्य शिक्षा, वाशिष्ठी शिक्षा, कात्यायनी शिक्षा, पाराशरी शिक्षा, माण्डव्य शिक्षा, अमोघानन्दिनी शिक्षा, वर्णरत्न प्रदीपिका, केशवीय शिक्षा, मल्लशर्म शिक्षा, स्वरांकुश शिक्षा, षोडशश्लोकीय शिक्षा, अवसान निर्णय शिक्षा, स्वरभाक्तिलक्षण शिक्षा, नारदीय शिक्षा, माण्डूकी शिक्षा इस प्रकार शिक्षा साहित्य इस बात का प्रमाण है कि प्राचीन भारत में भाषाशास्त्र का कितना गम्भीर विवेचनात्मक सूत्र रूप में अध्ययन किया गया था।

कल्प - ''हस्तौ कल्पोऽथ वेदस्य''

कल्प का अर्थ है वेद में निहित कर्मों का क्रमपूर्वक व्यवस्थित कल्पना करनेवाला शास्त्र - कल्पो वेदविहितानां कर्मणामनुपूर्वेण कल्पना शास्त्रम्।

ब्राह्मण ग्रन्थों मे यज्ञ-यागादि का विधान इतना प्रौढ तथा विस्तार को प्राप्त हो गया था कि उसकी सहज जानकारी के लिए उनको क्रमबद्ध रूप से प्रस्तुत करने का कार्य नितान्त आवश्यक प्रतीत हुआ । युगानुरूप इन ग्रन्थों का निर्माण सूत्र शैली में हुआ १) श्रौतसूत्र, २) गृह्यसूत्र, ३) धर्मसूत्र, ४) शुल्वसूत्र।

श्रौतसूत्रों में ब्राह्मण ग्रन्थों में वर्णित श्रोत - अग्नि- दक्षिण, आहवनीय और गार्हपत्य इन तीन अग्नियों में संपाद्यमान यज्ञयागादि अनुष्ठानों का वर्णन है। गृह्यसूत्रों। में गृह्याग्नि में

होनेवाले यागों तथा विभिन्न संस्कारों का सर्वांगीण वर्णन है। साथ ही समाज में प्रचलित प्रथाओं का भी वर्णन है। धर्मसूत्रों में चातुवर्ण्य एवं चारों आश्रमों के कर्तव्यों का विशेषत: राजा के कर्तव्यों का विशिष्ट प्रतिपादन है। इन धर्म सूत्रों में रीति, नीति, धर्म एवं प्रथाओं आदि का भी संकेत मिलता है। शुल्वसूत्रों में यज्ञवेदी निर्माण से सम्बद्ध रीति का विशिष्ट प्रतिपादन है।

व्यावकरण : "मुख व्याकरणं स्मृतम्"

व्याकरण शब्द की **व्युत्पत्ति-व्याक्रियन्ते** शब्दा अनेनेति व्याकरणम् अर्थात् जिसके द्वारा सुबन्त तिङ्न्त आदि पदों की व्याख्या की जाती है वह व्याकरण है। व्याकरण वेद पुरूष का मुख है। इस वेदांग का एकमात्र उद्देश वेदों के अर्थ को समझना और वेदों की रक्षा करना है। आजकल व्याकरण के प्राप्त ग्रन्थों में प्राचीनतम ग्रन्थ पाणिनिकृत अष्टाध्यायी है, किन्तु पाणीनि मुनि से पूर्वतनीन आचार्यों में गार्ग्य, स्फोटायन, शाकटायन, भारद्वाज आदि अनेक आचार्यों का उल्लेख विभिन्न व्याकरण के ग्रन्थों में मिलता है वैसे तो इस अष्टाध्यायी से भी पूर्व व्याकरण के ग्रथों में प्रातिशख्य भी स्वीकार किए जा सकते हैं। वैसे व्याकरण के पाणिनि के परवर्ती प्रमुख आचार्यों में महाभाष्यकार पतंजलि तथा वार्तिककार कात्यायन का नाम सम्मान पूर्वक लिया जाता है। इन तीनों व्याकरण के आचार्यों के उपरान्त इस सम्प्रदाय में आचार्यों की एक लम्बी सूची है जो कि उपर्युक्त तीन आचार्यों की कृतियों पर ही अपने विचार लिखते लिखातो रहे हैं। संस्कृत के इन व्याकरण के आचार्यों के कार्य एवं महत्त्व का मूल्यांकन करते हुए पाश्चात्य विद्वान् **मेकडानल ने लिखा है-** 'भारतीय वैयाकरणों ने ही विश्व में सर्वप्रथम शब्दों का विवेचन किया है। प्रकृति और प्रत्यय का अंग पहचाना है, प्रत्ययों के कार्य का निर्धारण किया है। सब प्रकार से परिपूर्ण और अति विशुद्ध व्याकरण पद्धति को जन्म दिया है जिसकी तुलना विश्व के किसी देश में प्राप्त नही हैं।

छन्द : छन्दः पादौ तु वेदस्य

छन्द वेदशरीर के चरण हैं। वेद के मन्त्रों के यथार्थ उच्चारण के निमित्त छन्दों का ज्ञान नितांत आवश्यक है। छन्दों के परिज्ञान के बिना मन्त्रों का उच्चारण तथा पाठ समुचित रूप से कदापि नहीं हो सकता । कात्यायन ने स्पष्ट ही लिखा है कि जो व्यक्ति छन्द, ऋषि तथा देवता के ज्ञान से हीन होकर मन्त्र का अध्ययन- अध्यापन, यजन-याजन करता है, उसका वह कार्य सदा ही निष्फल होता है। वेद के मंत्र तो सर्वथा छन्दोबद्ध हैं, अतः छन्दों का ज्ञान प्राप्त किए बिना वेदमन्त्रों का उच्चारण कैसे सम्भव है। इसलिए वैदिक ऋषियों ने छन्दों के परिज्ञान के लिएस्वयं पृथक ग्रन्थों की रचना की है। इसमें ऋग्वेद का प्रातिशास्त्र तथा शांखायन के श्रौतसूत्रों का एक भाग प्रमुख है, इन सभी ग्रन्थों में वैसे वैदिक छन्दों का ही विशेष विवेचन है किन्तु पिंगलाचार्य द्वारा रचित छन्द शास्त्र इस वेदांग का प्रतिनिधि ग्रन्थ है।

ज्योतिष : ''ज्योतिषामयनं चक्षु''

वेदांग के अन्तर्गत ज्योतिष अन्तिम वेदांग है। वेद की प्रवृत्ति यज्ञ-सम्पादन लिए यज्ञ समय-विशेष की अपेक्षा रखते हैं। इसी समय विशेष के निर्देश के लिए ज्योतिष की आवश्यकता है। नक्षत्र, तिथि, पक्ष, मास, ऋतु तथा संवत्सर- काल के समस्त खण्डों के साथ यज्ञों का निर्देश वेदों में उपलब्ध हैं । वेदांग ज्योतिष के प्रतिनिधि ग्रन्थ दो वेदों से सम्बन्ध रखनेवाले उपलब्ध होते है। एक याजुष ज्योतिष, जिसका यजुर्वेद से सम्बन्ध है। दूसरा आर्य ज्योतिष, जिसका सम्बन्ध ऋग्वेद से है। इन दोनों ही ग्रन्थों में वैदिक कालीन ज्योतिष का वर्णन उपलब्ध होता है। वेदांग ज्योतिष के कर्ता का नाम आचार्य लगध था।

प्रण्यम्य शिरसा कालमभिवाद्य सरस्वतीम्।
कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मनः।।

यज्ञ भाग के विभिन्न विधानों के यथार्थ निर्वाह के लिए ज्योतिषशास्त्र का ज्ञान नितानत अपरिहार्य है। इसलिए वेदांग ज्योतिष का यह आग्रह है कि जो व्यक्ति ज्योतिष को अच्छी प्रकार से जानता है वही यज्ञ का यथार्थ ज्ञाता है। यज्ञ ज्ञान के लिए ज्योतिष के महत्त्व को परवर्ती ज्योतिषाचार्य भास्कराचार्य ने भी स्वीकार किया है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वैदिक वाङ्मय एक विशाल वाङ्मय है। भारतीय ज्ञान का यह एक आगार है। विश्व संस्कृतियों का, विश्वधर्म का मार्ग दर्शक है। इसलिए **विन्टरनिट्ज** ने विश्व-संस्कृति के मार्गदर्शक के रूप में इस साहित्य को स्वीकार किया है।

भारतीय धर्म तथा संस्कृति के विकास में अपनी प्राचीनता अपनी बहुमुखी उपयोगिता तथा व्यापक प्रभाव के कारण वैदिक वाङ्मय का अपना अद्वितीय स्थान है। न केवल अपने सुग्रथित, सुरक्षित और विस्तृत वाङ्मय, अति प्राचीन परम्परा, अपनी भाषा और वाङ्मय के अत्यन्त व्यापक प्रभाव के कारण अपितु भारत के धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन में अपने शाश्वत प्रभाव के कारण भी वैदिक साहित्य अभूतपूर्व महत्त्व रखता है। यही नहीं, वैदिक- वाङ्मय आशामय, नवीन प्राणप्रद स्फूर्ति प्रदाता होने के कारण तथा सार्वभौम, सार्वकालिक सन्देशवाहक होने के कारण परवर्ती जनजीवन के उपयोगी है। वस्तुतः वैदिक साहित्य से जीवननीय रस को लेते हुए समस्त परवर्ती साहित्य का सृजन हुआ है- उदाहरणतः भारतीय साहित्य में वेदों के पश्चात्य ब्राह्मण साहित्य आता है। यह ब्राह्मण साहित्य वास्तव में वैदिक ऋचाओं के भाष्य ही हैं। इनमें कर्मकाण्ड का विस्तृत व्याख्यात्मक वर्णन है। यही नहीं इन ग्रन्थों में वेद की दार्शनिक मान्यताओं का उद्घाटन हुआ है तथा वैदिक आख्यानों का पल्लवन। प्रत्येक वेद के अपने अपने ब्राह्मण हैं।

ब्राह्मण :

ब्राह्मण शब्द ब्राह्मण की व्याख्या करनेवाले ग्रन्थों को भी कहते हैं। ब्रह्म शब्द स्वयं अपने अर्थो में प्रयुक्त होता है। उन अनेक अर्थों में एक अर्थ मन्त्र है - ब्रह्मो वै मन्त्रः (शतपथ ब्राह्मण ६/१/५)"[१]

इस प्रकार वैदिक मन्त्रों या ऋचाओं की व्याख्या करनेवाले ग्रन्थों का नाम ब्राह्मण है। ब्रह्म शब्द का दूसरा अर्थ यज्ञ है, याज्ञिक कर्मकाण्ड की विस्तृतता प्रस्तुत करने के कारण भी इन ग्रन्थों को ब्राह्मण ग्रन्थ कहते हैं।

श्री बलदेव उपाध्याय ब्राह्मण ग्रंन्थों पर विचार करते हुए लिखते है-

ब्राह्मणों में मन्त्रों कर्मो की तथा विनियोगों की व्याख्या है। ब्राह्मणों की अन्तरंग परिक्षा करने पर यह स्पष्ट होता है कि, ब्राह्मण ग्रन्थ यज्ञों की वैज्ञानिक, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक मीमांसा प्रस्तुत करनेवाला एक महनीय विश्वकोश है।

इन ब्राह्मण ग्रंन्थों में याज्ञिक विषयों पर उदीयमान समस्याओं का समाधान है, इसलिए हम इन्हें यज्ञ विज्ञान की संहिता भी कहें तो अनुपयुक्त नहीं होगा, क्योंकि यज्ञ का क्रियाकलाप भी स्वयं अपनें में एक विज्ञान है। इस यज्ञ विज्ञान का गम्भीर विवेचन करनेवाले ग्रन्थ ही ब्राह्मण हैं।

ब्राह्मण साहित्य के सर्वांगीण विवेचन करने पर हम इस समग्र साहित्य को दो रूपों विभक्त कर सकते हैं। एक विधि और दूसरा अर्थवाद। इस सम्बन्ध में विचार व्यक्त करते हुए **प्रा. विण्टरनिट्ज ने लिखा है** - प्राचीन ब्राह्मण ग्रन्थों के विषय को हम विधि और अर्थवाद इन दो भागों में रख सकते हैं। विधि का अर्थ होता है नियम और अर्थवाद का अभिप्राय है प्रशस्तिपूर्ण व्याख्या। ब्राह्मण ग्रन्थों में हमें कर्म अनुष्ठान विधि मिलती है और इन विधियों पर यज्ञ, कर्म तथा प्रार्थनाओं के अर्थ और उद्देश्य के ज्ञान के लिए भाष्य और व्याख्याएँ मिलती हैं।

ब्राह्मण काल की संस्कृति में वैदिक याज्ञिक कर्मकाण्ड चरम विकास को प्राप्त हो चुका था, मानव मात्र का अनुष्ठेय कर्म यज्ञ ही था, समस्त सुखों की, वैभव की उपलब्धि भी यज्ञकर्म से होती थी। यज्ञ ही देवता था वही **विष्णु था यज्ञो वै विष्णुः** भारतीयों के पीछे के काल के सम्पूर्ण धार्मिक और दार्शनिक साहित्य के ज्ञान के दृष्टीकोन से ब्राह्मण ग्रन्थ अत्यन्त ही उपादेय हैं और धर्म के विज्ञान इतिहास का अध्ययन करनेवाले के लिए अत्यन्त आनन्द प्रदायक भी हैं।

''ऋग्वेद का ब्राह्मण ग्रन्थ'' :

ऋग्वेद का प्रथम ब्राह्मण ग्रन्थ ऐतरेय ब्राह्मण द्वितीय कौषीतकी ब्राह्मण।

ऐतरेय ब्राह्मण ऋग्वेद का महत्त्वपूर्ण ब्राह्मण है। इस ग्रन्थ में चालीस अध्याय हैं जिन्हें आठ पंचको में विभक्तकिया गया है। इस ब्राह्मण के लेखक या संग्रहकर्ता के रूप में महीदास ऐतरेय का नाम लिया जाता है। प्रस्तुत ब्राह्मण में सोमयज्ञ का सविस्तर वर्णन है। प्रारम्भिक सोलह अध्यायों में एक दिन में समाप्त होनेवाले अग्निष्टोम नामक सोमयज्ञ का वर्णन है। सतरह एवं अठारहवें अध्याय में ३६० दिन में पूर्ण होनेवाले गवामयन नामक सोमयज्ञ का वर्णन है। उन्नीसवें अध्याय से लेकर चौबीसवें अध्याय तक बारह दिन में पूर्ण होनेवाले द्वादशाह नामक सोमयज्ञ का वर्णन है। अवशिष्ट अध्यायों में अग्निष्टोम यज्ञ तथाअन्य विषयों का उल्लेख है। तेईससे लेकर चालीसवें अध्याय तक राज्यभिषेक तथा राजपुरोहित आदि की स्थिति का भी दिगदर्शन किया गया है। इस ब्राह्मण के अन्तिम दस अध्यायों की रचना परवर्ती मानी गई है।

ऋग्वेद का दूसरा ब्राह्मण कौषीतकी :

ऋग्वेद के दूसरे ब्राह्मण को सांख्यायान ब्राह्मण भी कहा जाता है। यह ब्राह्मण ग्रन्थ ऐतरेय ब्राह्मण के प्रथम पाँच अध्यायों का ही परिवर्ध्दित रूप है। प्रारम्भिक छ:अध्यायों में विविध अन्न, यज्ञ, अग्निहोत्र यज्ञ, पौर्णिमास्येष्टि यज्ञ, ऋतुयज्ञ आदि यज्ञों का वर्णन है।

सातवें से लेकर तीसवें अध्याय तक ऐतरेय ब्राह्मण में वर्णित सोमयज्ञ का सविस्तर वर्णन किया गया है। इसमें ऐतरेय की अपेक्षा अधिक नवीनता विद्यमान है।

यजुर्वेद के ब्राह्मण ग्रन्थ :

शतपथ ब्राह्मण शुक्लयजुर्वेद, शतपथ ब्राह्मण ग्रंन्थो मे शीर्षस्थानीय है। यह ब्राह्मण सर्वाधिक प्रसिद्ध स्पष्ट विषय वस्तु युक्त एवं सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इस ब्राह्मणमें सौ अध्याय है अतः इसे शतपथ के नाम से अभिहित किया है। इस सुगठित ब्राह्मण का वैदिक साहित्य में ऋग्वेद के उपरान्त ही महत्त्वूपर्ण स्थान है। वाजसनेयी संहिता की भांति ही इस ब्राह्मण में सौ अध्याय हैं, इन अध्यायों का विभाजन चौदह काण्डों में हुआ है। इसके प्रारम्भिक नौ काण्डों में यजुर्वेदीय वाजसनेयी संहिता के प्रथम अठराह अध्यायों की विस्तृत व्याख्या है। यह अंश अन्तिम पाँच अध्यायों से प्राचीनतम है। प्रथम से लेकर पंचम काण्ड तक विषय की दृष्टि से एकरूपता है। इन अध्यायों में याजवल्क्य एकमात्र आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हैं याज्ञवल्क्य ही चौदहवें काण्ड में शतपथ के लेखक के रूप में उल्लिखित हैं- किन्तु ६ से ९ तक के काण्डों में जिनमें अग्निचयन का वर्णन है याज्ञवल्क्य का कहीं उल्लेख नहीं है। इनके स्थान पर शांडिल्य नाम के आचार्य को मान्यता प्राप्त है। यही आचार्य शांडिल्य दसवें काण्ड में वर्णित अग्निरहस्य के उपदेशक हैं। ग्यारहवें से लेकर तेरहवें काण्ड तक उपनयन, स्वाध्याय, अन्त्येष्टि, अश्वमेध, पुरूषमेघ, सर्वमेध आदि यज्ञों का तथा चौदहवें काण्ड में प्रवर्ग्य उत्सव का वर्णन है। इसी काण्ड के अन्त में हम उस महत्त्वपूर्ण बृहदारण्यक उपनिषद् को प्राप्त करते हैं जो दार्शनिक तत्त्व के लिए अन्यतम है।

शतपथ ब्राह्मण पर प्रदत्त परिचय से उसके महत्त्व का भी आभास होता है। शतपथ ब्राह्मण का काल याज्ञिक विधि-विधानों के पूर्ण विकास का काल था। शतपथ ब्राह्मण वर्ण्य विषयों के विस्तार, विचार-परम्परा तथा विवरण के कारण यह ब्राह्मण, ब्राह्मण-ग्रन्थों में मूर्धन्य स्वीकार किया जा सकता है। यह प्राचीनतम ब्राह्मणों में से एक है। शतपथ ब्राह्मण

स्वरांकित रूप में मिलता हैं, यह उसकी प्राचीनता का द्योतक है। याज्ञिक विधि विधानों का इस ब्राह्मण में पूर्ण प्रकर्ष मिलता है तथा यज्ञ के आध्यात्मिक रहस्य का पर्यालोचन करने के कारण भी इसका एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। आख्यान साहित्य की दृष्टि से भी यह ब्राह्मण महत्त्वपूर्ण है। प्राचीन आख्यानों में मनु की कथा बडी मार्मिक तथा सरस रूप में इसमें निबद्ध है।

शतपथ मे याज्ञवल्क्य के गुरू उद्दालक, आरुणि का व्यक्तित्व एवं पाण्डित्य आकर्षक रूप से उपन्यस्त है। अतः हम कह सकते हैं कि ऐतिहासिक तथ्यों के उद्‌घाटन के लिए भी इस ग्रन्थ की महती अक्षुण्ण है। धर्मशास्त्र एवं धर्म-विज्ञान के जिज्ञासु के लिए यह ब्राह्मण अनुपम आकार ग्रन्थ है। भाषा शास्त्रीय दृष्टि से भाषा के विकास की गाथा का अध्ययन यहाँ किया जा सकता है। ब्राह्मणों में यज्ञ एक वैज्ञानिक संस्था के रूप में हमारे सामने आता है। सुन्दर आख्यानों का मूलरूप हमें यहाँ मिला है जिनका विकास अवान्तर कालीन पुराणों में विशेषतः दृष्टिगोचर होता है।

सामवेद के ब्राह्मण ग्रन्थ :

सामवेद से सम्बध्द चार ब्राह्मण मिलते है। इनमें प्रथम महत्त्वपूर्ण ब्राह्मण का नाम "तांड्य ब्राह्मण है। यह पच्चीस अध्यायों की रचना है। इसलिए इसे पञ्चविंश ब्राह्मण भी कहा जाता है। रचना की दृष्टि से यह प्रौढ एवं प्राचीनतम है। इसमें सामान्यतः सौ यज्ञ का वर्णन है। एक दिन से लेकर वर्षो तक चलनेवाले यज्ञों की चर्चा इसमें है। अनेक आख्यानों का समावेश है, सरस्वती एवं दृषद्वती के तट पर होनेवाले यज्ञ उनके कर्ता तथा काल आदि का भी इसमें उल्लेख मिलता है। इस ब्राह्मण में व्रात्यस्तोम नामक एक अन्य यज्ञ का भी विधान है जिसके माध्यम से भ्रष्टों को शुद्ध करके ब्राह्मण जाति में उन्हें स्वीकार किया जाता था।

षडिंवशब्राह्मण :

यद्यपि रचना की दृष्टि से यह पूर्णत: स्वतन्त्र होने पर भी तांड्यब्राह्मण का अंगभूत ब्राह्मण स्वीकार किया जाता है। इसके अन्तिम अध्यायों को अद्भूत ब्राह्मण कहा जाता है। इसमें इन्द्रजाल (जादू) तथा अलौकिक घटनाओं का उल्लेख है। इसमें वेद के हास्य रोदन का भी संकेत है।

३. जैमिनीय ब्राह्मण :

तलवकार शाखा का यह ब्राह्मण तांड्य की अपेक्षा प्राचीन रचना है। इसमें पाँच मण्डल हैं। प्रथम तीन मण्डलों में याज्ञिक विधि का वर्णन है। चौथा मण्डल उपनिषद् ब्राह्मण कहलाता है। इसका विषय केनोपनिषद् जैसा ही है। पांचवे मण्डल का नाम आर्षेय ब्राह्मण है। इसमें सामवेदीय ऋदम् की एक लम्बी सूची है। जैमिनीय ब्राह्मण धर्म व आख्यान के इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण ब्राह्मण है किन्त यह जीर्ण शीर्ण स्थिति में ही उपलब्ध है। डॉ. रघुवीर ने इस महत्त्वपूर्ण ब्राह्मण को पूर्ण रूप से प्रकाशित किया है। यह जैमिनीय ब्राह्मण शतपथ ब्राह्मण के समान ही वैदिक विपुलकाय यागानुष्ठानों के रहस्य दर्शन के लिए नितान्त महत्त्वूर्ण रचना है।

सामविधान ब्राह्मण :

कुमारिल भट्ट के अनुसार निर्दिष्ट आठ ब्राह्मणों में से यह एक अन्यतम रचना है। इसकी विषयसामग्री ब्राह्मण ग्रन्थों में वर्णित सामग्री से नितान्त भिन्न है। इस आक्षेपार्ह ब्राह्मण ग्रन्थ में जादू टोना तथा विनाश, धनोपार्जन, नाना उपद्रवों की शक्ति के लिए सामगायन के साथ कुछ अनुष्ठानों का विधान है। इस ब्राह्मण के तीन प्रकरण हैं जिनमें धर्म सूत्रों में वर्णित दोष, अपराध, उनके प्रायश्चितों का प्रतिपादन है। इन आधारों पर हम इस ग्रन्थ को नूतन रचना कह सकते हैं। ऊपर निर्दिष्ट ब्राह्मणों के अतिरिक्त दैवत ब्राह्मण

उपनिषद ब्राह्मण, संहितोपनिषद् ब्राह्मण, देश ब्राह्मण का भी नाम कुछ ग्रन्थो में मिल जाता हैं जो कि स्वल्पाकार रचनाएँ हैं।

अथर्ववेदीय ब्राह्मण :

अथर्ववेद का एकमात्र ब्राह्मण गोपथ है। इसके दो भाग हैं १) **पूर्व गोपथ। २) उत्तर गोपथ** प्रथम भाग में पाँच अध्याय हैं तथा द्वितीय में ६ अध्याय। रचना काल की दृष्टि से ब्राह्मण साहित्य में यह अर्वाचीन रचना है। प्रस्तुत ब्राह्मण में प्राप्त शिव शब्द तथा व्याकरण परिष्कृत शब्दावली इस तथ्य की द्योतक है कि यह रचना वास्तव में अर्वाचीन है। विषय वस्तु की दृष्टि से पूर्वाद्ध मौलिक है किन्तु शेष भाग पर शतपथ ब्राह्मण की छाया अंकित है। इस परवर्ती रचना में ऋग्वेदीय ऐतरेय कौषीतकि तथा पंचविंश ब्राह्मण से भी विषय-सामग्री का चयन किया गया है।

सम्पूर्ण ब्राह्मण साहित्य के अध्ययन के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ऋग्वेद के ब्राह्मण होता के कार्यों की विशेष व्याख्या प्रस्तुत करते है। यजुर्वेदीय ब्राह्मण अध्वर्यु के कर्मकाण्ड की व्याख्या करते हैं। जबकि सामवेदीय ब्राह्मण उद्गाता नामक ऋत्विक के कार्यों के व्याख्याता है। अथर्ववेद का ब्राह्मण सभी ब्राह्मणों की विषय सामग्री एवं ऋत्विज कार्यों को अपना लेता है।

"आरण्यक ग्रन्थों का परिचय "

आरण्यक ग्रन्थों का उद्भव नैसर्गिक प्रक्रिया के अनुरूप ब्राह्मण ग्रन्थों के पश्चात् हुआ है। स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाना मानवीय स्वभाव है। वेदों और ब्राह्मणों में वर्णित यज्ञप्रक्रिया कष्ट-साध्य, दुर्बोध और नीरस होने के कारण अरूचिकर होती जा रही थी, अतः आत्मिक शान्ति के लिए अध्यात्म की आवश्यकता अनुभव की गई और स्थूल द्रव्यमय यज्ञ से सूक्ष्म अध्यात्मिक यज्ञ की ओर प्रवृत्ति हुई।

''आरण्यक का अर्थ ''

आरण्यक- शब्द का अर्थ है- अरण्य में होनेवाला (अरण्ये भव आरण्यकम्) अरण्य (वन) में होनेवाले अध्ययन अध्यापन चिन्तन मनन शास्त्रीय चर्चा और आध्यात्मिक - विवेचन आरण्यक के अन्तर्गत आते है। इन विषयों के संकलनात्मक ग्रन्थों को आरण्यक कहते हैं। यह भाव आचार्य सायण ने तैत्तिरीय आरण्यक के भाष्य में व्यक्त किया है कि अरण्य में इसका पठन पाठन होने से इसे आरण्यक कहते हैं'। इसमें आत्मविद्या तत्त्वचिन्तन और रहस्यात्मक विषयों का वर्णन है, अतः आरण्यकों को रहस्य भी कहा गया है। गोपथ ब्राह्मणा में **'सरहस्या'** के द्वारा रहस्य शब्द से आरण्यकों का निर्देश है।

''आरण्यकों का महत्त्व'' :

वैदिक वाङ्मय में आरण्यक ग्रन्थों का कई दृष्टि से महत्त्व है । इसके प्रमुख कारण ये हैं -

आरण्यक ग्रन्थ ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों को जोड़नेवाली कड़ी हैं। ब्राह्मण ग्रन्थो में यज्ञों के दार्शनिक और आध्यात्मिक पक्ष का जो अंकुरण हुआ है, उसका पल्लवित रूप आरण्यक ग्रन्थ हैं। इनमें उस विषय का विस्तृत विवेचन हुआ है। इसका ही सुविस्तृत रूप उपनिषदें हैं।

''सकाम से निष्काम की ओर प्रवृत्ति'':

श्रोत यज्ञ सकाम कर्म हैं, अतः निष्काम अध्यात्म की ओर प्रवृत्ति मानव की प्रकृतिका अंग है। गुहस्थ के लिए सकाम कर्म ठीक हैं, परन्तु वानप्रस्थी और सन्यासी के लिए ये हेय हैं, अध्यात्म - ज्ञान हेतु आरण्यकों की आवश्यकता हुई।

''स्थूल से सूक्ष्म की ओर'' :

आरण्यकों में यज्ञ प्रक्रिया के दार्शनिक पक्ष का विवेचन है। यज्ञ के गूढ भावार्थ को इनमें स्पष्ट किया गया है। इनमें ब्राह्मण ग्रन्थों में प्राप्त दार्शनिक संकेतों का विशदीकरण हैं।

''वेदों का नवनीत''

महाभारत का कथन है कि आरण्यक ग्रन्थ वेदों के सारभाग हैं। जैसे दही से मक्खन, मलय से चन्दन और औषधियों से अमृत प्राप्त होता है, वैसे ही वेदों से आरण्यक प्राप्त हुए हैं।

नवनीतं यथा दध्नो मलयाच्चन्दनं यथा।

आरण्यकं च वेदेभ्य ओषधिभ्योऽमृतं यथा।।

आरण्यकों में पवित्र ब्रह्मविद्या का वर्णन है, अतः इसके पढ़ने और सुनने का अधिकार भी संयमीवृत्ती और सात्त्विक प्रवृत्ति के व्यक्ति को ही है। सायण ने तैत्तिरीय आरण्यक की भूमिका में कहा है कि अव्रती को इसको पढ़ने और सुनने का अधिकार नहीं हैं।

''एतदारण्यकं सर्वं नाव्रती श्रोतुमर्हति''

'डॉ. राधाकृष्णन ने आरण्यकों के महत्त्व के विषय में कहा है कि ये वानप्रस्थ और सन्यासियों लिए आवश्यक अध्यात्म की सामग्री देते हैं' । डॉ. मैकडानल और प्रों. ओल्डेनबर्ग ने भी आरण्यकों को अध्यात्म ग्रन्थ बताते हुए इनकी प्रशंसा की है।

आरण्यक और उपनिषदों के विषय में साम्य होने पर भी अन्तर यह है कि आरण्यकों में मुख्य विषय प्राणविद्या और प्रतिकोपासना है, जबकि उपनिषदों में निर्गुण ब्रह्म के स्वरूप और उसकी प्राप्तिका विवेचन मुख्य है।

''आरण्यकों का प्रतिपाद्य विषय ''

आरण्यक ग्रन्थ उपनिषदों के पूर्वरूप हैं। उपनिषदों में आत्मा परमात्मा सृष्टि उत्पत्ति, ज्ञान, कर्म, उपासना और तत्त्वज्ञानका प्रतिपादन है। उसी तत्त्वज्ञान का प्रारम्भिक रूप हम आरण्यकों में पाते हैं।

''यज्ञ का दार्शनिक रूप''

आरण्यकों में वैदिक यागों के आध्यात्मिक और दार्शनिक पक्ष का विवेचन प्राप्त होता है। ऐतरेय, शतपथ, तांड्य, गोपथ आदि ब्राह्मणों में यज्ञ को विष्णु या ब्रह्म का स्वरूप माना गया है। यज्ञ की दार्शनिक व्याख्या ब्रह्म के स्वरूप का ही विवेचन है। आरण्यक यही विवेचन प्रस्तुत करते हैं।

''प्राण विद्या ''

आरण्यकों में प्राणविद्या के महत्त्व पर विशेष प्रकाश डाला गया है। ऐतरेय आरण्यक में प्राण विद्या का विशेष वर्णन है। ऋग्वेद में प्राणविद्या के सूत्र हैं -

आयुर्नप्राण :

''पुनः प्राणमिह नो धेहि''

अथर्ववेद में एक पूरा सूक्त (११.४.२६)"[२] प्राणविद्या के महत्त्व का वर्णन करता है। इसमें प्राण को संसार का स्वामी और नियन्ता कहा गया है। प्राण ही संसार का आधार है। ऐतरेय आरण्यक में इसी प्राणविद्या का विशदीकरण है। प्राण संसार का धारक है। मनुष्य से लेकर चींटी तक सभी पर निर्भर हैं। जबतक प्राण है तबतक ही जीवन है। सारा संसार प्राण से घिरा हुआ है। प्राण सर्वत्र व्याप्त हैं। प्राण से अन्तरिक्ष और वायु की उत्पत्ति हुई है। ये दोनों प्राणरूपी पिता की सदा सेवा करते हैं।

प्राण ही कालचक्र है। दिन-रात्रि प्राण एवं अपान हैं। वही वाणी में अग्नि है, चक्षु में सूर्य है आर मन में चंद्रमा है। प्राण ही ऋषियों के रूप में है। गृत्समद, विश्वामित्र, वामदेव अत्रि, भारद्वाज और वशिष्ट आदि सभी ऋषि प्राण के ही रूप हैं। प्राण विश्व का मित्र है, अतः वह विश्वामित्र है। प्राण शरीर में निवास करता है, अतः वह वशिष्ठ है। मैत्रायणी आरण्यक में प्राण को अग्नि और परमपत्मा कहा गया है।

प्राणोऽग्नि-परमात्मा (मैत्रा आरण्यक - ६,९)[३]

यज्ञोपवीत का उल्लेख :

यज्ञोपवीत का सर्वप्रथम उल्लेख (तैत्तिरीय ब्राह्मण ३, १०, ९, १२) में आता है। तैत्तिरीय आरण्यक में भी यज्ञोपवीत का महत्त्व वर्णित है। यज्ञोपवीत धारण करके जो पठन यज्ञ आदि जो भी कुछ किया जाता है वह सब यज्ञ की श्रेणी में आता है।

प्रसृतो ह वै यज्ञोपवीतिनो यज्ञः, यत् किं च ब्राह्मणो यज्ञोपवीती अधीते यजत एव तत्।। (तै. आ. २,१,९)[४]

श्रमण शब्द का प्रयोग :

श्रमण शब्द का तपस्वी के अर्थ में प्रयोग सर्वप्रथम तैत्तिरीय आरण्यक और बृहदारण्यक उपनिषद (४, ३, २२) में हुआ है। बौद्ध काल में यह शब्द बौद्ध भिक्षुओं के लिए प्रयुक्त होने लगा। **वाारिशना ह वा ऋषय श्रमणा : (तैत्तिरीयं आ. २, ७, १)**[५]

प्रव्रज्या का उल्लेख :

बृहदारण्यक में सन्यासी के अर्थ में प्रव्रज्या शब्द का उल्लेख है। प्रव्रज्या का अर्थ है- घर छोड़कर जाना। इसका पारिभाषिक अर्थ है तत्त्वदर्शन या ब्रह्मज्ञान के लिए घर छोड़कर वन आदि में जाना। अत एव संन्यासी के लिए परिव्राज् या परिवाट् और परिव्राजक शब्द हैं। बृह दारण्यक में कहा है कि आत्मतत्त्व का ज्ञान प्राप्त करनेवाला ही मुनि होता है। इस आत्मतत्त्व के ज्ञान और ब्रह्मलोक की इच्छासे ही व्यक्ती संन्यासी होता है।

एतमेव विदित्वा मुनिर्भवति।

एतमेव प्रव्रजिनी लोकमिच्छन्तः प्रव्रजन्ति।

आचारसंहिताः

वेद मानवमात्र के कर्तव्य - बोध के लिए सबसे प्रामाणिक धर्मग्रन्थ हैं। इनमें कर्तव्याकर्तव्य का यथास्थान विस्तृत वर्णन और प्रतिपादन है, इन में गुरू-शिष्य, पिता-पुत्र, पति-पत्नी, माता-पिता, समाज और व्यक्ति, राष्ट्र और राष्ट्रीयता, विश्वबन्धुत्त्व, परोपकार, उद्योग, दान-पुण्य, सत्कर्म एवं अतिथि सत्कार आदि को विस्तृत वर्णन मिलता है।

सामाजिक महत्त्व :

वेदों में प्राचीन अर्थव्यवस्था का विशद चित्रण प्राप्त होता है। वेदों में कृषि, आदान-प्रदान, व्यापार और वाणिज्य का स्वरूप, विविध धातुएँ नाप तोल के साधन प्रचलित मुद्राएँ, विविध शिल्प, अन्न-वस्त्र आदि का क्रय-विक्रय ऋणदान आदि से संबद्ध सामग्री प्राप्त होती है। व्यापार सफलता के लिए दो गुणों की आवश्यकता बताई गई है।

१) चरित्र : चरित्र की शुद्धि एवं व्यवहार कुशलता।

२) उत्थित : श्रम, दृढ निश्चय और उत्साह। अर्थशास्त्र का मूलमंत्र है आदान देहि मे **ददामि ते, नि मे धेहि नितें दधे निहारं च हरासि मे, निहारं निहराणि ते** ।। (यजुर्वेद- ३ -५० पृ.९९)[७] शुनं नो अस्तु चरितमुत्थितं च । (अथर्ववेद ३(१५-४)[८]।।

राजनीतिक महत्त्व :

वेदों में राजनीतिशास्त्र से सबंद्ध सामग्री बहुलता से उपलब्ध है। इनमें विशेष उल्लेखनीय है। राज्य की उत्पत्तिके सिद्धान्न, राज्य का स्वरूप, उद्देश और कार्य, राज्य के विविध अंग, राजा का निर्वाचन, राजा के कर्तव्य, संविधान और विधिनिर्माण, विविध शासन प्रणालियां , राज्य के संचालक, सभा, समिति, विदथ, संसद, आदि संस्थाएँ, शस्त्रास्त्र आदि। प्रजा के कर्तव्य आदि का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि राष्ट्र की रक्षा के लिए सदा जागरूक रहें ।

वयंराष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः स्याम्। (यजु ९।२३। पृ.२९३)[९]

प्रजातंत्रीय राज्यशासन सर्वोत्तम है ।

महते जानराज्याय। (यजु ९।४०)"[१०]

राजा का चुनाव

विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु। (अथर्ववेद ६ -८६-१)"[११]

त्वां विशो वृणतां राज्याय।।

सभा समिति और संसद की स्थापना,

सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापते दुहितरौ। (अथर्व ६-११०-१)"[१२]

सप्त संसदः । (अथर्ववेद २०- ११०-२।।)"[१३]

ऐतिहासिक तथ्य :

आरण्यकों में कतिपय ऐतिहासिक तथ्यों का भी उल्लेख है। तैत्तिरीय आरण्य में गंगा यमुना के मध्यवर्ती प्रदेश को अत्यन्त पवित्र बताया गया है। इसी में कुरूक्षेत्र और खाण्डव वन का भी उल्लेख है।

नमो गंगायमुनयोर्मध्ये ये वसन्ति :

शांखायन आरण्यक (६, १,) में उशीनर कुरू, पांचाल, मत्स्य, काशी और विदेह जनपदों का वर्णन है।

उशीरनेषु, मत्स्येषु कुरूपाचालेषु, काशिविदेहेषु। (शा.६.१)

मैत्रायणी आरण्यक में भारत के चक्रवर्ती सम्राटों के नाम मिलते है वे ये है-

केचित् सुद्युम्न भूरिद्युम्न, कुवलयाश्व, योनाश्व वध्रयश्व अश्वपीठ शशबिन्दु - हरिश्चंद्र अम्बरीष - नवक्तु शर्याति ययाति, अनरण्य - अक्षसेनादयः मिरूत्त भरत प्रभृतयों राजानः।

उपलब्ध आरण्यक ग्रन्थः

सम्प्रति केवल ६, आरण्यक ग्रंन्थ प्राप्य हैं। वेदों के अनुसार इन्हें इस प्रकार रख सकते हैं।

ऋग्वेदीय आरण्यक : ऋग्वेद से सम्बन्ध दो आरण्यक ग्रंन्थ है - ऐतरेय और शांखायन आरण्यक।

शुक्ल यजुर्वेदीय : बृहदारण्यक है। यह माध्यान्दिन और काण्व दोनों शाखों में उपलब्ध है।

कृष्णयजुर्वेदीय : कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय और काठक शाखाओं का एक आरण्यक है। तैत्तिरीय आरण्यक मैत्रायणीय शाखा का एक आरण्यक मैत्रायणीय आरण्यक है। इसको ही मैत्रीयणीय उपनिष्द भी कहते हैं।

सामवेदीय : सामवेद की जैमिनि शाखा का तवलकार आरण्यक है। इसको जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण भी कहते है। सामवेद की कौथुम शाखा का पृथक आरण्यक नहीं है। छान्दोग्य उपनिषद् का कौथुम शाखा से संबन्ध है। इसके कुछ अंशों को आरण्यक कहा जा सकता है।

अथर्ववेदीय : अथर्ववेद का कोई पृथक् आरण्यक नहीं है। गोपथ ब्राह्मण के ही ब्रह्मविद्या परक कुछ अंशो को आरण्यक कह सकते हैं।

१. ऐतरेय आरण्यक :

यह ऐतरेय ब्राह्मण का ही परिशिष्ट भाग है। इसमें पाँच भाग है। इन भागों को आरण्यक प्रपाठक कहते हैं। यह पुनः अध्यायों में विभक्त है। इसमें ऋग्वेद के मन्त्रों को बहुधा उदघृत किया गया है। इसके लिए तदुक्तम् ऋषिणा ऐसा संकेत दिया गया है।

ऐतरेय आरण्यक के विशिष्ट संन्दर्भ :

१. प्राणविद्या : इसमें प्राणविद्या का बहुत विस्तार से वर्णन किया गया है।

२. प्रज्ञा का महत्त्व : पुरुष प्रज्ञा संपन्न है, अतएव वह सभी पदार्थो को जान सकता है, देख सकता है और पा सकता है। (ऐतरेय आ. २.३.२)"[१४]

३. आत्मस्वरूप का वर्णन : आत्मा अदृष्ट, अज्ञात और अश्रुत है, किन्तु वही द्रष्टा, ज्ञाता और श्रोता है। वही जीव के अन्दर विद्यमान पुरूष आत्मा है। **स श्रोता, मन्ता विज्ञाता सर्वेषां भूतानां आन्तरात्मा स म आत्मेति विद्यात्।** (ऐतरेय आ. ३.२.४)"[१५]

४. वैदिक अनुष्ठान : इस विधी का उलंघन करनेवाले पशु, पक्षी, सर्प आदि की योनी में जाते है। वैदिक मार्ग के अनुयायी उत्तम लोकों को प्राप्त करते हैं।

स्त्रियोंका महत्त्व : पत्नी को प्राप्त करके ही मनुष्य पूर्ण होता है अन्यथा वह अपूर्ण है।

पुरूषो जायां वित्वा कृत्स्नतममिवात्मानं मन्यते। (ए. आ. १.३.५)"[१६]

शास्त्रीय महत्त्व : इसमें भाषा विज्ञान से संबन्ध कई विषय लिए गए है। यह प्रातिशाख्य और निरूक्त से पूर्ववर्ती है। इसमें अनेक पारिभाषिक शब्द दिये गये है। जैसे निर्भुज (संहिता) पतृण (पद) संहिता, संधि आदि शब्द!

आचार संहिता :इसमें नैतिकता और चारित्रिक उन्नति पर बल दिया गया हैं। सत्य भाषण का महत्व बताते हुए कहा गया है कि सत्य भाषण से लोक और परलोक दोनों सुधारते हैं। इस लोक में उसे श्री मिलती है और वह यशस्वी होता है।

२) शांखायन आरण्यक :

यह ऋग्वेदीय आरण्यक है। इसमें १५ अध्याय है। अध्याय ३ से ४ तक के भाग को कौषीतकि उपनिषद् कहते हैं। अध्याय ७ से ८ तक को संहितोपनिषद् कहते हैं। इसको कौषीतकि आरण्यक भी कहा है। अध्याय के अनुसार वर्ण्य विषय इस प्रकार हैं :

अध्याय १ और २ : इनमें कौषीतकि उपनिषद् है। इसका विवरण उपनिषद् प्रकरण में है।

अध्याय ७ से ८ : संहितोपनिषद्। इसका भी विवरण उपनिषद् प्रकरण में है।

अध्याय ९ : इसमें प्राण की श्रेष्ठता का वर्णन है।

अध्याय १० : इसमें अध्यात्मिक अग्निहोत्र के लिए एक विशेष याग का विधान है।

अध्याय ११: इसमें मृत्यु के निराकरण के लिए एक विशेष योग का विधान है।

अध्याय १२ : इसमें समृद्धि के लिए बिल्व (बेल) के फल से एक मणि बनाने का वर्णन है।

अध्याय १३ : इसमें श्रवण, मनन आदि के लिए शरीर शुद्धि तपस्या श्रद्धा और दम आदि की आवश्यकता का वर्णन किया गया है।

अध्याय १४ : इसमें अहं ब्रह्मास्मि और वेदों के अर्थ ज्ञान का महत्त्व बताया गया है।

अध्याय १५ : इसमें आचार्यो की वंशपरम्परा दी गई है।

शांखायण आरण्याक के विशिष्ट संदर्भ

१. **आध्यात्मिक अग्निहोत्र का महत्व :** इस आरण्याक में बताया गया है कि बाह्य अग्निहोत्र की अपेक्षा अभ्यान्तर (आध्यात्मिक) अग्निहोत्र अधिक महत्त्व पूर्ण है। जो साधक आन्तरीक आत्मतत्व को न जानकर केवल बाहरी यज्ञ करता है, वह भस्म में हवन करता है। सारे देवता शरीर के अन्दर प्रतिष्ठित हैं। आध्यात्मिक यज्ञ से उन सबकी तृप्ति हेाती है।

२. **तत्त्वमसि और अहं ब्रह्मास्मि :** वेदान्तदर्शन के महावाक्य ये दोनों सुभाषित इस आरण्याक में है। "तत् त्वम असि' वह ब्रह्म ही जीवरुप है। अहं ब्रह्मा अस्मि मैं ब्रह्मरुप हूँ यह अनुभूति साधना की पराकाष्ठा है।

३. **अह्म ब्रह्मास्मि का महत्व :** यह महावाक्य है। यही सर्वोच्च उपदेश है। यही ऋचाओं, यजुष, साम, अथर्व का शिरोभाग है।

४. **अर्थज्ञान का महत्व :** अर्थ ज्ञान के बिना वेदों का अध्ययन व्यर्थ है। वेदों के यथार्थ अर्थ को जानकर जो तदनुसार आचरण करता है वह समस्त पापों से दूर रहता है और मोक्ष का अधिकारी बन जाता है।

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूद्, अधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्।

योऽर्थज्ञ इत्, सकलं भद्रमश्नुते, नाकमेति ज्ञानविधूत पाप्मा।।

५. **आचार्यो की वंश परम्परा :** अध्याय १५ में आचार्ये की वंश परम्परा इस प्रकार दी है: स्वयंभू ब्रह्मा, प्रजापति, इन्द्र, विश्वामित्र, देवरात, साकमश्व, विश्वमना, समन्यु, बृहद्दिवा प्रतिवेश्य, सोम, सोमपा, सोमापि, प्रियव्रत, उद्दालक, आरुणि, कहोल, कौषीतकि और गुण शांखायन। इस गुण शांखायन से ही शांखायन अरण्यक की परम्परा आगे चली। कौषीतकि शांखायन के गुरु हैं। अतः आरण्यकों में गुरुशिष्य दोनों का संमिलित प्रयास है।

३. बृहदारण्यक :

यह शुक्ल यजुर्वेदीय आरण्यक है। यह शतपथ ब्राह्मण के अन्तिम १४ वे कांड के अन्त में दिया गया है। इसको आरण्यक की अपेक्षा उपनिषद के रुप में क्रमबद्ध मान्यता प्राप्त है। इसमें अमरत्व की विशद व्याख्या है। उपनिषद् में इसका विस्तार से विवरण दिया गया है।

४. तैतिरीय आरण्यक :

यह कृष्ण यजुर्वेदीय तैतिरेय शाखा का अरण्यक है। इसमें १० प्रपाठक या १० परिच्छेद हैं। प्रपाठकों के उपविभाग अनुवाक हैं। प्रपाठकों का नामकरण उनके प्रथम पद के आधारपर किया गया है। १० प्रपाठकों के नाम इस प्रकार है। १.भद्र २. सहवै, ३. चिति, ४. युग्जते,५. देव वै ६. परे ७. शिक्षा, ८. ब्रह्मविद्या, ९. भृगु १०. नारायणीय।

प्रथम प्रपाठक भद्रकर्णेभि मंत्र से प्रारम्भ हुआ है। अतः इस प्रपाठक का नाम भद्र है इसी प्रकार अन्य प्रपाठको के नाम है। प्रपाठको के अनुसार वर्ण्य विषय निम्नांकित हैं.

प्र.१ : इसमें आरूणि के तुक नामक अग्नि की उपासना और तदर्थ इष्टका चयन का वर्णन है।

प्र.२ : इसमें स्वाध्याय और पंचमहायज्ञो का वर्णन है।

प्र.३ : इसमें चातुर्होत्र चिति से संबद्ध मंत्र है।

प्र.४ : इसमें प्रवर्ग्य होम से संबद्ध मंत्र है।

प्र.५ : इसमें यज्ञ सम्बंधी कतिपय संकेत दिये गये है।

प्र.६ : इसमें पितृमेधसंबन्धी मंत्रोंका संकलन है।

प्र.७ से ९ : यह तैत्तिरीय उपनिषद् है।

प्र. १० : यह महानाराणीय उपनिषद् है। इसको खिलकांड मानते हैं।

''तैत्तिरीय आरण्यक के कुछ विशिष्ट सन्दर्भ :

१. प्रपाठक ७ से ९ तैतिरीय उपनिषद है और प्रपाठक १० महानाराणीय उपनिषद् है। इस प्रकार दो उपनिषदों का अन्तर्भाव इसमें दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार तैत्तिरीय आरण्यक केवल ६ प्रपाठक तक ही है।

२. पंच महायज्ञ : इसमें पंच महायज्ञों का दैनिक अनुष्ठान का निर्देश है। पाँच महायज्ञ ये है - १. ब्रह्मयज्ञ (संध्या), २. देवयज्ञ (अग्निहोत्र), ३. पितृयज्ञ (मातृ पितृ सेवा) ४. अतिथि यज्ञ (अतिथि सत्कार) इसको मनुष्य यज्ञ भी कहते है। ५. बलिवैश्वदेवयज्ञ या भूतयज्ञ (पशु पक्षी आदि को अन्न देना)

"पंच वा एते महायज्ञाः सततं प्रतायन्ते"

३. स्वाध्याय : वेदों के मंत्रों के अध्ययन को स्वाध्याय कहते हैं। यदि एक मंत्र का भी नियम से अध्ययन किया जाता है तो स्वाध्याय पूर्ण माना जाता है।

भौगोलिक वर्णन : प्रपाठक ४ में कुरुक्षेत्र और खांडव वन का वर्णन है।

निर्वचन : कुछ शब्दो के निर्वचन भी मिलते हैं। जैसे कश्यप का अर्थ सूर्य है।

सर्वं पश्यति इतिपश्यक : यह सबको देखता है आद्यन्त वर्ण विपर्ययसे पश्यक का कश्यप हो गया। इसमे वर्णो का स्थान परिवर्तन हुआ है।पश्यकः कश्यपो भवति।

व्यासमुनि : व्यासमुनिका पाराशर्य (पराशर के पुत्र) के नाम से उल्लेख है। सुर्यनमस्कार का भी उल्लेख है।

५. मैत्रायणीय आरण्यक :

यह कृष्ण यजुर्वेदीय मैत्रायणीय शाखा का आरण्यक है। इसको मैत्रायणीय उपनिषद् भी कहते हैं। इसमें ७ प्रपाठक हैं। प्रपाठक खंडो में विभक्त हैं। वर्ण्य विषय ये हैं -

प्र.१ : ब्रह्मयज्ञ : राजा बृहद्रथ को वैराग्य और मुनि शाकायन्य द्वारा उसे उपदेश।

प्र.२: शाकायन्यद्वारा ब्रह्मविद्या का उपदेश।

प्र.३ : जीवात्मा के स्वरुप का वर्णन कर्मफल और पुनर्जन्म।

प्र.४ : ब्रह्म सायुज्य प्राप्ति के उपाय।

प्र.५ : प्रपाठक कौत्सरयनी स्तुति। ब्रह्मा की नाना रुपो में स्थिती।

प्र.६ : ओम, प्रणव, उदगीथ और गायत्री की उपासना। आत्मयज्ञ का वर्णन।षडङयोग शब्दबह्म निर्विषय मन से मोक्षप्राप्ति।

प्र. ७ : आत्मस्वरुप वर्णन :

'मैत्रायणीय आरण्यक के विशिष्ट संदर्भ''

१. **ओम का महत्व :** ओम् ही प्रणव और उदगीथ है। वह ब्रह्म है। ओम के द्वारा ब्रह्म की उपासना करें।

य उदथ स प्राणाय यत्तद् उपासीत ।

२. **बह्मा के अनेक रुप :** ब्रह्मा ही ब्रह्मा विष्णु रुद्र, प्रजापति, अग्नि वरुण, वायु, इन्द्र और चन्द्रमा है।

३. **चारो वेद ब्रह्म के निश्वास :** ऋग्वेद, यजुर्वेद सामवेद और अथर्ववेद को ब्रह्म का निश्वास बताया गया है।

एतस्य महतो भूतस्य निश्वसितम् एतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदों ऽथर्वाङिगरस।

४. **चक्रवर्ती राजाओं के नाम :** भारत के १५ चक्रवर्ती राजाओं के नाम दिए गये है।

५. **मन का महत्व :** मन ही सारी बौद्धिक क्रियाओं का संचालक है। देखना सुनना आदि मन के कारण ही होता है। अत एव काम, संकल्प, विचिकित्सा (सन्देह) श्रद्धा, अश्रद्धा, धैर्य -अधैर्य, धी (बुद्धिज्ञान) ह्र (लज्जा) भय ये सब मन ही के स्वरुप है।

६. **ज्ञान के विघ्न :** इसमें ज्ञान के विघ्नों की एक लम्बी सूची दी गई है। इनमें से कुछ विघ्न ये हैं: मोह का प्रपंच, मनोरंजनप्रियता प्रवार, भिक्षावृत्ति,शिल्पों में विशेष अभिरुची, पाखण्डों में रुचि, चाटुकारिता, अभिनय में रुचि, कुतर्क की प्रवृत्ति, इन्द्र जाल (जादू दिखाना) आदि कार्य में रुचि।

चित्तशुद्धि से मोक्ष : चित्त या मन ही बन्धन का कारण है। चित्तशुद्धि ही मोक्ष का सर्वोत्तम उपाय है।

तवलकार आरण्यक :

ओम और गायत्री का महत्त्व। ओम् परम ज्ञान और बुद्धि का कारण है। ओम् से ही गायत्री की उत्पत्ति हुई है। गायत्री से ही प्रजापति और देवों ने अमरता प्राप्त की।

तद् एतद् अमृतं गायत्रम् । एतेन वै प्रजापतिरमृतत्त्वं अगच्छत ।

एतेन देवा : । एतेन ऋषयः । (जैमि. उप.ब्रा.३.७.३)

ब्रह्मा उ गायत्री। (जैमि. उप. ब्रा.१.१.८)

गायत्री के रुप में यह ज्ञान सर्वप्रथम कश्यप ऋषि को प्राप्त हुआ।

वेदों से सृष्टि प्रक्रिया

इसमें वर्णन है कि सृष्टि प्रक्रिया का प्रारम्भ वेदों से हुआ।

अतिमानवीय शक्ति प्राप्त करना : इसमें अतिमानवीय शक्तियों की प्राप्ति के लिए कतिपय साधनाओं का उल्लेख है जैसे - अर्ध रात्री में श्मशान साधना आदि।

प्राचीन धार्मिक मान्यताएँ : इसमें कुछ प्राचीन धार्मिक मान्यताओं का उल्लेख है जो अन्य ब्राह्मणों में अप्राप्य है। जैसे प्रेतात्माओं द्वारा साधकों का मार्ग निर्देशन, मृत व्यक्तियों का पुनः प्रकट होना आदि।

सामगान के तत्त्वों की व्याख्या : इसमें सामगान के तत्त्वों की आध्यात्मिक, आधिदैविक, और आधिभौतिक दृष्टि से व्याख्या की गई है।

प्राचीन भाषा और शब्दावली : इसमें प्राचीन भाषा, प्राचीन व्याकरण संबन्धीरूप और शब्दावली प्राप्य है।

देवशास्त्रीय एवं ऐतिहासिक तथ्य : इसमें देवशास्त्र से संबध्द अनेक आख्यान दिए गये हैं। अनेक ऐतिहासिक तथ्यों का भी इसमें समावेश है।

''अश्वमेघ आदि यज्ञ''

यजुर्वेद के कई अध्यायों में 'मेध' वाले यज्ञ हैं। यथा 'अश्वमेध'' (अध्याय २२-२९) पुरूषमेध, नरमेध, (अ. ३०.३१) सर्वमेध, (अ. ३२, ३३) पितृमेध अ. ३५) आदि। कुछ भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानो में यह भ्रांति है की 'मेध' शब्द केवल बलि या वध का वाचक है। मेध शब्द मेधृ - संगमे)गुणों से युक्त होना मेध (ज्ञानवृद्धि) है। अतः केवल हिंसा अर्थ को लेकर बलि देना अज्ञानता है। कालिदास का प्रयोग है **''प्रजायै गृहमेधिनाम्' (रघुवंशम्)** अर्थात् सन्तान के लिए गृहमेधी होना यह गृहस्थ धर्म को अपनाना। गृहमेध का प्रयोग घर को बलि देना या घर का वध करना नहीं है। ब्राह्मण ग्रंन्थों के देखने से ज्ञात होता है की मेध शब्द का प्रयोग उन्नति, प्रगति, तेजस्विता आदि के लिए

होता था। यजुर्वेद में मेध शब्द का प्रयोग अन्न के लिए हुआ है। शतपथ तैत्तिरीय और कोषीतकि ब्राह्मणों में मेध का अर्थ घी, अन्न और भोज्य पदार्थ तथा पौष्टिक पदार्थ बताया गया है अत: जौ चावल और पुरोडाश (मालपुआ) को मेध बताया है।

यजुर्वेद में अश्वमेध आदि शब्द राष्ट्रीय उन्नति प्रगति के लिए हैं। जैसे पितृमेध या पितृयज्ञ का अभिप्राय माता-पिता की सेवा करना और उन्हें अन्न आदि से तृप्त रखना। मेध शब्द का प्रयोग श्रीवृद्धि, उन्नति आदि के लिए होता था। शतपथ और तैत्तिरीय आदि ब्राह्मणों में अश्वमेध की अनेक पारिभाषिक व्याख्याएँ की गई हैं। इनके अनुसार अश्वमेध का अर्थ है - राष्ट्र की श्रीवृद्धि, राष्ट्र को धन-धान्य से समृद्ध करना, राष्ट्र को तेजस्वी ओजस्वी और ब्रह्मवर्चस्वी बनाना। इसी प्रकार पुरूषमेध या नरमेध का अर्थ है- मनुष्य की सर्वांगीण उन्नति। सर्वमेध का अर्थ है प्रजामात्र की सर्वतोमुखी उन्नति। अतएव गोपथ ब्राह्मण में कहा है कि सर्वमेध अर्थात समस्त प्रजाजनों की समुन्नति के द्वारा राजा सबका अधिपति बनता है गोमेध का अभिप्राय है - गोवंश की रक्षा और पशुसमृद्धि। मेध शब्द ईश्वरोपासना आदि के प्रसंगो में आत्मसमर्पण या ईश्वरार्पण के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार अन्त्येष्टि के प्रसंग में नरमेध या पितृमेध शब्द अन्त्येष्टि का बोधक है।

उपनिषद् परिचय :

उपनिषद् का अर्थ :

उपनिषद् शब्द उप + नि + सद् + क्विप् अर्थात् उप और नि उपसर्गपूर्वक सद् धातु से क्विप् प्रत्यय करने पर बनता है। इसका अर्थ है- उप समीप नि-निश्चय से या निष्ठापूर्वक, सद्-बैठना अर्थात् तत्वज्ञान के लिए गुरू के पास सविनय बैठना।

श्री शंकराचार्य ने उपनिषद् का अर्थ ब्रह्मविद्या माना है। उन्होंने उपनिषद् शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है। सद् धातु षद्लृ - विशरणगत्यवसादनेषु के तीन अर्थ हैं-

१. विशरण :

नाश होना, जिसमें संसार की मूलभूत अविद्या का नाश होता है।

२. गति :

पाना या जानाना, जिससे ब्रह्म की प्राप्ति होती है या उसका ज्ञान होता है।

३. अवसादन :

शिथिल होना, जिससे मनुष्य के दु:ख या बन्धन शिथिल होते हैं। इस प्रकार श्री शंकाचार्य ने अविद्या का नाश, ब्रह्मप्राप्ति और उसका ज्ञान तथा दु:ख निरोध, इन तीन अर्थों को लेकर उपनिषद् को ब्रह्मविद्या का द्योतक माना है।

ईश - केन -कठ - प्रश्न- मुण्ड - माण्डुक्य - तैत्तिरीय ।

ऐतरेयं च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं तथा।।

वैदिक मतानुयायी इनके अलावा श्वेताश्वेतर को भी प्रामाणिक उपनिषद् मानते हैं। इनके अतिरिक्त कौषीतकि और मैत्रायणीय भी प्राचीन माने जाते है। इस प्रकार प्राचीन उपनिषदों को मुख्य माना है। उनमें पूर्वोक्त १० उपनिषदों के अतिरिक्त श्वेताश्वेतर, उपनिषद् है।

''उपनिषदों का रचनाकाल'' :

प्रा. रानडे ने उपनिषदों के रचनाकाल के विषय में कहा है कि इनके रचना काल के विषय में ठीक ठीक निश्चय करना कठिन है। उपनिषद् काल की दो सीमाएँ निर्धारित की जा सकती हैं। पूर्वसीमा १० वी शती ई. पू. और अपर सीमा छठी शताब्दी ई.पू. उपनिषदों में बुद्ध, बौद्ध धर्म और बौद्ध दर्शन का कहीं उल्लेख नहीं हैं अत: बुद्ध के आविर्भाव से पूर्व इनकी अपर सीमा है। इस प्रकार छठी शताब्दी ई. पू. से पहले मुख्य ११ उपनिषदें बन चुकी

थी। कुछ सम्प्रदायों की उपनिषदें बाद में भी बनती रही हैं। हमें केवल वेद सम्मत ११ उपनिषदें अभिप्रेत हैं जो प्राचीन मानी जाती हैं।

'' उपनिषदों में दार्शनिक विवेचन'' :

वेदों के पश्चात् आरण्यक ग्रन्थों में जो आध्यात्मिक जिज्ञासा, मनन, चिन्तन और स्वानुभूति की प्रक्रिया विकसित हुई, उसी का सुव्यवस्थित एवं परिपक्व स्वरूप उपनिषदों में दृष्टिगोचर होता है। उपनिषदों का दर्शन परस्पर विरोधी गुणों का समन्वय है। इसमें एक ओर ज्ञानमार्ग की उपयोगिता वर्णित है तो दूसरी और कर्ममार्ग और भक्तिमार्ग की, एक ओर प्रवृत्तिमार्ग की प्राधानता है तो दूसरी ओर निवृत्तिमार्ग की एक ओर द्वैत है तो दूसरी ओर त्रैत सिद्धान्तों का वर्णन है। उपनिषदों की प्रमुख विशेषता यह है कि यह सर्वत्र विवादास्पद विषयों पर समन्वय प्रस्तुत करते हैं, जैसे विद्या और अविद्या, संभूति और असंभूति, श्रेय और प्रेय, ज्ञान और कर्म, प्रवृत्ति और निवृत्ति, एकत्त्व ओर अनेकत्त्व, अद्वैत और द्वैत सिद्धान्तों में समन्वय प्रस्तुत करता है। इसका अभिप्राय यह है कि एकांगी दृष्टिकोण हानिप्रद है। प्रत्येकवाद के दो पक्ष होते हैं। दोनों पक्षों के गुणों को ग्रहण करना चाहिए।अत एव ईश उपनिषद् में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि यदि अविद्या (कर्म) का मार्ग अन्धकार का मार्ग है तो विद्या (ज्ञान) का मार्ग उससे अधिक अन्धकारमय है। अतः ज्ञान और कर्म दोंनो का समन्वय अभीष्ट है। एक भौतिक जगत् के के लिए लाभ प्रद है तो दूसरा अध्यात्म के लिए। यहाँ उपनिषदों में प्रतिपादित दार्शनिक विचारों की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की जा रही है।

ब्रह्म का स्वरूप :

उपनिषदों में मुख्य रूप से ब्रह्म के रूप से ब्रह्म के स्वरूप का प्रतिपादन है। बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है कि ब्रह्म न स्थूल है, न सूक्ष्म, न लघु है, न गुरू, उसमें न रस है न गन्ध है उसके न आँख है न कान। वह नित्य है, उसमें आकाश ओतप्रोत है।

अस्थुलम्, अनणु अह्रस्वम्, अदीर्घम्, अरसम्, अगन्धम्, अचक्षु, अश्रोत्रम्, अस्मिन् नु खल्वरे गार्गि! आकाश ओतश्च प्रोतश्च।

''ब्रह्म से मन आदि में गति''

ब्रह्म चक्षु, श्रोत्र, वाणी और मन आदि की पहुँच से परे है। उसकी सत्ता से ही चक्षु, श्रोत्र, वाणी और मन आदि कार्य करते हैं।

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि, नेदं यदिदमुपासते।।

ब्रह्म सर्वव्यापी है : ब्रह्म इस चराचर जगत् में व्याप्त है

सः ओतः प्रोतश्च विभुः प्रजासु। यजुः

वह सारे जीवों के अन्दर विद्यमान है, वह अन्तर्यामी है, वह कर्मों का यन्ता है, वह साक्षी है, वह चेतन है, वह अद्वितीय और निराकार है।

साक्षीचेता केवलो निगुर्णश्च।।

ओं ईशावास्यमिदं सर्वं, यत् किंच जगत्यां जगत्। (ईशोपनिषद् १) यजुः

एको देवः सर्वभूतेषु : गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।

कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः, साक्षी चेता केवलो निगुर्णश्च (श्वेताश्वेतर उपनिषद्)

उपनिषद् के इसी भाव को कवि ने अपनी कविता में चित्रित किया है -

प्रभु ही समाया है हरियालियों मे,

वही झूमता है झुकी ड़ालियों में।

''ब्रह्म सृष्टिकर्ता''

सृष्टि के आदि में ब्रह्म अकेला था। उसने कामना की। उसके ईक्षण से ही सृष्टि की रचना हुई।

तदेव सोम्येदमग्र आसीद्, एकमेवद्वितीयम्।

तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेतितत् तेजोऽसृजत।।

ब्रह्म-साक्षात्कार :- लक्ष्य - केनापनिषद् का कथन है कि मानव-जीवन का लक्ष्य ब्रह्म साक्षात्कार है। उसके बिना जीवन निरर्थक है।

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति, न चेदिहावेदीमहती विनष्टि :। (केनोप २.५पृ. ३०)"[१७]

उप.म. भाषांतर

आत्मदर्शन से सर्वज्ञता : बृहदारण्यक का कथन है कि आत्मा का ही दर्शन, श्रवण, मनन और ध्यान करना चाहिए। उसके ज्ञान से सर्वज्ञता प्राप्त होती है।

आत्मा वा अरे द्रष्टव्य: श्रोतव्य: मन्तव्य: निदिध्यासितव्य :।

आत्मनि दृष्टे श्रुते मते वा इदं सर्वं विदितम्। (बृहदा. उप ४.५.६)"[१८]

धन अमरत्व का नाशक : बृहदारण्यक का कथन है कि आत्मज्ञान में धन साधक नहीं अपितु बाधक है। धन से अमरत्व की आशा दुराशा मात्र है।

अमृतत्वस्य तु नाशाऽस्ति वित्तेन । (बृहदा ४.५.३)"[१९]

''अद्वैततत्त्व''

वेदान्त दर्शन में जिस अद्वैत ब्रह्म का प्रतिपादन किया गया है, उसका बीज माण्डूक्य उपनिषद् में प्राप्त होता है। इसमें ब्रह्म की जाग्रत् आदि ४ अवस्थाएँ, स्थूल आदि शरीर, वैश्वानर, तैजस, प्राज्ञ आदि समष्टि और व्यष्टि रूप, आनन्दमय आदि कोश तथा तुरीय (चतुर्थ) शिव अवस्था का प्रतिपादन है। इसी आधार पर वेदान्त दर्शन में चतुष्पाद ब्रह्म की कल्पना की गयी है।

प्रपंचोशमं शान्तं शिवं अद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेय :

(मांडूक्योपनिषद् ७)"[२०]

त्रैतवाद् : त्रैतवाद के समर्थन में ऋग्वेद (२.१६५.२०) और अर्थववेद (९.९.२०) में पठित प्रसिद्ध मंत्र -

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया ----। श्वेतोश्वेतर उपनिषद् में प्राप्त होता है। इसमें ईश्वर जीव और प्रकृति इन तीन तत्त्वों का उल्लेख और इनके गुणों का वर्णन है। ईश्वर कर्मफल का अभोक्ता और साक्षीरूप है। जीव कर्मफल भोक्ता है। प्रकृति अचेतन है।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वादु अत्ति, अनश्नन् अन्योऽभिचाकशीति।। ऋग्वेद (२.१६५.२०)[२१] **''माया और मायी''**

वेदान्त में प्रसिद्ध "माया" का सर्वप्रथम वर्णन श्वेताश्वेतर उपनिषद् में प्राप्त होता है। इसमें प्रकृति को " माया " और पुरूष को मायिन् मायावी माया का स्वामी या कर्ता कहा गया है।

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् । (श्वेता. ४.१०)[२२]

प्रकृति त्रिगुणात्मक : श्वेताश्वेतर में प्रकृति के तीन गुणों का सांकेतिक रूप में उल्लेख है। साथ ही यह भी निर्देश है कि यह प्रकृति अज (नित्य) है। सत्त्वगुण के लिए शुक्ल, रजस् के लिए लोहित (लाल) और तमस के लिए कृष्ण शब्द हैं। सांख्य और योदगर्शन में इन्हीं तीन गुणों का विवेचन है।

अजामेकां लोहित शुक्ल-कृष्णां बह्वी : प्रजाः सृजमानां सरूपा : । (श्वेताश्वेतर - ४.५)

तत् त्वमसि : वेदान्त में प्रतिपादित ' तत् त्वमसि' महावाक्य का मूल छान्दोग्य उपनिषद् में प्राप्त होता है। इसमें उद्दालक मुनि ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को **' तत् त्वमसि'** का विस्तृत उपदेश किया है।

स य एषोऽसितदात्म्यमिदं सर्वंतत् सत्यं स आत्मा तत् त्वमसि श्वेतकेतोइति।

(छान्दोग्य ६.६.८.७)[२३]

''एकेश्वरवाद''

श्वेताश्वेतर उपनिषद् में एकेश्वरवाद का प्रतिपादन हुआ है। वह ईश्वर एक है। वह अपनी शक्तियों से नानारूपों को धारण करता है, वही अग्नि, सूर्य, वायु, चन्द्रमा, ब्रह्म और प्रजापति आदि अनेक रूपों में है।

क) य एकोऽवर्णो बहुधा शक्तियोगात् -

वर्णाननेकान् निहितार्थोदधाति। (श्वेता ४.१)

ख) तदेवाग्नित दादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमा : ।

तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदापस्तत् प्रजापतिः।। (४.२)

कर्मफल : शुभ और अशुभ कर्मो का फल अवश्य प्राप्त होता है। शुभ कर्मो सें पुण्य और अशुभ कर्मो से दु:ख होता है।

"अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्"

पुण्यो वै पुण्येन कर्मणाभवति, पापः पापेन। (बृहदारण्यक ३५.३२.१३)[२४]

श्रेय और प्रेय : कठोपनिषद् में श्रेय और प्रेय दो मार्गों का उल्लेख है। भौतिक उन्नति को प्रेय मार्ग कहते हैं और अध्यात्म को श्रेय मार्ग कहते हैं। सामान्य व्यक्ति प्रेय मार्ग को अपनाते हैं, परन्तु ज्ञानी व्यक्ति श्रेय मार्ग को अपनाकर आत्मिक आनन्द पाते हैं।

तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति।

हीयतेऽर्थाद् य उ प्रेयो वृणीते।। (कठोपनि १.२.१)[२५]

गीता के आधार दो मंत्र : ईशोपनिषद् के दो मन्त्र संपूर्ण गीता के आधार हैं। गीता में दो विषयों को मुख्यरूप से लिया गया है। -१) आत्मा अमर है और शरीर नश्वर है। २) निष्काम कर्मयोग । ईश उपनिषद् से ये दोनों भाव लेकर गीता का प्रणयन हुआ है। ये दो मंत्र हैं।

क) वायुरनिलममृथेदं भस्मान्तं शरीरम् ।

ओं क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृतम् स्मर ।। (ईशोपनिषद् मं. १७)[२६]

अर्थात् यह आत्मा अमर है। यह शरीर नश्वर है, भस्म हो जाता है।

ख) कुर्वन्नवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः ।

एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ।। (ईश मंत्र २)[२७]

अर्थात् मुनष्य निष्काम भाव से कर्म करता हुआ सौ वर्ष जीने की इच्छा करे। निष्काम कर्म करनेवाला कर्म के बन्धन में नही फँसता है।

विश्वबन्धुत्त्व : विश्वबन्धुत्त्व और समदर्शिता का संदेश सर्वप्रथम ईश उपनिषद् में प्राप्त होता है।

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मान्येवानुपश्यति।

सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।। (ईश.मं ६)[२८]

इस मंत्र में कहा गया है कि जो सब जीवों में अपनापन देखता है और अपने में सब जीवों को देखता है, वह किसी से घृणा नहीं करता है।

समन्वय की दृष्टि : उपनिषदों में सर्वत्र समन्वय की भावना है। दोनों पक्षों में जो ग्राह्य हो, उसे ले लेना चाहिए। इसी दृष्टि से ज्ञानमार्ग और कर्ममार्ग (विद्या और अविद्या) के समन्वय का उपदेश दिया गया है। कर्ममार्ग (अविद्या) से भौतिक जीवन सफल होता है और ज्ञानमार्ग (विद्या) से मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार संभूति और असंभूति के समन्वय का उपदेश है। संभूति से अध्यात्मवाद और असंभूतिसे भौतिकवाद लिया गया है। भौतिकवाद से लौकिक उन्नति होती है और अध्यात्मवाद से पारलौकिक प्रगति होती है । अर्थात् अथाह आनन्द की प्राप्ती होती है।

एकात्मवाद : ईश उपनिषद् में एकात्मवाद का प्रबल समर्थन किय गया है।

उपनिषद् में कहा गया हैं कि जो सब प्राणियों में एकत्व की अनुभूति करने लगता है, उसे संसार में कहीं भी मोह और शोक नहीं होता है।

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद विजानतः ।

तत्र को मोह कः शोकः एकत्वमनुपश्यति।।

(ईशोपनिषद्-६ पृ.१२)"[२९]

''प्रमुख उपनिषदों का संक्षिप्त विवरण''

१) ईशोपनिषद् : यह उपनिषद् सारी उपनिषदों की आधार है। इसमें वर्णित सिद्धान्तो का ही सारी उपनिषदों में विशदीकरण है। यह मूलरूप में यजुर्वेद का ४० वाँ अध्याय है। क्रम आदि में थोड़ा अन्तर हुआ है।

जिसका सारांश इस प्रकार है-ईश्वर सारे चर-अचर जगत् में व्याप्त है। त्याग भाव से संसार का उपभोग करो दूसरे के धन के लिए लालायित न हों (मंत्र - १) सौ वर्ष तक निष्काम भाव से कर्म करते रहों (मंत्र २) आत्महत्या करनेवाले घोर नरक में जाते हैं। इसका यह भी अभिप्राय है कि जो आत्मा की आवाज नही सुनते हैं, वे घोर नकर में जाते हैं। (मंत्र ३) ईश्वर चल-अचल दूर - पास और बाहर-भीतर सर्वत्र है। (मंत्र ५) सबको आत्मवत् देखने से कभी भी मोह-शोक नहीं होता। (मंत्र ७) ईश्वर निराकार सर्वव्यापक, शुद्ध और निष्पाप है। वही सबको कर्मानुसार ऐश्वर्य देता हैं। (मंत्र८) अविद्या (कर्ममार्ग) और विद्या (ज्ञानमार्ग) दोनों का समन्वय रखो। कर्ममार्ग से भौतिक सुख ओर ज्ञानमार्ग से मोक्ष की प्राप्ति होती है। (मंत्र ९ से ११) सत्य का मुख सुनहरे पात्र (भौतिक आकर्षण) से ढका हुआ है। इसको हटाकर सत्यरूप परमात्मा का दर्शन करें । (मंत्र १५) जो पुरूष (शक्ति, ऊर्जा) सूर्य में है वही जीवन में भी है। (मंत्र १६) शरीर नश्वर है, आत्मा अमर है। सदा ओम् का स्मरण करो। (मंत्र १७) हम ऐश्वर्य के लिए सन्मार्ग पर चलें। (मंत्र १८)

क) ईशावास्यमिदं् सर्वं यत् किं च जगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधःकस्यस्विध्द्नम्।।

ख) विद्ययाऽमृतश्नुते ।

ग) अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् ।

२) केनोपनिषद् : इसको 'तवलकार उपनिषद्' भी कहते हैं। इसमें ४ खंड हैं प्रथम दो खंड पद्यात्मक हैं और शेष दो गद्यात्मक इसका संबन्ध सामवेद से है।

२) ''केनोपनिषद्''

प्रथमखंड मे बताया गया है कि ब्रह्म चक्षु-श्रोत्र-वाणी और मन की पहुँच से परे है। उसकी सत्ता से ही आँख, कान, वाणी, प्राण और मन अपना कार्य करते हैं। निर्गुण ब्रह्म को जानो।

द्वितीय खंड में बताया गया है कि ब्रह्म अवर्णनीय और अनिर्वचनीय है। इस जीवन की सार्थकता ब्रह्म ज्ञान से है, अन्यथा यह निरर्थक है।

तृतीय और चतुर्थ खंड में कथा दी गई है कि ब्रह्म की विजय को अग्नि वायु आदि ने अपनी विजय समझा, ब्रह्म ने देवों की परीक्षा के लिए यक्ष को रखा और कहा कि यह कौन है ? यक्ष ने अग्नि और वायु की परीक्षा के लिए तिनका रखा। उसे न अग्नि जला सका और न वायु उड़ा सका।

इन्द्र की परीक्षा के समय यक्ष के स्थान पर उमा प्रकट हुई। उसने बताया कि ब्रह्म की शक्ति के आधार पर ही अग्नि वायु आदि में शक्ति है; अन्यथा उनमें कोई शक्ति नहीं है। इन्द्र (जीवात्मा) ब्रह्मको समीप से जान पाता है। उसकी प्राप्ति के लिए ही जप संयम आदि हैं।

यस्यामतं तस्य मतं, मतं, यस्य न वेद सः।

अविज्ञातं विजानतां, विज्ञातमविजानताम्।। (केन. २.३) पृ.३० उप.म.भा)[''३०]

३) ''कठोपनिषद''

यह कृष्ण यजुर्वेद की कठ शाखा से संबद्ध है। इसमें २ अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय में ३ खंड (वल्ली) हैं। इसमें काव्यात्मक मनोरम शैली में गूढ दार्शनिक तत्त्वों का विवेचन है। अपनी रोचकता के कारण यह सुविख्यात है। इसमें सुप्रसिद्ध यम और नचिकेता की कथा है।

संक्षिप्त कथा : यम-नचिकेता संवाद

उद्दालक ऋषि के पुत्र वाजश्रवस् सर्वमेध यज्ञ के अन्त में ऋत्विजों को जीर्ण शीर्ण गायें दक्षिणा में दे रहे थे। नचिकेता उनका पुत्र था। उसको पिता के इस कृत्य पर ग्लानि हुई। उसने कहा पिताजी, मुझे किसको दोगे। पिता ने क्रोध में कहा - यम को। नचिकेता यमराज के यहाँ पहुँच गया । यमराज ने अतिथि- सत्कार में उपेक्षा के प्रायश्चित के रूप में उसे तीन वर दिए । नचिकेता ने तीन वर माँगे

१) मेरे यमलोक से लौटनेपर पिता मुझे देखकर प्रसन्न हों ।

२) दिव्य अग्निविद्या।

३) जीवन और मृत्यु का रहस्य ।

यमराज ने दो माँगे स्वीकार कर लीं। नचिकेता के बहुत हठ करने पर यम ने जीवन-मृत्यु का रहस्य उसे बताया। तीसरे प्रश्न के उत्तर मे सारी ब्रह्मविद्या आ गई।

''कठोपनिषद में दार्शनिक महत्त्वपूर्ण संदर्भ ''

१) संसार अनित्य है। संसार के भोग - विलास क्षणिक हैं। धन से आत्मिक शान्ति नहीं मिलती

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्य : । (कठ १.१.२७ पृ.७ उप.म.भा.)"[३१]

२) श्रेय और प्रेय दो मार्ग हैं। सामान्य जन जीवनयापन के लिए प्रेय मार्ग (भौतिक सुख) को अपनाते हैं परन्तु विद्वान् व्यक्ति श्रेयमार्ग (अध्यात्म मार्ग) को ही अपनाते है। श्रेयमार्ग आत्मिक शान्ति और मोक्ष का साधन है।

श्रेयो हि धीरोऽभिप्रेयसो वृणीते,

प्रेयो मन्दो योगक्षेमौ वृणीते (कठ १.२.२ पृ.७१)"[३२]

३) ओम् समस्त वेदों और शास्त्रों का सार है। ओम् (ईश्वर) ब्रह्म के लिए सारे जप-तप आदि किए जाते है। वही संसार में सबसे बड़ा सहारा है।

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति

तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीमि - ओम् इत्येतत् (कठ १.२.१५- पृ.७७ उप.म.भा)"[३३]

एतदालम्बनम् श्रेष्ठम्, एतदालम्बनम् परम्। (कठ १.२.२७)"[३४]

इसी भाव को कवि ने व्यक्त किया :

ले के दिल में फरियाद तुझको करते हैं याद।

जब हों संकट की घड़ियाँ माँगे तुझसे इमदाद।

सबसे बढ़ के जग में तेरा ऊँचा आधार।

४) यह आत्मा ज्ञान-विज्ञान मेधा आदि से प्राप्य नहीं है। आत्म समर्पण से ही प्राप्य है। भक्त पर उसकी कृपा होती है और उसे आत्मदर्शन होता है:

नायमात्मा बलही नेन लभ्य,न मेधया न बहुना श्रुतेन

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्य :

यमेवैषवृणुते तेन लभ्यः । (कठ १.२.२२) पृ-७९ उप.म.भा.)"[३५]

६) जो मुनष्य ज्ञान (विवेक) को सारथि बनाता है, और मन को लगाम। वही परम पद को प्राप्त होता है।

७) आत्मज्ञान के लिए सदा जागरूक रहना और सत्संग में प्रवृत्त होना आवश्यक है। यही भाव भक्त की इस वाणी में झलकता है-

मन हो मधुपूर्ण कलश मेरा आँखों में ज्योति छलकती रहे

ऐसा मधु पीने को तुम से

जागती ही रहूँ सोऊँ न कभी

मैं क्या हूँ राह मेरी क्या है।

यह सत्य सदा मैं समझ सकूं।

तेरी राह पें चलते चलते कभी,

मेरे पाँव रूके न थके कभी।

यह कठिन मार्ग तीक्ष्ण उस्तरे की धार पर चलने के तुल्य है-

क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया। (कठ १.२.१४पृ. ८५ उप. म. भा.)[३६]

वह परमात्मा ही सारे सूर्य, चन्द्र तारों आदि का प्रकाशक है। उसकी ज्योति से ही सब तेजोमय है।

तमेव भान्तमनुभाति सर्वं, तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।

४) '' प्रश्नोपनिषद्''

ब्रह्म के ज्ञान के लिए ५६ ऋषि महर्षि पिप्पलाद के पास आते हैं। वे अध्यात्म - विषयक ६ प्रश्न पूछते हैं। महर्षि पिप्लाद भी अत्यन्त सुन्दरता तथा सहजता से उत्तर देते हैं। वे ६ प्रश्न इस प्रकार है-

१. सृष्टि की उत्पत्ति कहाँ से होती है ?

२. प्रजा के धारक और प्रकाशक में आना और निकलना कैसे होता है ?

३. प्राण की उत्पत्ति, उसका शरीर में आना और निकलना कैसे होता है ?

४. स्वप्न, स्वप्नदर्शन, जागना आदि क्रियायें कैसे होती है ? कौन सोता जागता है ?

५. ओम् के ध्यान का क्या फल है ?

६. षोडशकला वाला पुरूष कौन है, और वह कहाँ रहता है ?

इस उपनिषद् में प्राण और रयि से सृष्टि उत्पत्ति बताई है। प्राणशक्ति संसार का आधार है। सूर्य में प्राणशक्ति है, वही सारे संसार को जीवनशक्ति देता है। तपस्या, ब्रह्मचर्य, श्रद्धा और विद्या से ही आत्मतत्त्व का ज्ञान होता है।

अ) प्राण: प्रजानां उदयत्येष सूर्य: (प्र.१.८ पृ.१२९, उ.म.भा.)"[३७]

ब) प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम्। (२.६) (पृ. १३४) उ.म.भा.)"[३८]

इ) स मिथुनम उत्पादयते, रयिं च प्राणं च । (१.४) पृ.१२८ उ.म.भा)"[३९]

ई) तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया विद्यया आत्मानं अन्विष्यात् । (१.१०) (पृ.१३० उ.म.भा.)"[४०]

५) "मुण्डकोपनिषद्"

यह अथर्ववेदीय उपनिषद् है । यह मुण्डित अर्थात् संन्यासियों के लिए रची गई है। इसमें ३ मुण्डक हैं और प्रत्येक दो खंडों में विभक्त हैं। इस उपनिषद् में ब्रह्मा ने अपने ज्येष्ठपुत्र को ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया है।

"मुण्डकोपनिषद् के महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ "

परा और अपरा विद्या: चारों वेद और वेदांग अपरा विद्या हैं। ब्रह्मविद्या को ही परा विद्या कहा जाता है जिससे अक्षर ब्रह्म का ज्ञान होता है। (मु. १.१.३.४)

सृष्टि उत्पत्ति : जैसे मकड़ी अपना जाल बनाती है और फिर अपने में ही समेट लेती है वैसे ही इस विश्व की निर्मिति उस परमेश्वर से होती है ओर अन्तमें उसी में लय को प्राप्त होती है।

यथोर्णनाभिसृजते गृह्णते। (मु.१.१.७) पृ.१८६. उ.म.भा.)"[४१]

परमात्मा अशरीरी है : परमात्मा अमूर्त है, अनादि है, प्राण और मन से रहित है। वह संसार के अन्दर बाहर सर्वत्र है।

दिव्यो ह्यमूर्तः पुरूष ------ अप्राणो ह्यमनः। (२.१.२ मु.)"[४२]

जीवन का लक्ष्य ब्रह्म है : प्रणव (ओम्) को धनुष बनाओ, जीवात्मा को बाण और ब्रह्म को लक्ष्य। एकाग्र चित्त होकर लक्ष्य ब्रह्म को बींधो।

प्रणवो धनुःशरो ह्यात्मा, ब्रह्मतल्लक्ष्यमुच्यते ।

अप्रमत्तेन वेद्धव्यं, शरवत् तन्मयो भवेत्।। (मु. २-२-४ पृ.१९७. उ.म.भा)"[४३]

ब्रह्म की ज्योति से सूर्य आदि में प्रकाश : सूर्य चन्द्र तारा आदि में अपना प्रकाश नहीं है। उसी ब्रह्म के प्रकाश से सब प्रकाशित हैं।

इसी भाव को किसी कवि ने इस प्रकार व्यक्त किया है-

सूरज ये चाँद तारे चमके तेरे सहारे।

सब तू ही तू पुकारें उनपे कृपा तुम्हारी।।

"सत्य और तप से ब्रह्मप्राप्ति"

सत्य और ब्रह्मचर्य से ब्रह्म की प्राप्ति होती है। निष्पाप व्यक्ति ही हृदयस्थ उस ब्रह्म को देख पाते हैं।

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा--ब्रह्मचर्येण । (मु.३.१.५)"[४४]

सत्य की विजय होती है : सत्य से ही देवयान प्राप्त होता है। सत्य से ही परमपद की प्राप्ति होती हैं।

सत्यमेव जयति नानृतं सत्येन पन्था वितथो देवयानः (३.१.६)

ब्रह्म समुद्रवत् है : तत्त्वज्ञानी पुरूष ब्रह्म में इसी प्रकार लीन हो जाता, जैसे नदियाँ अपना नाम और रूप छोड़कर समुद्र में एकरूप हो जाती हैं।

यथा नद्यः स्यन्दमाना समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति । (३.२.६) इसी उपनिषद् में है।

अनेक श्लोक और भाव कठ और मुण्डक में समानरूप से प्राप्त होते हैं।

६) ''माण्डूक्य उपनिषद्''

यह उपनिषद् लघुकाय होने पर भी भाव-गाम्भीर्य के कारण बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसमें १२ वाक्य या खंड हैं। इसमें बताया गया हैं कि यह सारा संसार वर्तमान, भूत और भविष्यत् सब कुछ ' ओम्' की ही व्याख्या है। ओम् के अतिरिक्त और कुछ नही हैं। ओम् का एक एक अक्षर अ, उ, म् की विभिन्न अवस्थाओं के फलस्वरूप सृष्टि के विभिन्न रूप हैं। वेदान्त की मूल भावना इस उपनिषद् में प्राप्त होती है।

७) ''तैत्तिरीय उपनिषद् ''

तैत्तिरीय आरण्यक के ही तीन प्रपाठकों (७.८ और ९) को तैत्तिरीय उपनिषद् कहा जाता है। प्रपाठकों के नामों में परिवर्तन कर दिया गया है। संहितोपनिषद् (प्र.७) को शिक्षावल्ली, ८ वारूणी उपनिषद् (प्र. ८.९) को क्रमशः ब्रह्मानन्दवली और भृगुवल्ली नाम दिया गया। इसमें तीन प्रपाठकों के स्थान पर तीन वल्ली (अध्याय) हैं । इनके वर्ण्य विषय इस प्रकार हैं। -

१) शिक्षावल्ली : शिक्षाशास्त्र, संहिता के अनेक रूप, भूः, भुवः, स्वः तीन व्याहृतियाँ, आत्मा का निवास, ओम् ब्रह्म की व्याख्या, सत्य तप और स्वाध्याय का महत्त्व, दीक्षान्त उपदेश।

२) ब्रह्मानन्द वल्ली : अन्न, प्राण, विज्ञान, मन और आनन्दमय इन पाँच कोशों का वर्णन, ब्रह्म रसरूप है, सूर्य और पुरूष दोनों में एक ही शक्ति है।

३) भृगुवल्ली : पंचकोशों का वर्णन, अन्न का स्वरूप अन्न का विराट् रूप ।

"तैत्तिरीय उपनिषद् के महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ "

भाषा विज्ञान : शिक्षावल्ली में शिक्षा की व्याख्या करते हुए भाषा विज्ञान से संबद्ध ६ शब्द दिऐ हैं।

१) वर्णः वर्णमाला।

२) स्वर : तीन स्वर, उदात्त, अनुदात्त और स्वरित

३) तीन मात्रा : ह्रस्व, दीर्घ प्लुत ।

४) बल : दो प्रकार के प्रयत्न, बाह्य प्रयत्न, अभ्यन्तर प्रयत्न । वर्णोच्चारण में आवश्यक प्रयत्न को बल कहते हैं।

५) साम : सम, सुस्पष्ट और निर्दोष उच्चारण ।

६) सन्तान : संहिता, पदों का सानिध्य। (पदों की समीपता)

वर्ण : स्वरः, मात्रा, बलम्, साम, सन्तानः, इत्युक्तः शिक्षाध्यायः।

ब्रह्मचारी के गुण : वेदरक्षा, शम, दम आदि गुणों को ग्रहण करना, तेजस्विता और यशस्विता। (तैत्तिरीय उप. १.४.१-३)

३)ब्रह्म का रूप आकाश : ब्रह्म का शरीर या स्वरूप आकाश है। यह यजुर्वेद के ओं खं ब्रह्म की ही व्याख्या है। (४०.१७) (आकाश शरीर ब्रह्म) (तै.उ. १.५.२)

४) दीक्षान्त प्रवचन : यह इस उपनिषद् का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रसंग है। इसके कुछ सुभाषित इस प्रकार हैं।

सत्यं वद, धर्मं चर स्वाध्यायान्मा प्रमदः

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव । आचार्य देवो भव। श्रद्धया देयम् । श्रिया देयम्

५) पंचकोष : इसमें पाँच कोशों का वर्णन है। १) अन्नमयकोश, २) प्राणमय कोश, ३) मनोमय कोश , ४) विज्ञानमय कोश , ५) आनन्दमय कोश ।

६) अन्न ब्रह्म : अन्न से प्रजा जीवित रहती है। इसी भाव को योगेश्वर श्रीकृष्ण जी ने गीता में प्रकट किया है - **अन्नाद् भवन्ति भूतानि।** अन्न से ही प्रजा जीवित रहती है। अन्न ही जीवन का आधार है। यह ब्रह्म का रूप है। अन्नं ब्रह्म उपासते ।

७) रसो वै स : ब्रह्म का स्वरूप ही रस या आनन्द है। उसको प्राप्त कर पूर्ण तृप्ति हो जाती है । (२.७)

८) ईश्वरी नियम कठोर : उपनिषद् का कथन है कि सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, इन्द्र और मृत्यु ये ईश्वरीय दण्ड के भय से नियमित रूप से चलते हैं।

सूर्य निकले तेरी दया से,

चन्द्रमा निकले तेरी कृपा से ।

सब चलें नियम अनुसार,

शतबार तुझे प्रणाम।।

भीषोदेति सूय : मृत्युर्धावति पंचमः। (तै.उ. २.८) ८-१-पृ.३११ -उ.म.भा.)"[४५]

"अन्न समृद्धि आवश्यक "

अन्न रूपी ब्रह्म का बहुत विस्तार से वर्णन है। अन्न की निन्दा न करें। अन्न न फेंके। सदा अन्न समृद्धि का ध्यान रखें । अन्नदान में असावधानी न करें । निर्धनों को अन्नदान करें।

अन्नं न निन्द्यात् । अन्नं बहु कुर्वीत । न कंचन वसतौ प्रत्याचक्षीत् । (तै. ३.६ ते १०)"[४६]

८) "ऐतरेय उपनिषद्"

यह ऐतरेय आरण्यक का एक अंश है। उसके द्वितीय अध्याय के चतुर्थ खंड से लेकर षष्ठ खंड तक का नाम ऐतरेय उपनिषद् है। इसमे तीन अध्याय हैं। इनमें प्रतिपाद्य विषय इस प्रकार है :

अध्याय १ : परमात्मा के ईक्षण से सृष्टि :- सर्वप्रथम जल की सृष्टि । शरीर में सभी देवों का विभिन्न रूप में निवास । विधृति द्वारा (ब्रह्मरन्ध्र) से आत्मा का इस शरीर में प्रवेश । ब्रह्मरन्ध्र ही नन्दन वन है। शरीर में व्याप्त ब्रह्म के दर्शन से ही जीवात्मा का नाम 'इन्द्र' पड़ा है।

अध्याय २ : इसमें पुनर्जन्म के सिद्धन्त का प्रतिपादन है और कर्मानुसार विभिन्न योनियों में जन्म का वर्णन है।

अध्याय ३ : इसमें प्रज्ञान ब्रह्म का वर्णन है। मनोविज्ञान की दृष्टि से यह अध्याय महत्त्वपूर्ण है। मन ही ब्रह्म, इन्द्र और प्रजापति है। मन के ही ये विभिन्न नाम है।

विज्ञान, प्रज्ञान, मेधा, धृति, मति, मनीषा, स्मृति, संकल्प, काम, प्राण आदि ।

४) प्रकार की सृष्टि : १) अण्डज, पक्षी आदि, २) जरायुज मनुष्य आदि, ३) स्वदेज जूँ आदि, ४) उद्भिज वृक्ष आदि।

९) ''छान्दोग्य उपनिषद् ''

यह सामवेदीय उपनिषद् है। इसमें ८ अध्याय या प्रपाठक हैं। यह प्राचीनता, प्रौढता, ब्रह्मज्ञान और प्रमेय बहुलता के कारण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

इस उपनिषद् के प्रतिपाद्य विषय इस प्रकार है :

अध्याय १ : ओम् (प्रणव, उद्गीथ) की उपासना, ऋक् और साम का युग्म, वाक्-मन और प्राण की उपासना, प्रणव और उद्गीथ की एकता, साम का आधार स्वर, प्राण आदित्य और अन्न का महत्त्व, शौव उद्गीथ ।

अध्याय २ : पंचविध साम की उपासना, सप्तविध साम त्रयीविद्या । धर्म के ३ स्कन्ध। ओम् ही वेदत्रयी का सार।

अध्याय ३ : देवमधु के रूप में सूर्य की उपासना, गायत्री का महत्त्व। प्राण ही वसु रूद्र और आदित्य हैं । घोर अंगिरसद्वारा देवकी पुत्र कृष्ण को अध्यात्म की शिक्षा।

अध्याय ४ : रैक्वद्वारा अध्यात्म शिक्षा। सत्यकाम जाबाल की कथा। सत्यकाम जाबालद्वारा उपकोसल को ब्रह्मज्ञान की शिक्षा। ब्रह्म के चार पाद। (चतुष्पाद ब्रह्म)

अध्याय ५ : प्राण की श्रेष्ठता । प्रवाहण जैबलि के दार्शनिक सिद्धान्त, परलोक विज्ञान। राजा अश्वपतिद्वारा सृष्टि उत्पत्ति विषयक प्रश्नों के उत्तर में ६ दार्शनिक सिद्धान्तों का समन्वय ।

अध्याय ६ : महर्षि आरूणि द्वारा अपने पुत्र श्वेतकेतु को अद्वैतवाद का उपदेश । तत्त्वमसि का विस्तृत प्रतिपादन।

अध्याय ७ : ऋषि सनत्कुमार का नारद को उपदेश । **यौ वै भूमा तत् सुखम्** (भूमा-दर्शन की शिक्षा)

अध्याय ८ : देवराज इन्द्र और असुरराज विरेचन को प्रजापतिद्वारा आत्मज्ञान की शिक्षा। आत्मप्राप्ति के कुछ व्यावहारिक उपाय।

१) उद्‌गीथ : ओम् (परमात्मा) के लिए उद्‌गीथ शब्द का प्रयोग हुआ है, उद्‌गीथ का अर्थ है- उद्‌गीत, उत्कृष्ट गीत, सर्वोत्तम संगीत। परमात्मा ही सर्वोत्तम संगीत है। ओम् की ही उपासना करनी चाहिए। उद्‌गीथ (ओम्) ही सारे वेदों का सार है।

ओमिति एतदक्षरम् उद्‌गीथम् उपासीत।

एष रसानां रसतमः य उद्‌गीथ : ।।

२) भूमा दर्शन : भूमा (भूमन्) का अर्थ है महान् शक्ति ब्रह्म । ब्रह्म ही सबसे महान् है। वह सबसे उच्च आनन्द और सुख है। थोड़े में अशान्ति और दु:ख है। महान् में आनन्द है। सर्वत्र ब्रह्म का दर्शन करना भूमा दर्शन है।

यो वै भूमा तत् सुखं नाल्पे सुखमस्ति। (७.२३.१)

३) अभय : अभय उपनिषदों की सर्वोत्तम शिक्षा है अभय निर्भयता । ओम् के जप से निर्भयता आती है। ओम् के कारण देव अमर और निर्भय होते हैं।

४) धर्म के तीन स्कन्ध : धर्म के तीन मुख्य रूप हैं - यज्ञ अध्ययन, और दान।

त्रयो धर्मस्कन्धा : यज्ञोऽध्ययनं दानमिति। (२.२३.१)

५) सर्वं खल्विदं ब्रह्म : यह सारा संसार ब्रह्मरूप है। संसार में ब्रह्म ही सर्वोत्तम शक्ति है। यह अद्वैतवाद का उद्‌घोष है। ब्रह्म को ही तत् - जलान् कहते हैं। वह ज +ल + अन् - ज का अर्थ है जनी-प्रादुर्भावे उससे सृष्टि उत्पन्न होती है। ल- ब्रह्म में सब का लय है। अन् उसके कारण सब में प्राणशक्ति है। अन-प्राणने ।

सर्वं खल्विदं ब्रह्म, तज्जलान् इति शान्त उपासीत । (३.१४.१)

६) प्राण का महत्त्व : प्राण ही सर्वदेवमय हैं। प्राण ही वसु रूद्र और आदित्य देवता है।

प्राणा वाव वसवः रूद्रा : आदित्या : । (३.१५.१ से ५ तक)

७) दक्षिणा : दीक्षा की वास्तविक दक्षिणा तप दान, आर्जव (सुशीलता) अहिंसा और सत्य भाषण है।

८) तत् त्वमसि : यह महावाक्य माना जाता है। तत्-वह परमात्मा, त्वम् असि - तू जीव है, अर्थात् जीव परमात्मा का ही अंश है। सारे संसार में परमात्मा का सूक्ष्म रूप व्याप्त है। वह परमात्मा की शक्ति जीव में भी है।

एतदात्म्यमिदं सर्वं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो।

९) मन, प्राण और वाणी : खाए हुए अन्न का सूक्ष्म तम भाग ही मन है इसीलिय कहा है- **जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन ।** पिए हुए जल का सूक्ष्मतम भाग प्राण है और खाए हुए तेज का सूक्ष्मतम भाग वाणी है।

'जलं वै जीवनम्'' अन्नमशितम्---- योऽणिष्ठः सा तु वाक् ।

तीन प्रकार के जीव : अण्डज (पक्षी आदि) जीवज (मनुष्य आदि) और उद्भिज्ज (वृक्षादि) इनसे ही सृष्टि का विस्तार है ।

भूतानां त्रीण्येव बीजानि, अण्डजं, जीवजम्, उद्भिज्जम् इति।

एकतत्त्व के अनेक रूप : केवल मिट्टी से सैंकड़ो प्रकार के मिट्टी के बर्तन बनते हैं। अलग-अलग नाम रूप होते हैं। केवल मिट्टी के ज्ञान से सारे पदार्थो का ज्ञान हो जायेगा। इसी प्रकार पदार्थो के मूल आत्मा के ज्ञान से सारे पदार्थों का ज्ञान हो जायेगा। भिन्न नामरूप केवल शब्दकृत भेद हैं।

अर्थज्ञानपूर्वक यज्ञ करें : जो अर्थ ज्ञान के बिना मन्त्रों से यज्ञ करता है। वह अग्नि के स्थान पर भस्म में आहुति डालता है।

शौव उद्‌गीथ : संगीत का दुरूपयोग करनेवालों पर यह मार्मिक व्यंग्य है। जो भौतिक उद्देश्यों से मंत्र-साधना, कर्मकाण्ड या संगीत करते हैं, उसे शौव उद्‌गीथ (कुक्कर गायन) समझना चाहिए । शौव शब्द श्वा (कुत्ता) से बना है। साम-संगीत आत्मिक उन्नति के लिए । छान्दोगय उपनिषद् के प्रथम अध्याय के अन्त में इस शौव उद्‌गीथ का वणैन है ।

अथातः शौव उद्‌गीथ : । (१.१२.१ से ५ तक)

१०) ''बृहदारण्यक उपनिषद्''

यह शतपथ ब्राह्मण के १४ वें काण्ड का अन्तिम भाग है। यह शुक्ल यजुर्वेद से संबद्ध है। ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् तीनों में इसकी चर्चा होती है। यह आकार में ही विशालकाय नहीं है, अपितु तत्त्वज्ञान में भी अग्रगण्य है। इसके विवेचन गम्भीर उदात्त और प्रामाणिक हैं। यह अध्यात्म शिक्षासे ओत प्रोत है। इसमें ६ अध्याय हैं और उपखंडों (ब्राह्मण) में विभक्त हैं।

''बृहदारण्यक उपनिषद् के वर्ण्य विषय''

अध्याय १ : यज्ञिय अश्व के रूप में परम पुरूष का वर्णन, मृत्यु का विकराल रुप जगत् की उत्पत्ति, प्राण की श्रेष्ठता का वर्णन।

अध्याय २ : अभिमानी गार्ग्य और काशिराज अजातशत्रु का संवाद। ब्रह्म के दो रूप-मूर्त और अमूर्त याज्ञवल्क्य का अपनी दोनों पत्नियों - कात्यायनी और मैत्रेयी में संपत्ति का विभाजन, मैत्रेयी का संपत्ति अस्वीकार करना और याज्ञवल्क्य से ब्रह्म का उपदेश प्राप्त करना।

अध्याय ३ :

जनक सभा में याज्ञवल्क्य का अपने प्रतिपक्षियों को हराना, गार्गी और याज्ञवल्क्य के प्रश्नोत्तर।

अध्याय ४:

याज्ञवल्क्य का जनक को ब्रह्मविद्या का उपदेश इसमें पुनः याज्ञवल्क्य का संपत्ति विभाजन का वर्णन, मैत्रेयी को ब्रह्मविद्या का उपदेश।

अध्याय ५ :

प्रजापति का देव मनुष्य और असुरों को द,द,द, का उपदेश। ब्रह्म के विभिन्न रूपों का वर्णन, प्राण ही वेदरूप है। गायत्री के विभिन्न रूप।

अध्याय ६:

प्राण की श्रेष्ठता, ऋषि प्रवाहन जैबलि श्वेतकेतु का दार्शनिक संवाद, पंचाग्नि-मीमांसा। उपनिषदीय ऋषियों की वंश परम्परा का विस्तृत वर्णन।

बृहदारण्यक के विशेष सन्दर्भ :

१. द द द :

देवता मनुष्य और असुर तीनों पिता प्रजापति के पास पहुँचे और कुछ ज्ञानोपदेश की जिज्ञासा प्रकट की। प्रजापति ने तीन बार द, द, द, कहा देवों ने इसका अर्थ लिया दम- अर्थात् इन्द्रिय दमन मनुष्यों ने अर्थ लिया दत्त - दान करो। असुरों ने अर्थ लिया दयध्वम् - दया करो। इस प्रकार क्रमशः तीनों ने दम, दान, दया की शिक्षा प्राप्त की। (बृहदारण्यक ५.२.१ से ३)

२. आत्मा द्रष्टव्य :

याज्ञवल्क्य ऋषि ने मैत्रेयी को उपदेश दिया कि आत्मा का ही दर्शन, श्रवण, मनन और ध्यान करना चाहिए। आत्मा के दर्शन श्रवण मनन और ध्यान से संसार की सभी वस्तुओं का ज्ञान हो जाता है।

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः

आत्मनि दृष्टे श्रुते मते विज्ञाते इदं सर्वं विदितम्।।

३. याज्ञवल्क्य मैत्रेयी संवाद :

संपत्ति विभाजन के समय में मैत्रेयी ने कहा मुझे भौतिक संपत्ति नहीं चाहिए। सारी संपत्ति भी मिल जाए तो मैं अमर नहीं हो सकूँगी। धन से अमरत्त्व नही मिलेगा, अतः मुझे ब्रह्मज्ञान दीजिए।

अमृतत्वस्य तु नाऽऽशासित वित्तेन।

४. आत्मा के लिए सभी कार्य :

पति प्रेम, पत्नि प्रेम, धन प्रेम, पुत्र प्रेम आदि सारे प्रेम आत्मा की अपनी प्रसन्नता के लिए किए जाते हैं, वस्तु के लिए नहीं । अतः मूल तत्त्व आत्मा को जानना चाहिए।

आत्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति। (४.५.६)

मूल तत्त्व को पकड़ो :

शब्द को नहीं पकड़ सकते हैं, परन्तु दुन्दभि को पकड़ ने से शब्द पकड़ में आ जायेगा। इसलिए मूल कारण आत्मा को पकड़ो। उसको पकड़ने से सब कुछ पकड़ में आ जायेगा।

''ग्रहणेन शब्दो गृहितः ''

असतो मा सद्गमय :

इस उपनिषद् के सर्वोत्तम उपदेशों में से यह एक है। हे परमात्मन! हमें असत्य से सत्य की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर मृत्यु से बचाकर अमरत्व की ओर ले चलो। (१.३.२८)

असतो मा सद् गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्माऽमृतं गमय।

ब्रह्म एक है मन से ही दृश्य : ब्रह्म एक है। अनेक मानना अज्ञान है। वह मन से देखा जा सकता है। "मनसेवानुद्रष्टव्यं नेह नानास्ति किंचन"।

कर्मफल अवश्यंभावी : पुण्य और पाप का फल अवश्य मिलता है। पुण्य से पुण्य और पाप से पाप मिलता है। जैसा करेंगे वैसा फल मिलेगा। इसलिए कहा है -

कर्म में जीव स्वतन्त्र किया फल पाने में बाँध दिया।

जिसने जैसा कर्म कमाया फल उसको वैसाही दिया

जो पेड़ बबूल का बोयेगा तो आम कहाँ से फले देख लो विचार।

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ।

यथाकारी यथाचारी तथा भवति। पुण्यः पुण्येन कर्मणा भवति। पापः पापेन कर्मणा।

आत्मा ही ज्योति है : संसार में अजर और अमर आत्मा ही ज्योति है। यही एकमात्र पथ प्रदर्शक है। मनुष्य के हृदय में ज्योति रूप से विद्यमान आत्मा ही विज्ञानमय है और प्रकाशमय है।

कतम आत्मा, योऽयं विज्ञानमयः ----- हृदि अन्तज्योतिः

ब्रह्म में संसार में ओत प्रोतः गार्गी ने याज्ञवल्क्य से पूछा की यह संसार किसमें ओतप्रोत है। याज्ञवल्क्य ने उत्तर में कहा कि यह संसार ब्रह्म में ओत प्रोत है। उस अक्षर ब्रह्म के प्रशासन में यह सारा संसार काल, द्यावापृथिवी, सूर्य आदि कार्य कर रहे हैं।

अक्षरे गार्गि ! - आकाश ओतश्च प्रोतश्च।

११. ''श्वेताश्वेतर उपनिषद्''

यह महत्त्वपूर्ण उपनिषदों में से एक है । इसकी वर्णनशैली अतिमनोरम हैं। भाषा सरल और सुबोध होने से यह अतिप्रसिद्ध है। इसमें सांख्य, योग और वेदान्त के सिद्धान्तों का प्रतिपादन है। शिव का परम पुरूष के रूप में वर्णन है। गीता पर इसका प्रभाव बहुत है। क्षर, अक्षर प्रधान आदितत्त्व इसी से लिए हैं। इसमें कपिल ऋषि का स्पष्ट उल्लेख है। इसके वर्ण्य विषय संक्षेप में इस प्रकार हैं - ५

अध्याय १ : हंस, त्रैतवाद, माया, क्षर - अक्षर, सत्य और तप से आत्मदर्शन ।

अध्याय २ : योग, योगविधि, ब्रह्मतत्त्व का वर्णन।

अध्याय ३ : रूद्र विश्वरूप, जीव का स्वरूप। ब्रह्म आत्मा का स्वरूप।

अध्याय ४ : एकेश्वरवाद, त्रैतवाद, प्रकृति, माया-मायी, शिव ब्रह्मरूप।

अध्याय ५: क्षर - अक्षर - ऋषि, जीवात्मा का स्वरूप।

अध्याय ६: ब्रह्म के अनेक नाम, हंस, ईश्वर, प्रकृति एवं जीव का नियन्ता, गुरुभक्ति।

''श्वेताश्वेतर उपनिषद् के कुछ विशेष सन्दर्भ''

हंस : ब्रह्म के लिए हंस शब्द का प्रयोग है क्योंकी वह क्षीर-नीर विवेक सम्पन्न है, शुद्ध, पवित्र है और सर्वव्यापी है, सबको जीवन देता है, वह सृष्टि में निर्लेप हंस के तुल्य विचरण करता है । **सर्वजीवे तस्मिन् हंसो भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे ।**

योगसाधना : मन और बुद्धी को एकाग्र करके प्राणायाम करें और मन की चंचलता रोकें। शान्त एकान्त समभूमि पर बैठकर ध्यान करें।

ईश्वर, जीव और प्रकृति का स्वामी : ईश्वर प्रकृति और जीवात्मा का स्वामी है। वही सृष्टि कर्ता, सर्वज्ञ, बन्धन और मोक्ष का कर्ता है।

प्रधानक्षेत्रज्ञ पतिर्गुणेशः संसार-मोक्ष-स्थिति बन्धहेतुः।

ईश्वर की प्रतिमा नहीं है : ईश्वर सर्वव्यापी है। वह ऊपर-नीचे सर्वत्र व्याप्त है। उसका यश महान् है। उसकी कोई प्रतिमा (मूर्ति) नहीं है।

न तस्य प्रतिमा अस्ति, यस्य नाम महद् यशः (४.११) यही आशय यजुर्वेद में भी दृष्टिगोचर होता है।

गुरू भक्ति से आत्माज्ञान : जिसकी देवों और गुरुवों में परमभक्ति है, उसको ही आत्मतत्त्व का बोध होता है।

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथागुरौ ।

''वेदों के उपाङ्गभूत - दर्शनशास्त्रों का परिचय''

जब से मनुष्य ने इस वसुन्धरा पर जन्म लिया है तभी से उसने सोचना आरम्भ किया - **मैं क्या हूँ राह मेरी क्या है? कोऽहं, कुत आगतोऽस्मि, कुत्रगन्तव्यम्, किं मे कर्तव्यमस्ति वसुधातले।**

मैं कौन हूँ। कहाँ से आया हूँ ? मेरे जीवन का ध्येय क्या है? यह संसार क्या है ? इस संसार से मनुष्य का छुटकारा कैसे हो सकता है ? यह सृष्टि कैसे उत्पन्न हुई ? इसका सृजनहार कौन है ? सुख की प्राप्ति कैसे हो सकती है ? परमात्मा की प्राप्ति कैसे हो सकती है ? आत्मा, परमात्मा और प्रकृति का परस्पर क्या सम्बन्ध है ? इस प्रकार के न जाने कितने प्रश्न उसके हृदय में और मस्तिष्क में चक्कर काटते रहे हैं। तत्त्वदर्शियों के मत में मनुष्य को इन विषयों का तत्त्वज्ञान हो सकता है। इसी तत्त्वज्ञान को भारतीय मनीषियों, चिन्तकों और विचारकों ने दर्शन संज्ञा प्रदान की है। तत्त्वज्ञान होने पर कर्म मनुष्य को बन्धन में नही डालते। तत्त्वज्ञान मनुष्य को मानव-जीवन के चरम लक्ष्य = मोक्षतक पहुँचा देता है।

व्युत्पत्ति शास्त्र के अनुसार दर्शन का अर्थ है - "दृश्यतेऽनेन इति दर्शनम्" जिसके द्वारा देखा जाए। क्या देखा जाए? वस्तु का तात्त्विक स्वरूप। इस जगत् का सच्चा स्वरूप क्या है ? यह जड़ है या चेतन ? जीवन को श्रेष्ठ सुन्दर और सुखी बनाने के साधन क्या हैं ? इस प्रकार के प्रश्नों का उत्तर देना दर्शनों का कार्य है।

अर्थशास्त्र के प्रणेता कौटिल्य का कहना है -

प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम्।

आश्रयः सर्वधर्माणां शश्वदन्वीक्षकीमता।।

यह दर्शनविद्या सब विद्याओं का प्रदीप, सब कार्यों का साधनभूत तथा सब धर्मो का सदा अश्रयभूत मानी गई है। पाश्चात्य विचारधारा में दर्शन के लिए फिलॉसॉफी (Philosophy) शब्द का प्रयोग करते हैं। फिलॉसॉफी दो ग्रीक शब्दों के मेल से बना है। फिलॉस + सोफिया। फिलास का अर्थ है प्रेम, अनुराग और सोफिया का अर्थ है विद्या। इस प्रकार शब्द का अर्थ हुआ विद्या का प्रेम = विद्यानुराग। भारतीय दर्शन की खोज का विषय रहा है **आत्मा।**

भारतीय दर्शनों को दो भागों में विभाजित किया गया है आस्तिक और नास्तिक चारवाक, जैन और बौद्ध - ये तीनों नास्तिक दर्शन हैं। न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्वमीमांसा और वेदान्त ये छह आस्तिक दर्शन हैं। प्रस्तुत परिचय में आस्तिक दर्शनों का ही उल्लेख किया जायेगा।

कुछ लोगों का विचार है कि भारतीय दर्शनों में परस्पर विरोध हैं। परन्तु यह विचार ठीक नहीं है। **दार्शनिक शिरोमणि महर्षि दयानन्द सरस्वती इस विषय में लिखते हैं कि:-** जैसे एक विद्या में अनेक विद्या के अवयवों का एक-दूसरे से भिन्न प्रतिपादन होता है, वैसे ही सृष्टि-विद्या के भिन्न-भिन्न छह अवयवों का छह शास्त्रों में प्रतिपादन करने से इनमें कुछ भी विरोध नहीं है। जैसे घडे के बनाने में कर्म, समय, मिट्टी, संयोग, वियोगादि का

पुरुषार्थ, प्रकृति के गुण और कुम्भकार कारण है, वैसे ही सृष्टि का जो कर्म कारण है उसकी व्याख्या मीमांसादर्शन में, समय की व्याख्या वैशेषिक दर्शन में, उपादान कारण की व्याख्या न्यायदर्शन में, पुरूषार्थ की व्याख्या योगदर्शन में, तत्त्वों के अनुक्रम से परिगणन की व्याख्या सांख्यदर्शन में और निमित्त कारण की व्याख्या वेदान्त शास्त्र में है। इसमें कुछ भी विरोध नहीं है। जैसे वैद्यकशास्त्र में निदान, चिकित्सा, औषधदान और पथ्य के प्रकरण भिन्न-भिन्न कथित है परन्तु सबका सिद्धान्त रोग की निवृत्ति है वैसे ही सृष्टि के छह कारण हैं। इनमें से एक एक कारण की व्याख्या एक एक शास्त्रकार ने की है। इसलिए इनमें कुछ भी विरोध नहीं है। (सत्यार्थ प्रकाश तृ. समुल्लास म.द. सरस्वती)

''ईश्वर'' :

वेदान्तदर्शन ब्रह्म के विचार से ओत-प्रोत है। ब्रह्म क्या है ? वेदान्त दर्शन में इसका उत्तर दिया है। **''जन्माद्यस्य यतः''** जो इस संसार की उत्पत्ति, पालन और विनाश करनेवाला है, वही ब्रह्म है।

जीवात्मा :

सभी दर्शनकार जीवात्मा को नित्य, अल्पज्ञ ज्ञानादि गुणों से युक्त एकदेशी तथा कर्मफल भोक्ता मानते हैं। जीव और ब्रह्म एक नहीं हैं। इनका पृथक् प्रतिपादन किया गया है।

आनन्दमयोऽभ्यासात् : ब्रह्म की निरन्तर उपासना से जीवात्मा आनन्दमय हो जाता है। इस सूत्र से ब्रह्म और जीव का भेद स्पष्ट है।

भेदव्यपदेशाच्च : वेद में भी जीवात्मा तथा परमात्मा का भेद बताया गया है।

नात्माश्रुतेर्नित्यत्त्वाच्च ताभ्य : (वे. २.३. १७) : जीवात्मा उत्पन्न नही होता, क्योंकी उसकी जन्ममरण विषयक श्रुति उपलब्ध नहीं होती।

जीव कितने हैं? दर्शनों के अनुसार जीव अनेक हैं।

अंशो नानाव्यपदेशात् (वै.२.३.४३) जीव एकदेशी है क्योंकि वेद में अनेक जीव बतलाये गये हैं।

व्यवस्थातो नाना (वै.३.२.२०)"[४७] व्यवस्था से जीव अनेक हैं। सुखी-दु:खी, जीवित-मृत बद्ध-मुक्त, पापी-पुण्यात्मा, रंक-राजा आदि की व्यवस्था होने से जीव अनेक हैं। यदि जीव एक ही हो तो यह व्यवस्था नहीं हो सकती।

श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वकं इतरेषाम्।

अन्य योगियों को श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञा से उपाय प्रत्यय नामक असम्प्रज्ञात समाधि सिद्ध होती है।

इस सूत्र में महर्षि पतञ्जलि भी जीवों की अनेकता को स्वीकार करते हैं। सभी शास्त्रकार जीवात्मा को कर्ता और भोक्ता मानते हैं।

कर्ता शास्त्रार्थत्त्वात् (वे २.३.३३. पृ.४४६)"[४८] षड्दर्शनम् जीवात्मा कर्ता है, क्योंकि वेदों में जीवात्मा को कर्ता कहा गया है।

शास्त्रफलं प्रयोक्तरि तल्लक्षणात्तस्मात्स्वयं प्रयोगेस्यात् ।

शास्त्रविहित अग्निहोत्रादि का फल कर्ता को मिलता है, अत: उनका अनुष्ठान स्वयं करना चाहिए। इससे यह सिद्ध है कि मीमांसाकार जीव को कर्ता मानते हैं।

कर्तुः फलावगमः। (सां. १.७१, पृ.१०२)"[४९] षड्दर्शनम्

फल की प्राप्ति कर्ता को ही होती है।

भोगापवर्गार्थं दृश्यम्। (यो.२/१८, पृ.१५१)"[५०] षड्दर्शनम्

यह संसार जीवात्माओं के भोग और मोक्ष के लिए है। इन सभी सूत्रों द्वारा जीवात्मा की व्याख्या तथा उसका भोक्ता होना स्पष्ट है।

''प्रकृति'' : जीव और ब्रह्म की भाँति प्रकृति की भी स्वतन्त्र सत्ता है। प्रकृति भी नित्य है। प्रकृति जड है और कार्यजगत् का कारण है। सभी दर्शनों में जीव को भोक्ता परमात्मा को निमित्त कारण और प्रकृति को उपादान कारण माना है।

कुछ उदाहरण : प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्। (वे. १.४.२३,पृ.४३५)[''५१] **षड्दर्शनम्**

प्रकृति जगत् का उपादान कारण है, क्योंकि वेदों में प्रकृतिविषयक प्रतिज्ञा और दृष्टान्त पाये जाते हैं।

साक्षाच्चोभयाम्नानात्। (वे. १.४.२५, पृ.४३५)[''५२] **षड्दर्शनम्**

वेदों में साक्षात् दोनों कारणों का पृथक् पृथक् उल्लेख होने से यह सिद्ध होता है कि जगत् का निमित्त कारण ब्रह्म और उपादान कारण प्रकृति है।

सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः। (सां. १.२६, पृ.१०२)[''५३] **षड्दर्शनम्**

सत्व, रज और तम की साम्यावस्था का नाम प्रकृति है।

सत्कारणवन्नित्यम्। (वै. ४.१.१,ए पृ.६८)[''५४] **षड्दर्शनम्**

जो वस्तु सत्तावाली है, जो किसी दूसरे से उत्पन्न नहीं होता वह पदार्थ नित्य कहलाता है, ऐसी मूल प्रकृति इस जगत् का उपादान कारण है।

''मुक्ति और उसके साधन'' : मुक्ति और उसके साधनों के विषय में सभी दर्शनकारों का एक ही मत है।

तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः। (न्याय. १.१.२२, पृ. २२)[''५५] **षड्दर्शनम्**

जन्म-मरण रूप दुःख से छुटकर परमानन्द की प्राप्ति का नाम मोक्ष है। यहाँ गौतम मुनि ने दुःखों से छुटने को मुक्ति कहा है।

ब्राह्मणे जैमिनिरूपन्यासादिभ्यः (वे. ४.४.५)[''५६]

मुक्त जीव दु:खों से छूटकर ब्रह्मा के आनन्द में रहता है।

इस सूत्र से यह स्पष्ट है कि जीव मुक्ति में ब्रह्मानन्द का आनन्द अनुभव करता

अथ त्रिविधदु:खात्यन्तनिवृतिरत्यन्त पुरूषार्थ : (सां. १.१, पृ.९३)"[५७] षड्दर्शनम्

तीनों प्रकार के अर्थात् (आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक) दु:खों से अत्यन्त छूट जाने को मुक्ति कहते हैं। यहाँ कपिलाचार्य ने भी दु:खो से छूटने को मुक्ति माना हैं।

पुरूषार्थ शून्यानां गुणानां प्रतिप्रसव: कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति (यो. ४.३४, **पृ. १६४)"[५८] षड्दर्शनम्**

जब गुणों के द्वारा जीव को सांसारिक सुख-दु:ख मिलना बन्द हो जाता है तथा जीवात्मा परमात्मा के स्वरूप में स्थिर हो जाता है, उसे मुक्ति कहते हैं। यहाँ पतञ्जलि ने दु:खाभाव और ब्रह्मप्राप्ति को मोक्ष माना है।

तदभावे संयोगाभावोऽप्रादुर्भावश्च मोक्ष:। (वै. ५.२.१८, **पृ ७५.)"[५९] षड्दर्शनम्)**

शरीरधारक कर्म के अभाव होने पर शरीर से आत्मा के संयोग का अभाव और शरीरन्तर का प्रार्दुभाव न होना (जन्म-मरण के चक्र से छूटने का नाम) ही मोक्ष है।

अरण्यगुहापुलिनादिसू योगाभ्यासोपदेश: । (न्या. ४.२.४२ पृ. ४२)"[६०] षड्दर्शनम्)

वन, गुहा, और नदी आदि के तटपर बैठकर मुक्ति के लिए योगाभ्यास करना चाहिए।

सू. तदर्थ यमनियमाभ्यामात्मसंस्कारो योगाच्चाध्यात्मविध्युपायै: । (न्याय ४.२.४६ पृ.४३ षड्दर्शनम्)"[६१]

मोक्ष प्राप्ति के लिए यम-नियम-योग और अध्यात्म शास्त्रोक्त उपायों द्वारा आत्मा का संस्कार करना चाहिए।

सू. ध्यानधारणाभ्यास वैराग्यादिभिस्तन्निरोधः। (सां. ६.२९ पृ. १३९ ष.द.)"[६२]

ध्यान-धारणा-अभ्यास-वैराग्य आदि से उन वासनाओं, चित्त की वृत्तियों का निरोध करना चाहिए।

सू. अभिषेचनोपवास ब्रह्मचर्य गुरूकुल वासप्रस्थ यज्ञदान प्रोक्षणदिङ्नक्षत्रमन्त्रकाल नियमाश्चादृष्टाय। (वै. ६.२.२. पृ.७७ ष.द.)"[६३]

स्नान, उपवास, ब्रह्मचर्य, गुरूकुलवास, वानप्रस्थ, यज्ञ, दान, मन्त्रों का जप आदि धर्ममुक्ति के लिए ही होते है।

सू. शमदमाद्युपेतः स्यात्तथापि तु तद्विधेस्तदङ्गतया तेषामवश्यमनुष्ठेयत्वात्। (वे. ३.४.२७पृ. ४४६ ष.द.)"[६४]

मुमुक्षु को चाहिए की वह शम-दम आदि साधनों से मुक्ति प्राप्त करे क्योंकि वे मुक्ति के अंग हैं, अतः उनका अवश्य अनुष्ठान करना चाहिए।

सू. यमनियमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारणाध्यानसमाधयो अष्टावङ्गानि। (योग. २.२९ पृ. १५२ ष.द.)"[६५]

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि ये आठ योग के अंग हैं। यही मुक्ति के साधन हैं।

"वेद ईश्वरीय ज्ञान है" : सभी दर्शनकार वेदों को इश्वरीय ज्ञान मानते हैं।

सू. शास्त्रयोनित्त्वात्। (वेदान्तदर्शन १.१.५)"[६६]

अनेक विद्याओं से युक्त प्रदीपवत् सब अर्थो का प्रकाश करनेवाले सर्वज्ञ शास्त्र का कारण ब्रह्म है। ऐसे सर्वज्ञ गुणों से युक्त शास्त्र को सर्वज्ञ परमात्मा के अतिरिक्त दुसरा कोई नही बना सकता।

सू. तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम् । (वै. १.१.३ पृ. ५३ ष.द.)"[६७]

ईश्वर का वचन होने से वेदों को प्रमाण माना जाता है।

सू. स एष पूर्वेषामपि गुरूः कालेनान्वच्छेदात्। (यो. १.२६ पृ. १४७ ष.द.)"[६८]

वह परमेश्वर कालद्वारा नष्ट ने होने के कारण पूर्व ऋषि महर्षियों का भी गुरू है।

सू. निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यम्। (सां. ५.५.१)"[६९]

परमात्मा की स्वाभाविक शक्ति से प्रकट होने के कारण वेदों का स्वतः प्रामाण्य है।

''पुनर्जन्म''

मनुष्य के शुभ और अशुभ कर्मो के अनुसार उसका पुनर्जन्म होता है। इस विषय में भी सभी दर्शनकार एकमत हैं।

सु. पुनरूत्पत्तिः प्रेत्यभावः। (न्याय. १.१.१९)"[७०]

मरने के पश्चात् शरीर, इन्द्रिय, मन बुद्धि के साथ जीवात्मा के पुनः सम्बन्ध को पुनर्जन्म कहते हैं।

सू. पूर्वाभ्यास्तस्मृत्यनुबन्धाज्जातस्य हर्षशोक सम्प्रतिपत्तेः (न्या. ३.१.१९)"[७१]

सद्योजात = अभी अभी पैदा हुए बालक को हर्ष, भय, शोक आदि होते हैं। बालक जब नींद में होता है तब विविध प्रकार की भावच्छटा उसके मुखमंडल पर दिखाई देती है वह कभी रोता है तो कभी हँसता है, यह उसका पूर्वजन्म का स्मरण ही होता है। कभी कभी यह याद जागृत अवस्था में भी किसी किसी को चिरकाल तक रहती है।

सू. प्रेत्याहाराभ्यासकृतात् स्तन्याभिलाषात्। (न्या. ३.१.२२)''७२

जन्म होते ही बालक स्तनपान की अभिलाषा करता है। बालक का यह अभ्यास पुनर्जन्म का साधक है।

सू. स्वरसवाही विदुषोऽपि तत्वबन्धोऽभिनिवेशः । (यो. २/९)[''७३]

विवेकशील पुरूष भी मरना नहीं चाहता, मरने से सब डरते हैं। यह अभिनिवेश = मरणभय पुनर्जन्म का साधक है।

सू. सतिमूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः। (यो. २.१३)[''७४]

अविद्यादि क्लेश, संस्कार और वासनाओं के शेष रहने पर उनके फल, जाति, आयु और भोग का चक्र चलता रहता है अर्थात् पुनर्जन्म होता रहता है।

सू. उर्ध्व सत्त्वविशालाः। (सा. ३.४८)[''७५]

सत्त्वप्रधान - सतोगुणी पुरूष उच्च योनियों में जन्म लेते हैं।

सू. तमोविशालाः मूलतः। (सा. ३.४९)[''७६]

तमोगुणी पुरूष तिर्यक् तथा स्थावर आदि नीच योनियों में जन्म लेते हैं।

सू. मध्येरजोविशालाः। (सां. ३.५०)[''७६]

रजोगुणप्रधान जीव मध्य योनियों में जन्म लेते हैं।

सू. कृतप्रयत्नोपेक्षस्तु विहितनिषिद्धवैयर्थ्यादिभ्यः। (वै. २.२.४२)[''७७]

जीव को अपने कर्म के अनुसार ही शुभ-अशुभ फल तथा दुसरा शरीर मिलता है। यदि ऐसा न हो तो विहित तथा प्रतिषिद्ध सब कर्मफल निष्फल हो जाएँ। इस प्रकार सभी दर्शनों में पुनर्जन्म को स्वीकार किया गया है।

क्रमशः ''दर्शनशास्त्रों का परिचय''
''भारतीय आस्तिक दर्शनों की कुछ विशेषताएँ''

भारतीय दर्शनों की सबसे बड़ी विशेषता उनका व्यावहारिक पक्ष है। उनका उद्देश्य है नाना प्रकार के दुःखों से पीड़ित मनुष्यों को राग-द्वेष और अविद्या से छुडाकर मोक्ष की प्राप्ति करा देना। भारतीय दर्शन की दूसरी विशेषता है - आशावाद।

भारतीय दर्शन की तीसरी विशेषता है - नैतिक व्यवस्था में विश्वास। मनुष्य जो कर्म करता है, उनका लोप नही होता अपितु उन कर्मो से एक अपूर्व की सृष्टि होती है। यही अपूर्व फलोत्पत्ति का प्रधान कारण है। न्याय, वैशेषिक में इसी अपूर्व को अदृष्ट की संज्ञा दी गई है।

भारतीय दर्शन की चौथी विशेषता है - कर्मसिद्धान्त। मनुष्य जो भी कर्म करता है, उसका नाश कभी नहीं होता तथा जिस फल को हम भोग रहे हैं, वह पूर्वजन्म में किये हुए कर्म का ही फल है। कर्म-सिद्धान्त को स्वीकार कर मनुष्य जहाँ एक और पाप करने से बच जाता है, वहाँ दुसरी ओर शुभ कर्मो के अनुष्ठान से अपने आगामी जीवन को उच्च दिव्य और महान् बना सकता है।

भारतीय दर्शन की पाँचवी विशेषता है - मोक्षमार्ग का निर्देश। संसार में बन्धन का कारण है अविद्या। अविद्या से बन्धन होता है और ज्ञान से मुक्ति। जीवन यापन के दो मार्ग हैं प्रेय और श्रेय। मनुष्य प्रायः अपापतः रमणीय विषयों की और आकृष्ट होकर संसार में प्रवृत्त होता है। इस प्रवृत्ति का मूल कारण है राग और द्वेष। यह प्रेय मार्ग मनुष्य की अधोगति का कारण है। श्रेय मार्ग मनुष्य के मंगल का मूल है। दर्शनकार इस मंगल-मार्ग पर आरूढ होने लिए यम-नियम आदि अष्टाङ्ग योग का विधान करते हैं। मनुष्य को जैसे भी हो इस संसार के उच्छेद के लिए, त्रिविधतापों से छूटने के लिए ब्रह्म की प्राप्ति के लिए महान् प्रयत्न एवं पुरूषार्थ करना चाहिए।

''दर्शनों का काल''

दर्शनवाङ्मय कब लिखा गया यह बताना कठिन है। दर्शनकारों ने इस विषय में कोई लिखित प्रमाण नहीं छोडा है। परन्तु एक बात सुनिश्चित है कि सभी दर्शन ऋषियों द्वारा प्रणीत हैं और ऋषियोंका युग महाभारत तक अविच्छिन्न रहा है। अतः दर्शन महाभारत

से पूर्व और महाभारत के आस पास लिखे गये हैं। इस प्रकार दर्शनों का समय आज से लगभग पाँच सहस्त्र वर्ष पूर्व है।

१. ''न्यायदर्शन'' के कुछ विशेष सन्दर्भ :

न्यायदर्शन के प्रथम प्रवर्तक महर्षि गौतम है। महर्षि गौतम से पूर्व का कोई ऐसा ग्रन्थ नहीं है जिसमें तर्क, प्रमाण, वाद आदि का नियमबद्ध विवेचन हो। इस ग्रन्थ में पाँच अध्याय हैं प्रत्येक अध्याय में दो दो आह्निक हैं और ५४८ सूत्र हैं।

न्याय शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में होता है परन्तु दर्शनवाङ्मय में न्याय का अर्थ कुछ इस प्रकार से है- **नीयते प्राप्यते विवक्षितार्थ सिद्धिरनेन इति न्यायः** । जिसके द्वारा किसी प्रतिपाद्य विषय की सिद्धि की जा सके, जिसकी सहायता से किसी निश्चित सिद्धान्त पर पहुँचा जा सके, उसी का नाम न्याय है।

न्यायदर्शन के विषयों को चार भागों में विभक्त किया जा सकता हैं -

१. सामान्य ज्ञान की समस्या को हल करना ।

२. जगत् की पहेली का सुलझाना।

३. जीवात्मा तथा मुक्ति।

४. परमात्मा और उसका ज्ञान।

उपर्युक्त समस्याओं के समाधान के लिए न्यायदर्शन ने प्रमाण आदि सोलह पदार्थ माने हैं। न्याय का मुख्य प्रतिपाद्य विषय प्रमाण हैं।

मुक्ति : प्रमाण, प्रमेय आदि सोलह पदार्थो के तत्त्वज्ञान से मुक्ति होती हैं।

सूत्र : दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानामुत्तरोतरापाये तदनन्तरापायादपवर्ग :।

दुःख, जन्म, प्रवृत्ति = पाप-पुण्य, दोष = रागद्वेष मोह और मिथ्याज्ञान इनमें से उत्तर-उत्तर के नाश से उससे अनन्तर (पूर्व) का नाश होने से मोक्ष होता है।

शरीर को आत्मा समझना इत्यादि जो मिथ्याज्ञान है, उससे राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं, राग-द्वेष से पुण-पाप पुण्य-पाप से जन्म और जन्म से दु:ख होता है। यह संसार चक्र है। जब तत्त्वज्ञान हो जाता है तब उससें मिथ्या ज्ञान का नाश होता है। मिथ्याज्ञान के नाश से राग-द्वेष आदि का नाश होकर दु:ख का नाश होता है। दु:ख का अत्यन्त नाश ही मोक्ष है।

न्याय आस्तिक दर्शन है। नैयायिक ईश्वर को जगन्नियन्ता और कर्मफल प्रदाता मानते हैं। ईश्वर की सिद्धि में न्यायदर्शन में निम्न युक्तियाँ है -

१. जितने पदार्थ हैं, वें सब सावयव हैं, अत: उनका कोई चेतन कर्ता होना चाहिए।

२. मनुष्यों को उनके कर्मो की फलप्रदाता कोई चेतन सत्ता होनी चाहिए।

३. वेद ज्ञान के भण्डार हैं और अपौरूषेय हैं। ईश्वर ही उनका कर्ता है।

४. ईश्वर का साक्षात्कार बाह्य साधन से न होकर शुद्ध अन्त:करण से होता है।

२) ''वैशेषिक दर्शन के कुछ विशेष सन्दर्भ''

वैशेषिक दर्शन के प्रणेता महर्षि कणाद हैं। खेतों से अन्न के कण बीनकर अपने उदर की पूर्ति करने के कारण इनका नाम कणाद पडा था। इनके रचे हुए दर्शन में दस अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में दो दो आह्निक हैं। और सूत्रों की संख्या ३७० हैं। महर्षि कणाद ने भी प्रथम अध्याय में ही अपने दर्शन का उद्देश्य बतला दिया है। वह उद्देश्य है नि:श्रेयस् अथवा मोक्ष की प्राप्ति।

वैशेषिक शब्द की व्याख्या इस प्रकार से की है -

विशेषं पदार्थमधिकृत्य कृतं शास्त्रं वैशेषिकम्।

विशेष (पृथिव्यादि भूततत्त्वों का नाम विशेष है) नामक पदार्थ को मूल मानकर प्रवृत्त होने के कारण इस शास्त्र का नाम वैशेषिक है।

वैशेषिक का सार :

पदार्थ छह हैं : धर्मविशेषप्रसूताद्द्रव्यगुणकर्मसामान्य विशेष समवायानां पदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानान्निः श्रेयसम्। (वै. १.१.४)[७९]

१. द्रव्य, २. गुण, ३. कर्म, ४. सामान्य, ५. विशेष और, ६. समवाय। द्रव्य नौं हैं।

द्रव्य नौ हैं :

सू. पृथ्विरापस्तेजो वायुराकाशं कालादिगात्मा मन इति द्रव्याणि। (वै.९.१.५)[८०]

पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल = समय, दिशा, आत्मा और मन ये नौ द्रव्य हैं।

गुण चौबीस है :

सू. रूपरसगन्धस्पर्शाः संख्याः परिमाणानि पृथकत्त्वं संयोगविभागौ परत्त्वापरत्त्वे बुद्धिः सुखदुःखे इच्छाद्वैषौ प्रयत्नाश्च गुणाः। (१.१.६)

रूप, रस, गन्ध स्पर्श, संख्या, परिणाम, पृथकत्त्व = अलग होना, सयोग, विभाग, परत्त्व = दूर होना, अपरत्व = समीप होना, बुद्धि, सुख, दुख इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म = पुण्यकर्म, अधर्म = पापकर्म, संस्कार, स्नेह = बिखरे पदार्थ को पिण्ड बना देने की क्षमता, गुरूत्व = भारीपन और द्रवत्त्व - तरलता = पिघलापन शब्द

शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध, संख्या, विभाग, संयोग परिणाम, पार्थक्य, परत्त्व, अपरत्त्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, धर्म, अधर्म, प्रयत्न, संस्कार, स्नेह, गुरूत्त्व और द्रवत्त्व चोबीस गुण हैं।

पाँच प्रकार के कर्म :

उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुञ्चनं प्रसारणं गमनमिति कर्माणि । (१.१.७)

१. उत्क्षेपण = ऊपर की और फेंकना, २) अवक्षेपण = नीचे की और गिराना, ३) आकुञ्चन = सिकुडना या सिकोड़ना, ४) प्रसारण = फैलना या फैलाना, ५) गमन शेष सब प्रकार की सामान्य क्रिया ये कर्म है। सामान्य दो प्रकार का होता है - सत्तासामान्य ओर द्रव्यत्त्वादि (विशिष्ट) सामान्य।

विशेष : विशेष किसी पदार्थ की उस सत्ता का नाम है, जो उसे अन्य पदार्थो से भिन्न दिखलाता है।

समवाय : दो वस्तुओं के नित्य सम्बन्ध को समवाय कहते हैं, जैसे गुलाब पुष्प में सुरभि, मानव में मानवता।

वैशेषिक दर्शन के मूल सिद्धान्त ये है :

परमाणुवाद : आत्माएँ अनेक है और कर्मफल भोग के लिए भिन्न भिन्न शरीर धारण करती हैं।

असत्कार्यवाद : कारण से कार्य उत्पन्न होता है और अनित्य है।

धर्मपरिभाषा : यतोऽभ्युदयनिः श्रेयस् सिद्धिः स धर्म :।

जिससे अभ्युदय = इहलौकिक और निःश्रेयस = पारलौकिक सुख की सिद्धि होती है, वह धर्म है।

सृष्टिवाद : बिना कारण के कार्य नहीं होता। जगत् कार्य है और उसका कर्ता ईश्वर है।

मोक्षवाद : आवागमन के चक्र से छूटकर मोक्ष प्राप्त करना जीव का चरम लक्ष्य है।

३. ''सांख्य दर्शन के कुछ विशेष सन्दर्भ''

सांख्यदर्शन के रचयिता महर्षि कपिल हैं। इस ग्रन्थ में छह अध्याय हैं। सूत्रों की संख्या ४५२ हैं। इस दर्शन का उद्देश प्रकृति और पुरूष की विवेचना करके उनके अलग - अलग स्वरूप को दिखलाना है।

प्राय: गणनार्थक संख्या शब्द से सांख्य की व्युत्पत्ती मानी जाती हैं परंतु इसका सुन्दरतम् और वास्तविक अर्थ है विवेकज्ञान। संख्याशब्द सम्पूर्वक चक्षिङ = ख्याञ् धातु से स्त्रिलिंग में टाप् प्रत्यय लगाने से बनता है, जिसका अर्थ है सम्यक ख्यानम् सम्यक् विचार। इसी को विवेकबुद्धी कहते हैं। जब मनुष्य विवेकद्वारा यह जान लेता है कि पुरूष (आत्मा और परमात्मा) प्रकृति से भिन्न है, तब उसे मोक्ष प्राप्ति होती है।

सांख्य के अनुसार तत्त्व पच्चीस हैं - प्रकृति, महत्तम, अहंकार, पञ्च तन्मात्राएँ, एकादश इन्द्रियाँ पञ्च महाभूत और पुरूष।

सांख्य का एक प्रमुख सिद्धान्त है - 'सत्कार्यवाद' अर्थात् जो कुछ इस जगत् में है वह सदा से है, और जो नही है वह कभी नहीं होता **नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः**

श्रीमद्भगवद् गीता का यह श्लोक इसी दार्शनिक भाव को प्रगट करता है।

- सत्त्व, रज और तम - इन तीन गुणों की साम्यावस्था का नाम प्रकृति है। प्रकृति और पुरूष के संयोग से सृष्टि का निर्माण होता है।
- प्रकृति और पुरूष का संयोग अन्धे और लंगडे का संयोग है। दोनों मिलकर गमनीय मार्ग तय करते हैं। प्रकृति भोग्या है और पुरुष भोक्ता है। परस्परापेक्षा रखनेवाले इस प्रकृति और पुरूष के द्वारा सृष्टि का क्रम चलता है।

- सांख्यशास्त्र के मतानुसार आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक तीन प्रकार के दु:खों से सर्वथा निवृत्त हो जाना ही मुक्ति के लिए निम्न साधन हैं। १. प्रकृति का यथार्थ बोध, २. ध्यान - ध्यान तभी सम्भव है, जब मनुष्य रागरहित हो जाए, ३. निष्काम भाव से अपने आश्रमविहित (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास आदि) धर्मों का पालन करना ४. अभ्यास तथा वैराग्य।

४. "योग्य दर्शन के कुछ विशेष सन्दर्भ" :

योगदर्शन महर्षि पतञ्जलि की रचना है। इस ग्रन्थ में चार पाद हैं। सूत्रों की संख्या १३४ है। आकार की दृष्टि से यह ग्रन्थ सभी दर्शनों में छोटा है परन्तु महत्त्व की दृष्टि से सबसे महान् है।

योग शब्द के अनेक अर्थ हैं। योग शब्द का अर्थ जोड़, मिलाना भी होता **युजिर - योगे योग शब्द युज समाधौ** से भी सिद्ध होता है। योगदर्शन में यह शब्द दोनों ही अर्थो में प्रयुक्त होता है।

योगशास्त्र के चार व्यूह :

जिस प्रकार चिकित्साशास्त्र में रोग रोगहेतु, आरोग्य और औषध ये चार व्यूह हैं, इसी प्रकार योगशास्त्र में संसार, संसारहेतु, मोक्ष और मोक्षोपाय ये चार व्यूह माने जाते हैं। दु:खमय संसार हेय है। प्रकृति का संयोग दु:खमय संसार का हेतु है। प्रकृति के संयोग की आत्यन्तिक निवृत्तिही मोक्ष है और उसका उपाय सम्यक् दर्शन है।

योग के साधन :

क्लेशों से मुक्ति पाने और चित्त को समाहित करने के लिए योग के आठ अंगो का अभ्यास करना आवश्यक है।

वे आठ अंग ये है - यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान समाधि।।

यम -

यम का अर्थ है संयम। यम पाँच है : अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह।

इनके पालन से होने वाले लाभ

१. अहिंसा : अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्संनिधौ वैरत्याग।

अहिंसाव्रत का पालन करने से वैर का त्याग हो जाताहै। अहिंसासिद्ध व्यक्ति किसी भी प्राणी के प्रति वैर की भावना नहीं रखता, औार स्वाभाविक विरोधी हिंसक प्राणी भी योगी के सान्निध्य में अपना वैरभाव छोड़ देते हैं।

२. सत्य : सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्।

जब योगी सत्य में प्रतिष्ठित हो जाता है, तब उसकी वाणी अमोघ हो जाती है। वह जो कहता है, वह सत्य हो जाता है।

३. अस्तेय : अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्।

मनसा, वाचा, कर्मणा चोरी त्याग से उस योगी के समक्ष सब प्रकार के रत्न उपस्थित हो जाते हैं। उसे किसी वस्तु का अभाव नहीं रहता।

४. ब्रह्मचर्य : ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभ :

ब्रह्मचर्य में दृढता होने पर वीर्य बल, शक्ति, पराक्रम की प्राप्ति होती है।

५. अपरिग्रह : अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्ता सम्बोध :

अपरिग्रह के सिद्ध होने पर पूर्वजन्म कैसे हुए थे, इस बात का यथार्थ ज्ञान हो जाता है।

नियम :

नियम भी पाँच है - १. शौच - आन्तरिक और बाह्यशुद्धि, २. सन्तोष, ३. तप, ४. स्वाध्याय, ५. ईश्वर प्राणिधान।।

नियमों के लाभ

१. शौच : शौचत्स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्ग :

अन्तर्बाह्य शौच की सिद्धि होने पर अन्त:करण की निर्मलता, मन की एकाग्रता प्रसन्नता, इन्द्रियों की वश्यता (इन्द्रियों पर विजय) और आत्मसाक्षात्कार की योग्यता प्राप्त होती है।

२. सन्तोष :

सू. सन्तोषादनुत्तमः सुखलाभ :

सन्तोष में स्थिर होने पर अनुत्तम सर्वश्रेष्ठ सुख का लाभ होता है।

३) तपः

सू. कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात् तपसः । (२.४३)

तप के प्रभाव से जब अशुद्धि का नाश हो जाता है तब शरीर और इन्द्रियों पर संयम हो जाता है ।

४) स्वाध्याय :

सू. स्वाध्यायादिष्ट देवता सम्प्रयोग : (२.४४)

स्वाध्याय से इच्छित ध्येय (भाषा, ज्ञान, आत्मा, परमात्मा) की प्राप्ति होती हैं,

अथवा स्वाध्याय से इष्ट देव परमात्मा की प्राप्ति होती है।

५) ईश्वरप्रणिधान :

सू. समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् । (योग. २.४५)"[८१]

ईश्वर प्रणिधान - आत्मसमर्पण की साधना से समाधि की सिद्धि होती है।

३) आसन :

सू. स्थिरसुखमासनम्।

निश्चल सुखपूर्व बैठने का नाम आसन है ।

सू. प्रयत्न शैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम्। (योगदर्शन २.४७)"[८२]

सब प्रकार की चेष्टाओं का त्याग और अनन्त परमेश्वर में ध्यान लगाने से आसन की सिद्धि होती है।

सू. ततो द्वन्दानभिघातः। (योगदर्शन २.४८) "[८३]

आसन के सिद्ध होने पर भूख, प्यास, गर्मी-सर्दी आदि द्वन्दों की बाधा नहीं होती।

४) प्राणायाम :

सू. तस्मिन्सति श्वास प्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः। (योगदर्शन २.४९)"[८४]

आसन के सिद्ध होनेपर श्वास - प्रश्वास की गति को रोकने का नाम प्राणायाम हैं।

सू. ततःक्षीयतेप्रकाशावरणम्। (योगदर्शन २.५२)"[८५]

प्राणायाम के अभ्यास से विवेकज्ञान पर पड़ा हुआ परदा क्षीण हो जाता है हट जाता है।

सू. धारणासु च योग्यता मनसः । (योगदर्शन २.५३)"[८६]

और धारणा में मन की योग्यता - स्थिरता हो जाती है।

५) प्रत्याहार :

सू. स्वविषयासम्प्रयोगे चित्त स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहार। (योगदर्शन २.५४)"[८७]

प्राणायाम का अनुष्ठान करते करते इन्द्रियों के अपने विषय से रहित हो जाने पर चित्त के स्वरूप में तदाकार हो जाने का नाम 'प्रत्याहार ' है।

सू. ततः परमावश्यतेन्द्रियाणाम् । (योगदर्शन २.५५)"[८८]

प्रत्याहार की सिद्धि हो जानेपर इन्द्रियों की परमवश्यता प्राप्त होती है।

६) धारणा :

सूत्र देशबन्धश्चित्त धारणा। (योगदर्शन ३.१)"[८९]

चित्त का किसी एक देश (शरीर में आज्ञाचक्र आदि, सूर्य, चन्द्र आदि बाह्य देश अथवा आत्मा परमात्मा के विषय) में बाँधना ठहराना "धारणा " है ।

७) ध्यान :

सूत्र तत्र प्रत्ययैकतानताध्यानम् । (योगदर्शन ३.३)"[९०]

जब ध्यान में केवल ध्येय का ही आभास प्रतीत होता है और साधक के अपने स्वरूप का अभाव सा हो जाता है, तब वही ध्यान समाधि कहलाता है। समाधि में ध्यान और ध्याता का भान नहीं होता, केवल ध्येय रहता है।

योगदर्शन में ईश्वर :

सू. क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरूष विशेषः ईश्वर । (योगदर्शन १.२४)"[९१]

अविद्यादि पञ्चक्लेश, शुभाशुभकर्म, शुभाशुभरूपकर्मजन्य सुख दुःख रूप फल और वासनाओं के संसर्ग से रहित पुरूष विशेष ईश्वर है।

सू. तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्। (योगदर्शन १.२५)"[९२]

उस ईश्वर में ज्ञान आदि गुणों की पराकाष्ठा है, उसके सामर्थ्य की सीमा नहीं है।

सू. तस्य वाचक : प्रणव :। (योगदर्शन १.२७)"[९३]

उस ईश्वर का यथार्थरूपबतलानेवाला नाम प्रणव - ओम् है । ओम् के अर्थसहित जप से अपने स्वरूप का साक्षात्कार और योग के विघ्नों का नाश होता है।

५) "मिमांसा दर्शन के कुछ विशेष सन्दर्भ "

मीमांसादर्शन के मुख्य तीन भाग :

१) ज्ञानोपलब्धि के मुख्य साधनों पर विचार ।

२) अध्यात्मविवेचन ।

३) कर्तव्याकर्तव्य की समीक्षा।

ज्ञानोपलब्धि के साधन : मीमांसा के अनुसार ज्ञानोपलब्धि के साधन इस प्रकार हैं : १) प्रत्यक्ष , २) अनुमान , ३) उपमान, ४) शब्द, ५) अर्थापत्ति, ६)अनुपलब्धि।

अध्यात्मवाद : मीमांसादर्शन इस जगत् को न तो नवीन वेदान्तियों की भाँति मिथ्या मानता हैं और न ही बौद्धों की भाँति क्षणिक । वह इस जगत् और इसकी वस्तुओं की सत्ता का यथार्थ रूप मानता है। इस जगत् के अतिरिक्त वह आत्मा की सत्ता को भी स्थिर और नित्य मानता है। शरीर के नष्ट होने पर भी आत्मा नष्ट नहीं होता अपितु अपने कर्मो के नुसार शरीर धारण करता रहता है। जितने व्यक्ति हैं उतनी ही आत्माएँ हैं। आत्माएँ ही बन्धन में आती हैं उन्हीं का मोक्ष होता है।

कर्तव्याकर्तव्य निर्णय :

वेद में किसी प्रकार की अपूर्णता नहीं है, अतः हमारा कर्तव्य वही है, जिसका प्रतिपादन वेद ने किया है। हमें कर्तव्य को कर्तव्य की दृष्टि से करना है, क्योंकि वेद ने उसकी आज्ञा दी है। हमें फलप्राप्त हो या न हो (वेद प्रतिपादित कर्म से चाहें हमें कष्ट भले ही मिले, परन्तु हम उसे छोड़ नहीं सकते) हमारा कार्य वेदाज्ञा का पालन करना है। यह है मीमांसा का कर्तव्यविषयक निर्णय।

मीमांसा का अन्तिम ध्येय स्वर्ग है। स्वर्गप्राप्ति के दो साधन हैं १) **निष्काम कर्म और २) आत्मिक ज्ञान।** इन दोनों साधनों के पूर्ण हो जाने पर सब पूर्वकर्म क्षीण हो जाते हैं

और मनुष्य मुक्त हो जाता है। मुक्ति दु:खों के अत्यन्त अभाव का नाम है, किसी सत्तात्मक अवस्था का नाम नहीं। कुछ लोगों का विचार है कि मीमांसा में यज्ञ में पशु हिंसा का उल्लेख है, परन्तु यह धारणा सर्वथा भ्रान्त है। मीमांसा वेद को सर्वोपरि मानता है। जब वेद में माँस भक्षण और पशु हिंसा का निषेध है, तब महर्षि जैमिनि उसका समर्थन कैसे कर सकते थे।

६) " वेदान्त दर्शन के कुछ विशेष सन्दर्भ "

इस दर्शन के प्रवर्तक महर्षि व्यास हैं। इस दर्शन में चार अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में चार - चार पाद हैं। सूत्र ५५५ हैं। इस दर्शन का उद्देश वेद के परम तात्पर्य परमात्मा को बतलाना है। ब्रह्म के साक्षात्कार से ही स्थिर-शान्ति और परम-आनन्द- मोक्ष प्राप्ति होती है।

वेदान्त शब्द का अर्थ: **वेदस्य अन्तः अन्तिमो भाग इति वेदान्त :।**

वेद के अन्तिम भाग उपनिषदों का नाम वेदान्त है। उपनिषदें ही वेद के अन्तिम सिद्धान्त को खोलती हैं। इसलिए वेदान्तदर्शन भारतीय अध्यात्मशास्त्र का मुकुटमणि माना जाता है। उपनिषदों के ज्ञान को व्यवस्था में लाने के लिए ही इस दर्शन का निर्माण हुआ है। वेदान्त दर्शन में मुख्यतया तीन विषयों का वर्णन है।

१) ब्रह्म, २) जीव और ३) प्रकृति। इन तीनों का स्वरूप क्या है, इनका परस्पर सम्बन्ध क्या है, इन्हीं विषयों का वर्णन विवेचन इस ग्रन्थ में है।

१) ब्रह्म का स्वरूप : ब्रह्म का आभास हमें तीन प्रकार से होता है। १) ब्रह्म का शुद्ध स्वरूप नेति नेति शब्दों से व्यक्त किया जाता हैं अर्थात् वह मोटा है, न पतला है, न छोटा है, न लम्बा है, बिना स्नेह के है इत्यादि। २) ब्रह्म का स्वरूप वह है जो तत्त्वों के साथ मिलकर भासता है- जैसे अग्नि का शुद्ध स्वरूप अङ्गारे में है। ३) ब्रह्म का उपलक्षण स्वरूप उसे कहते हैं, जहाँ बाह्य पदार्थ के द्वारा उसके अनात्म पर दृष्टि ले जाना,अभिप्रेत होता है- जैसे

जो पृथिवी में रहकर उससे अलग है, पृथिवी जिसको नहीं जानती, पृथिवी जिसका शरीर है वह तेरा आत्मा अन्तर्यामी है।

२) जीव का स्वरूप : वेदान्त में जीव और प्रकृति ये दोनों ब्रह्म के अधीन हैं। जीव नित्य है, न जन्मता है न मरता है। जीवात्मा अणु है, क्योंकि शरीर से निकलना, परलोक में जाना और इस लोक में आना अणु में सम्भव है, विभु में नहीं । जीवात्मा कर्ता है। जीवन निष्क्रिय नहीं अपितु क्रियाशील है।

३)प्रकृति : इसे माया भी कहते हैं। यह प्रकृति जगत् का उपादान कारण है। प्रकृति मिथ्या नहीं है अपितु अपनी वास्तविक सत्ता रखती है।

वेदान्त पर भाष्य करते हुए भिन्न भिन्न आचार्यों ने खेंचातानी करके अपने अभिप्राय को सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। शंकराचार्यने जगत् को मिथ्या और जीव ब्रह्म को एक माना है। परन्तु यह कल्पना निराधार है।

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने ठीक ही कहा है- The world is not an illusion or a dream like structure but a real positive something.

यह जगत् मिथ्या नहीं है, ना ही इसका ढाँचा स्वप्नवत् है, यह अपनी विशेष सत्ता रखता है ।

संदर्भ सूची :

१. शतपथ ब्राह्मण -६-१-५

२. अथर्ववेद -११-४-६, क्षेमकरणदास त्रिवेदी, अथर्ववेद- हिन्दी भाष्य

३. मैत्रयणी आरण्यक -६-९

४. तैत्तिरीय आरण्यक - २-१-९

५. तैत्तिरीय आरण्यक -२-७-१

६. तैत्तिरीय आरण्यक -२-७-१

७. यजुर्वेद -५०-, महर्षि दयानन्द सरस्वती, यजुर्वेद हिन्दी भाष्य, पृ.९९

८. अथर्ववेद-३-१९-४, क्षेमकरणदास त्रिवेदी, अथर्ववेद हिन्दी भाष्य

९. यजुर्वेद-९-२३,म.द.सरस्वती, यजु: हिन्दी भाष्य, पृ.२९३

१०. यजुर्वेद-९-४०,म.द.स. यजु: हिन्दी भाष्य,

११. अथर्व-६-२६-१

१२. अथर्व ६-११०-१ क्षेमकरणदास त्रिवेदी, अथर्ववेद-हिन्दी भाष्य

१३. अथर्व-२०-११०-२, क्षेमकरणदास त्रिवेदी, अथर्ववेद-हिन्दी भाष्य

१४. ऐतरेय आ. २-३-२

१५. ऐतरेय आ. २-३-२

१६. ऐतरेय आ. -१-३-५

१७. केनोप.२.५, पृ.३०

१८. बृहदारण्यक उप-४-५-६

१९. बृहदारण्यक उप-४-५-३

२०. माण्डूक्य-७

२१. ऋग्वेद-२-१६५-२० महर्षि दयनन्द सरस्वती. ऋग्वेद हिन्दी भाष्य

२२. श्वेता.४-१०

२३. छान्दोग्य -६-६-८-७

२४. बृहदारण्यक ३५-३२-१३

२५. कठोप-१-२-१

२६. ईशोप.मं. १७

२७. ईशोप मं२

२८. ईशोपनिषद् मं.६

२९. ईशोपनिषद् मं.६, पृ. २२

३०. केनोपनिषद् -२-३- सिद्धरामेश्वर शास्त्री, म.भा, पृ.३०

३१. कठोप-१-१-२७, सिद्धरामेश्वर शास्त्री, म.भा, पृ.०६

३२. कठोप-१-२-२, सिद्धरामेश्वर शास्त्री, म.भा, पृ.७१

३३. कठोप-१-२-१५, सिद्धरामेश्वर शास्त्री, म.भा, पृ.७७

३४. कठोप-१-२-२७, सिद्धरामेश्वर शास्त्री, म.भा,

३५. कठोप-१-२-२२, सिद्धरामेश्वर शास्त्री, म.भा, पृ.७९

३६. कठोप-१-२-१४, सिद्धरामेश्वर शास्त्री, म.भा, पृ.८५

३७. प्र.१-८, सिद्धरामेश्वर शास्त्री, म.भा, पृ.१२९

३८. प्र.२-६, सिद्धरामेश्वर शास्त्री, म.भा, पृ.१३४

३९. प्र.१-४, सिद्धरामेश्वर शास्त्री, म.भा, पृ.१२८

४०. प्र.१-१०, सिद्धरामेश्वर शास्त्री, म.भा, पृ.१३०

४१. मु.१-१-७, सिद्धरामेश्वर शास्त्री, म.भा, पृ.१८६

४२. २-१-२ मु., सिद्धरामेश्वर शास्त्री, म.भा,

४३. मु-२-२-४, सिद्धरामेश्वर शास्त्री, म.भा, पृ.१९७

४४. मु.३-१-५,

४५. तै.उप-२-८-८-१ सिद्धरामेश्वर शास्त्री, म.भा, पृ.३९१

४६. तै.३-६ से १०, सिद्धरामेश्वर शास्त्री, म.भा,

४७. वै.द.३-२-२०, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्

४८. वेदान्त द. २-३-३३, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्

४९. सांख्यदर्शन १-७१, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्, पृ.४४६

५०. योगदर्शन - २-१८, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्, पृ.१५१

५१. वेदान्त-१-४-२३ जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्, पृ.४३५

५२. वे. १-४-२५, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्, पृ.४३५

५३. सां.१-२६, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्, पृ.२०२

५४. वै.द. ४-१-१, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्, पृ.६८

५५. न्याय. १-१-२२, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्, पृ.२२

५६. वे. ४-४-५, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्,

५७. सां.१-१, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्, पृ.९३

५८. यो.द. ४-३४, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्, पृ.१६४

५९. वै.द. ५-२-१८, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्, पृ.७५

६०. न्याय.४-२-४२, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्, पृ.४२

६१. न्याय ४-२-४६, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्, पृ.४३

६२. सां.६-२९ जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्, पृ.१३९

६३. वै.६-२-२, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्, पृ.७७

६४. वेदा.३-४-२६, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्, पृ.४४६

६५. योग.२-२९, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्, पृ.१५२

६६. वेदा. १-१, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्,

६७. वै.१-१-३, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्, पृ.५३

६८. यो. १-२६, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्, पृ.१४७

६९. सां. ५-१-१, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्

७०. न्याय.१-१-१९, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्

७१. न्याय.३-१-१९, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्

७२. न्याय.३-१-२२, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्

७३. योग.२-९ जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्

७४. योग.२-१३ जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्

७५. सां.३-४८, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्

७६. सां.३-५०, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्

७७. वै.२-२-४२, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्

७८. वै.२-२-४२, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्

७९. वै.द.१-१-४, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्

८०. वै.९-१-५, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्

८१. योग-२-४५, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्

८२. योग-२-४७, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्

८३. योग-२-४८, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्

८४. योग-२-४९, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्

८५. योग-२-४२, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्

८६. योग-२-५३, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्

८७. योग-२-५४, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्

८८. योग-२-५५, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्

८९. योग-३-१, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्

९०. योग-३-३, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्

९१. योग-१-२४, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्

९२. योग-१-२५, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्

९३. योग-१-२६, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्

*****

तृतीय अध्याय
वैदिक वाङ्मय में समाजव्यवस्था स्वरूप एवं विशेषताएँ

यज्ञ संस्कृति वेदों का प्राण है इसीलिए यज्ञ करना मानवमात्र का धर्म है। वेदोऽखिलो धर्ममूलम मनु के अनुसार वेद सभी सत्कर्मो के मूल होने के कारण केवल भारतीयों के लिए ही नहीं अपितु समस्त विश्व के जीवन सर्वस्व हैं। **यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।**

वेदों में यज्ञों को प्रथम स्थान देकर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा अपरिहार्य कर्म कहा गया है। यज्ञ धर्म के बिना वेद निष्प्राण तनुतुल्य हैं। वेद पुरूष के प्राणों की रक्षा हमें अपने प्राणों से भी अधिक करनी चाहिए क्योंकि यज्ञ की रक्षा से ही हमारी रक्षा सम्भव है।

श्रीमद् भगवद् गीता में योगेश्वर श्रीकृष्ण ने कहा है।

यज्ञ का महत्त्व

(श्रीमद्भगवद्गीता)

अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः ।

यज्ञाद् भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ।।**(भगवद्गीता तृ.आ. श्लो:१४)**"[१]

अग्नौ प्रास्ताहुतिःसम्यगादित्यमुपतिष्ठति।

आदित्याज्जायते वृष्टिः वृष्टेरन्नं ततः प्रजा ।।

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः**(भगवद्गीता तृअ.श्लो ९)**"[२]

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।

अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्।।**(भगवद्गीता तृ.अ.श्लो.१०)**"[३]

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः ।

परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ।। **(भगवद्गीता तृ.अ.श्लो.११)**"[४]

इष्टान्भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञ भाविताः

तदेत्तानप्रदायेभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः**(भगवद्गीता तृ.अ.श्लो.१२)**"[५]

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः

भुज्यन्ते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात **(भगवद्गीता तृ.अ.श्लो.१३)**"[६]

कर्मब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।।

तस्मात् सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्।।**(भगवद्गीता तृ.अ.श्लो.१५)**

प्राचीनकाल में ऋषि मुनियों से लेकर सामान्य

गृहस्थी लोग भी दैनिक यज्ञ किया करते थे।

शतपथब्राम्ह्ण में यज्ञ को सर्व श्रेष्ठ कर्म कहा है **"यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म" (शतपथ ब्राह्मण) १-७-३-५.**"[७]

सम्प्रति उस पावन कर्म के अभाव में चारों ओर जलवायु प्रदूषित होकर विविध व्याधियों को निमन्त्रण दे रहा है। इस सर्वश्रेष्ठ पावन कर्म को जो पर्यावरण शुद्धि के लिए अत्यावश्यक है कतिपय तथा कथित स्वार्थी लोगों ने 'अध्वर' अर्थात् सर्वथा हिंसा रहित अहिंसात्मक कर्म को पशुबलि के माध्यम से हिंसात्मक बनाकर कलंकित कर दिया जिससे सामान्य जनसमूह की श्रद्धा यज्ञ से उठ गई। जिन अज्ञानी लोगों को यज्ञ शब्द का तथा विविध यज्ञों के मन्त्रों का अर्थ समझ में नहीं आया उन्होंने यज्ञ को अपनी स्वार्थसिद्धि और उदर पूर्ति के लिए विपरीत तथा विकृत रूप में समाज के सामने प्रस्तुत किया। इस शोध प्रबन्ध के माध्यम से यज्ञ का वास्तविक स्वरूप क्या है? वैश्विक जनों के लिए यज्ञधर्म आवश्यक क्यों हैं यज्ञ का महत्त्व क्या है? यह विश्व के सामने लाने का स्वल्प प्रयास कर

रही हूँ। जिन वेदो में पशुपालन तथा पुशरक्षण का विधान पग पगपर दृग्गोचर होता है, उन्हीं वेदों में उन्हें काटकर आहुति देने का विधान कदापि सम्भव नहीं है।

''विविध यज्ञों की व्याख्या''

वैदिकवाङ्मय में गोमेध, अश्वमेध, नरमेध, गृहमेध,

पितृमेधादि विविधयज्ञों का उल्लेख है।

मेधशब्द का विस्तृत अर्थ द्वितीय अध्याय में दिया गया है।

गोमेधयज्ञ : गोसेवा, गोपालन, गोदान, गोरक्षण इन्द्रियदमन अर्थात् संयमी जीवन आदि अतिपावन अर्थ हैं। वेदों में गाय को माता कहा गया है

''गावो विश्वस्यमातरः''

ऋग्वेद में घर की गाय की गौरव गरिमा अतीवसुन्दर

शब्दों में गाई गई है:

ओं स्व आदमे सुदुघा यस्य धेनुः स्वधां पीपाय सुभ्वन्नमत्ति।

सो अपां नपादूर्जयन्नप्स्वन्तर्वसुदेवाय विधते विभाति।२

(ऋग्वेद २-३५-७)"[८]

जिस घर में सहजता से दूध देनेवाली गायें हैं वह सात्त्विकान्न भोजी है। वह अपनीशक्ति को बढाता हुआ विद्युत की भाँति चमकता है। अथर्ववेद में भी पशुपालन की महत्ता को दर्शाया है।

भूमा पशूनां त इह श्रयन्ताम् (अथर्ववेद ५-२८-३)"[९]

पशुपालक का घर दूध घी से भरा रहता है। जिससे घर में शान्ति बनी रहती है। वेदों में पशुपालन का आदेश है न कि उन्हें मारने का। अतः गो आदि पशुओं का पालन पोषण तथा रक्षण मानवमात्र का धर्म है। वेदों में गो की महिमा अनेक मन्त्रों में दृग्गोचर होती है।

ओं यूयं गावो मोदयथाकृशं चिदश्रीरं चित्कृणुथा सुप्रतीकम्।

भद्रं गृहं कृणुथ भद्रं वाचो बृहद् वो वय सभासु।।(अथर्ववेद ४-२१-६)"[१०]

गोमातायें दुर्बल को बलवान् तथा कुरूप को सुरूप बनाती हैं। गाय की मधुर बोली घर को कल्याणमय बना देती है। गाएँ मधुर दुग्ध, दधि घृत तक्र के द्वारा स्मरण शक्ति स्वास्थ्य सौन्दर्य एवं सुखसमृद्धि के साथ शान्ति प्रदान करती हैं। इतना ही नहीं, गौवों से असाध्य रोगों को दूर करनेवाला गोमय तथा गोमूत्र भी मिलता है जिसमें असंख्य विषैले जन्तुओं को दूर करने का सामर्थ्य है। ऐसी पूज्या बहुगुणमयी पावन गौवों को यज्ञ जैसे पवित्र कर्म में मारकर ड़ालने का विधान वेदों में कदापि सम्भव नहीं है। जिन मन्त्रों के आधार पर पशुबलि का समर्थन किया जाता है उनमें कहीं भी पशुहत्या का विधान नहीं है। स्वसुविधा के लिये यथेच्छ अर्थ लगाकर वेदों के पवित्र मन्त्रों को दूषित किया गया है। अतः हम सब विवेकी मनुष्यों का यह परमधर्म है कि उन मन्त्रों के यथार्थ अर्थ को जानें तथा वास्तविकता को विश्व के सामने लायें।

अजएकपाददेवोऽस्ति

अज्ञानवश लगाया गया अर्थ :

बकरा एक पैरवाला देव है इसलिए उसे काटकर यज्ञ में पशुबलिके रूप में उसकी आहुति देनीचाहिए। बकरा चार पैरोंवाला होता है। व्याकरण शास्त्र की दृष्टी से हम इस मन्त्रांश का चिन्तन करते हैं तो वास्तविकता अत्यन्त सरलता से सामने आती है। अज शब्द का अर्थ है अजन्मा अर्थात् जो कभी जन्म नहीं लेता अनादि है, ऐसा परमेशवर न उसका आरम्भ है न अन्त भग्वद्गीता में योगेश्वर श्रीकृष्ण जी कहते हैं : **अजो नित्यः शाश्वतोऽयम् गीता द्वि.**

अज शब्द की निष्पत्ति : नञ् पूर्वक जनी प्रादुर्भावे

धातु से होती है नञ् उपसर्ग उत्पत्ति के अभाव का द्योतक है। जो अजन्मा परमेश्वर की ओर संकेत करता है। हम देखते हैं बकरे का जन्म होता है। और अगली बात एक

पैरवाला देव कहा गया है क्या बली दिया जानेवाला बकरा एक पैर का हाता है ?। वह तो चतुष्पद होता हे। यहाँ पादशब्द के दो अर्थ हैं एक अंश और दूसरा गतिशीलता **पद= गतौ** धातु से पाद शब्द बना है ये ये **गत्यर्था : ते ते ज्ञान गमन प्राप्त्यर्था** : इस सिद्धान्त के अनुसार जिसमें ज्ञान है। जिसकी गति सर्वत्र है जो प्रापणीय है ऐसा परमेश्वर न कि बकरा। इसी प्रकार **छागस्यहविः** बकरे की आहुति ऐसा अर्थ करके पशुबलि का समर्थन किया गया हैं। संस्कृत साहित्य श्लेषात्मक है एक ही शब्द के सन्दर्भ तथा धात्वर्थानुसार अनेक अर्थ है इस मन्त्र में छाग शब्द का अर्थ है उडीद, तिल, जौ, गेहूँ धान आदि।

छागशब्द छदिर : द्वयधीकरणे धातु से बना है वेद के इस मंन्त्रांश का बकरा अर्थ अपनी सुविधा के लिए गूढार्थ को न जाननेवाले केवल शब्दार्थ को प्रमाण माननेवाले लोगों ने लगाया है। **मेध शब्द के** उन्नति, विकास, श्रीवृद्धि, सम्पत्ति आदि महत्त्वपूर्ण अर्थ हैं।

यज्ञ क्या है

यज्ञ शब्द **यज= देवपूजासंगतिकरण दानेषु** इस धातु से निष्पन्न होता है।

१. देवपूजा :

दिव्यगुणस्म्पन्न, समाज को ज्ञान दान करनेवाले विद्वानों का सम्मान करना देवपूजा है। इस प्रकार दिव्यगुणों की, देनेवालों की, तेजस्वियों की, ज्ञानप्रकाश से अज्ञानान्धकार को मिटानेवाले सज्जनों की पूजा आदर सत्कार करना देवपूजा कहलाती है।सृष्टि के पदार्थो से यथोचित लाभ लेना भी देवपूजा है।

२. संगतिकरण :

सन्तों के निकट रहना, वाममार्गगामियों को सन्मार्ग पर लाना एक दूसरे से मुखमोड़कर विपरीत दिशा में गमन करनेवालों को एकादिशागामी बनाना संगतिकरण कहलाता है।

३. दानः

अपने पदार्थों से अपना अधिकार हटाकार उन्हें दूसरों के अधिकार में देना दान कहलाता है। पूजा करने के लिए पूज्यों को जानना आवश्यक है। संगतिकरण के लिए

संगमनीयों को तथा उनके गुणधर्मों को जानना आवश्यक है। दान देने से पूर्व देय वस्तु तथा दान लेनेवालों की पात्रता का ज्ञान आवश्यक है। वेद ने कहा है "इयं ते यज्ञिया तनूः" हे मानव। तेरा यह तन यज्ञियकर्मो अर्थात् श्रेष्ठ कर्मो के लिए है अतः इसे सत्कर्मो से यज्ञमय बना। वैदिक वाङ्मय में पंचमहायज्ञों के माध्यम से सभी सत्कर्मो एवं मानव धर्म का स्वरूप दर्शाया गया है।

''पंचमहायज्ञों का परिचय''

१. ब्रह्मयज्ञ (वैदिक संध्या)

सम्यक् ध्यायते अनया इति सा संध्या इसके अन्तर्गत समस्त विश्व का सृजन करनेवाली चरम सत्ता की विभिन्न विभूतियों का भजन, पूजन, ध्यान आता है। जिस सत्ता ने हमें यह अनमोल नरतन प्रदान किया है और जिससे हमारे जीवन का संवर्धन होता है उसके प्रति कृतज्ञभाव से नतमस्तक होना मानव मात्र का धर्म है। इसके लिए धार्मिक रूप में वैदिक मन्त्रों का पाठ यथा

ओं भूर्भुव : स्व । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य

धीमहि। धियो यो न : प्रचोदयात्

इस गायत्री मन्त्र से लेकर

ओं नमः शम्भवाय च मयोभवायच : नमः शिवाय च

शिव तरायच। नमः शंकराय च मयस्करायच

ओ शान्तिः शान्तिः शान्तिः यहाँ तक संध्या

के मन्त्र हैं। जिसे ब्रह्मयज्ञ कहा जाता है।

सन्ध्या के लिए

सन्दर्भ ग्रन्थ -नित्यकर्मविधि

आदर्श दिनचर्या

अध्यात्मसुधा

आर्यसत्संग गुटका

२. देवयज्ञ :

अग्निहोत्र, होम, हवन आदि देवयज्ञ के ही वैकल्पिक शब्द हैं। अग्निहोत्र के द्वारा उन सभी दिव्यशक्तियों की आराधना की जाती है जो विश्व के विभिन्न भागों के अधिष्ठाता हैं और हमारे जीवन को प्रभावित करते हैं। जिन सूर्य, वरूणादि मेघ देवताओ से हमें अन्नादि जीवनावश्यक वस्तुओं की प्राप्ति होती है, उनकी स्तुति करना हमारा परमधर्म है।

''यज्ञ से पर्यावरणशुद्धि तथा अन्य लाभ ''

यज्ञ में गोघृत एवं औषधीय गुणों से परिपूर्ण सुगन्धित द्रव्यों का मिश्रण बनाकर अग्नि में डाला जाता है जिसे सामग्री कहते हैं। यज्ञ में चन्दन, वटवृक्ष, पीपल उदुम्बर, तथा आम आदि वृक्षों की समिधाओं का प्रयोग किया जाता है, जो कि रोग नाशक शक्तियों से कीटकों का नाश करके हमें सुस्वास्थ्य प्रदान करती हैं। सम्प्रति यज्ञ के अभाव में स्वाईन प्ल्यु, डेंग्यू, मलेरिया आदि अनेक रोग मानव पर आक्रमण कर रहे हैं। प्राचीन ऋषिमुनियों ने रोगनिवारणार्थ तथा पर्यावरणशुद्ध्यर्थ अग्निहोत्र नाम का महत्त्वपूर्ण मन्त्र हमें प्रदानकिया है उस पवित्र अग्निहोत्र से हम पर्यावरण को शुद्ध करके रोगों से मुक्त होकर कृषि का उत्पादन भी बढा सकते हैं। नॅशनल बॉटनिकल रिसर्च इन्स्टिटयूट के वैज्ञानिकों ने यज्ञ अग्निहोत्र के विषय में संशोधन अनुसंधान करके जो निष्कर्ष निकाला है वह इस प्रकार है।

In the bid to study the actual impact of havans an indoor study was carried out the NBR theam including prof. Nautuyal. Mr. Puneet Singh Chauhan a fellow of Asian agri History foundation yashwant laxman Nene. Their opinion is as follows:

"After the experiment it was observed that though there was no reduction in the number of bacteria by burring of wood alone, smoke

emanating from herbs led to over 94 percent reduction in aerial bacteria.

"Absence of pathogenic bacteria in the open room even after 30 days was indicative of the bacterial potential of the medical smoke treatment".

यज्ञ का मुख्य उद्देश्य :

The main purpose of Havan is for the purification of our surroundings. It is persons's duty to thank nature for balancing our surroundings and making them fit for human existence.

Meditation and prayers are part of havan or good karma. resepect and humbleness is also considered of the mind gives power for self realization.

(स्वस्त्यायन स्मारिका २००९,पृ.क्र.८२,८३)"[११]

हवन के सत्य प्रयोग एवं लाभ :

१. महाराष्ट्र के वसंत परांजपे नामक व्यक्तिने अमरिका की राजधानी वॉशिंग्टन में वेदमन्त्रों के साथ अग्निहोत्र प्रारम्भ करके कृषि का उत्पादन चौगुना किया है। एक यज्ञ में दो सौ एकड़ खेती के पौधों का स्वरूप बदलने का सामर्थ्य है, यह उन्होंने प्रयोग से सिद्ध किया है। निरन्तर यज्ञ करने से यज्ञ का धूम्र ८ कि.मी. तक फैलता है। उसका परिणाम अत्यन्त उत्तम है। यह अग्निहोत्र हॅाउस वॉशिंग्टन से लगभग ४० कि.मी. की दूरी पर है।

३ दिसेंम्बर १९८४ की भोपाल की दुर्घटना है- यूनियन काबॉईड सर्वत्र फैल गया इससे लगभग **१७ से १८ हजार लोगों की मृत्यु हो गई बहुत से लोग विलांग हो गये।**

इंडियन कौन्सिल ऑफ मेडिकल रिसर्च नामक संस्थाने इस पर संशोधन किया तब उन्हें ज्ञात हुआ कि इस वायु के कारण फेफडे, मस्तिष्क, स्नायु, त्वचा आदि पर

दुष्प्रभाव पड़ा है। इसी समय दैनिक यज्ञ करनेवाले **सुन्दरलाल कुशवाह एवं एम.एल. राठौर इन दो** परिवारों ने अपने घर की खिडकियाँ एवं द्वार बन्द करके यज्ञ करना आरम्भ किया तब देखा गया कि उनके परिवारके किसी भी सदस्य को कुछ भी नहीं हुआ। उन्हें यज्ञ से जीवनदान मिला। इस प्रकार का महान् फलदायी यज्ञ कर्म करना वैश्विक धर्म है, तो आईये हम सब इस यज्ञ संस्कृति की ओर लौटकर लाभान्वित हों।

३. पितृयज्ञ-माता पिता की सेवा मातृ देवो भव, पितृ देवो भव आचार्य देवो भव

पितृ यज्ञ - १ आचार्यश्च पित चैव माता भ्राता च पूर्वजः।

नार्तेनाप्यवमन्तव्या ब्राह्मणेन विशषतः ।। २-२२५

आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पितामूर्तिः प्रजापतेः ।

माता पृथिव्या मूर्तिस्तु भ्राता स्वोमूर्तिरात्मनः ।। (अ.२-मनु.२२६)"[१२]

यं माता पितरौ क्लेशं सहेते संभवे नृनाम्।

न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्ष शतैरपि।। (अ.२ मनु.२२७)"[१३]

तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य च सर्वदा ।

तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते।। (अ.२ २२८ पृ.११५)"[१४]

तेषां त्रयाणां शुश्रुषा परमं तप उच्यते ।

न तैरभ्यननुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत् ।। (२-२२९ पृ.११६)"[१५]

सर्वे तस्यादृता धर्माः यस्यैते त्रय आदृताः ।

अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः ।। (मनु : २-२३४ पृ.२१६)"[१६]

अतिथियज्ञ : अतिथियों का यथोचित्त स्वागत सत्कार करना अतिथि देवो भव

ओं-हिरण्यस्त्रगयं मणिः श्रदां यज्ञं महे दधत्।

गृहे वसतु नोऽतिथिः ।। (अथर्ववेद -१०-६-४ पृ.क्र२७६)"[१७]

ओं- तस्मै घृतं सुरां मघ्वन्नमन्नं क्षदामहे ।

स नः पितेव पुत्रेभ्यः श्रेयः श्रेयश्चिकित्सतु भूयो भूयः

श्वः श्वो दवेभ्यो मणिरेत्य ।। (अथर्ववेद - १०-६-५-पृ.क्र२७६)"[१८]

वैदिक धर्म यज्ञ प्रधान धर्म है। प्रत्येक वैदिक धर्म्मों के लिए ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ एवं बलिवैश्वदेव यज्ञ- ये पाँच महायज्ञ नित्य कर्म हैं। इनके न करने से पाप माना गया है इन पाँच यज्ञों में एक अतिथि यज्ञ है। आर्यों का अतिथ्य जगप्रसिद्ध है। अतिथि हितकारी हो समय समय पर जनता को सदुपदशों से लाभान्वित करे।

अतिथिसेवा विधि -

तद्यस्यैव विद्वान् व्रात्योऽतिथिर्गृहानागच्छेत् (अथर्ववेद -१५-११-१ पृ.क्र.७४५)"[१९]

स्वमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद् व्रात्य क्वाऽवात्सीर्व्रात्योदकं

व्रात्य तर्पयन्तु व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्तु व्रात्य यथा ते वशस्तथास्तु व्रात्य यथाते निकामस्तथास्त्विति (अथर्ववेद- १५-११-२ पृ.७४६)"[२०]

यदि व्रतविभूषित विद्वान घर आजाए तो गृहपति स्वयं उठकर उसके पास जाकर कहे- व्रात्य कहाँ रहे ? व्रात्य जल लीजिए। कृपा कीजिए इस घर में आराम से प्रसन्नता पूर्वक रहिए व्रात्य जो आपको प्रिय लगे वैसा ही होगा। व्रात्य ! जो आपकी इच्छा होगी वही होगा। जो आपकी कामना है वही होगी।

सत्येमेव वह बडा भाग्यशाली है जिसके घर ऐसे व्रतधारी अतिथियों का पदार्पण होता है।

बलि वैश्वदेव यज्ञ : गोग्रास तथा अन्य परावलम्बि पशु पक्षियों तथा जीव जन्तुओं को अपने भोजन में से कुछ भाग देना। मध्य काल में यज्ञों का विकृतिकरण हुआ जिससे सामान्य जनमानस मे यज्ञ जैसे पवित्र कर्म के प्रति घृणा उत्पन्न हुई। समस्त सत्य विद्याओं के भण्डार पावन वेदादि शास्त्र भी कलंकित हुए अतः इन यज्ञों का वास्तविक स्वरूप यथा शक्ति विश्व के सामने लाने का प्रयास किया गया है।

यथा : गोमेध, अश्वमेध, गृहमेध, नरमेध

१. **गोमेध :** गोपाल रक्षण करना। गाय को वेदों में विश्व की माता कहा है, **''गावों विश्वस्थ आतरः** जिन्हें माता कहकर सम्मानित किया गया है उन्हें मारकर पवित्र यज्ञ कर्म में ड़ालने का विधान कहीं भी नही है। गौओं को **अघ्न्याः** भी कहा है। अर्थात् वे सर्वथा अहिंसनीय तथा रक्षणीय हैं।

२. **अश्वमेधः** अश्वमेध शब्द के अर्थ अश्वपालन, राष्ट्रोत्कर्ष आदि हैं।

३. **गृहमेध :** गृहस्थ धर्म को स्वीकार करके आदर्श जीवन जीते हुए संस्कार सम्पन्न सन्तान को जन्म देना तथा पारिवारिक सुख शान्ति को बनाये रखना।

आदर्श गृहस्थ जीवन का चित्रण अथर्ववेद में बहुत ही सुन्दर शब्दों में किया है।

अनुव्रत : पितुः पुत्रः मात्रा भवतु संमतनः ।

जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्।

गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता -

४. **नरमेध :** मनुष्य की व्यक्तिगत उन्नति, विकास, जिन सुकर्मो से होता है उन सब को नरमेध कहा जाता है क्योंकि मेध शब्द का अर्थ ही, उन्नति, विकास तथा

कल्याण है। सम्भवतः मेध के स्थान पर मेद ऐसा उच्चारण करके चर्बी अर्थ किया गया है।

५. राष्ट्रमेध : राष्ट्रोन्नति

६. सर्वमेध : सर्वस्वपरित्यागः। संन्यासदीक्षा

अध्वर इति यज्ञ नामधेयम्

"अध्वर" इति शब्दः सर्वत्र यज्ञेषु हिंसा निषिद्धत्वमेव प्रकटयति, तत्कथमध्वरेषु किंवा यज्ञेषु पशु हिंसायाः प्रतिपादनं दृश्यते संहितेतर साहित्ये

न केवलमिदमेव अपितु ब्राह्मणादि ग्रन्थेषु श्रेष्ठतमेऽस्मिन् कर्मणि नरबलिविधानान्यपिअभिलक्षयन्ति

अथच महदाश्चर्यस्य विषयोऽयं यदवैदिके साहित्ये

स्थाने स्थाने अध्वर विशेषणेन विशिष्टे यज्ञे " अध्न्या"

विशेषणेन विशिष्टा : गावोहन्यन्ते स्म । **"गावो विश्वस्य मातरः"**

इत्यपि वैदिकोमन्त्र : माता इति विशेषणेन गावः सम्मानयति तत्कथं कुतः

कदावा प्रवृत्ता इथं दुष्प्रवृत्ति किमस्ति यज्ञेषु हिंसाः

प्रवृतेर्मुलम् संहिता साहित्यमुताहो संहितेतर साहित्यम

एषां समेषां प्रश्नानां जिज्ञासात्र निराकृता,

सुरा मत्स्याः पशोर्मासं आसवं कृशरौदनम्।

धूतैर्प्रवर्तितं ह्येतत्रैतद् वेदेषु विद्यते।।

लुब्धैर्वितपरैर्ब्रह्मन् नास्तिकैः संप्रवर्तितम्।

वेदवादान् अविज्ञाय सत्यभासामिवानृतम् ।।

यूपं छित्वा पशून् हत्त्वा कृत्वा रुधिर कर्दमम्।

यद्येवं गम्यते स्वर्ग नरकं केन गम्यते।।

पशु यज्ञ मीमांसा (डॉ. कृष्णा महाभारत शा.प. २६३-६)"[२१]

वर्णव्यवस्था :

वर्णशब्द वृञ्-वरणे धातु से बना है, जिसका अर्थ है, स्वीकार करना

प्राचीन भारतीय धर्म और संस्कृति पर वर्णव्यवस्था इतनी अधिक छाई हुई है कि, जीवन के प्रायः सभी विषयों पर वर्ण के आधार पर ही विचार किया गया है। मूलतः वर्ण व्यवस्था की पृष्ठभूमि में मनुष्य का जीविकोपार्जन का कर्म और नैतिक आचरण था। अपने कर्म के आधार पर मनुष्य उच्च वर्ण में जन्म लेकर भी अनैतिक कृत्यों के कारण निम्न वर्ण में गिना जाता था। समाज का विभिन्न वर्गो में विभाजन प्रायः सभी देशों में किसी न किसी रुप में सदा विद्यमान रहता है। क्योंकि सभी मनुष्य एक जैसे उत्पन्न नहीं होते। सब में एकसी क्षमता नहीं होती। सृष्टि त्रिगुणात्मक है, सत्व, रज, और तम। अपने पूर्व जन्म में किये कर्मो के अनुसार सात्विक राजसिक एवं तामसिक प्रवृत्तियों को लेकर मानव जन्म लेता है। समय के साथ परिवर्तन हुआ प्राचीन पवित्र वर्णव्यवस्थाने समाज में अन्याय पूर्ण रूप धारण कर लिया। वही उग्र वर्ण व्यवस्था आज समाज की सबसे बडी समस्या बन गई है, लेकिन वर्णव्यवस्था के साथ जुडा हुआ ४ यह अंक हटाकर केवल वर्ण यह शब्द रख दें तो अतीव सुन्दर समाजरचना हो सकती है। सम्प्रत्ति समाज के एक वर्ग की स्थिति इतनी चिन्तनीय हो गई है कि उन्हें अपना जीवन ही अभिशाप लगने लगा है। इस चिन्ता को मिटाने के लिए।

अज्येष्ठास अकनिष्ठासः मन्त्र का गान करते हुए आगे बढ़ने की आवश्यकता है। वर्ण चार नहीं अपितु जितने कार्य उतने ही वर्ण ऐसी आदर्शसमाज व्यवस्था फिर से स्थापित करनी होगी।

१. ब्राह्मण - ज्ञान का प्रतीक। ब्रह्मजानतीति ब्राह्मण

२. क्षत्रिय - सुरक्षा। क्षतात्किल त्रायत इति क्षत्रियः।

३. वैश्य - धनसंचय कृषादि कार्य का प्रतीक विशति, व्यवसायार्थ सर्वत्र विशतीति वैश्यः कृषकादयः

४. शूद्र - सक्रियता, श्रमशीलता, निष्ठा, आशु गच्छति इति शूद्रः।

जन्म से कोई भी अपनी जाति लेकर नही आता इस संसार में जब मनुष्य जन्म लेता है तब वह शूद्र अर्थात् अज्ञानी होता है। धीरे धीरे अपने कर्मों के अनुसार वह अपनी संज्ञा बन जाता है।

जन्मना जायते शूद्र : संस्कारद् द्विज उच्यते।

वेदपाठाद् भवेद् विप्रः ब्रह्म जानातीति ब्राह्मणः ।।

(मनुस्मृति)

''चातुवर्ण्यं मयासृष्टं गुण कर्म विभागश : -भगवद्गीता

चातुर्वर्ण्य को लेकर समाज में अनेक वाद विवाद तथा घृणास्पद दृष्टिकोन दृग्गोचर होता है। इस प्रकार का कोई अनुचित विधान वेदों में नहीं है। समाजशास्त्री मननशील मनु ने स्वयं इस बात का विश्लेषण किया है।

वेदादि शास्त्रों में तो गुणकर्म स्वभावानुसार चार ही विभाग किये गये हैं। लेकिन सम्प्रति हम देखते हैं उन चार विभागों के असंख्य विभाग जातियों के दिखाई देते हैं, तो क्या इसके लिए वेदादि शास्त्र दोषी हैं ?। वर्तमान समय की ओर दृष्टिक्षेप करनेसे यह प्रतीत होता है कि प्रत्येक जातियों के स्वतन्त्र संगठन हो रहे हैं, इसके लिए कौन दोषी या जिम्मेदार है? ऐसे अनेक प्रश्न सामने आते हैं। वेदादि सद्ग्रंन्थों के अनुसार एक ही व्यक्ति कार्यानुसार चारों वर्णों का प्रतिनिधित्व करता है।

यथा :

एक अध्यापक या उपदेशक जब ज्ञानार्जन तथा ज्ञानदान करता है तब यह ब्राह्मण होता है वही व्यक्ति जब दुष्टों का निग्रहण दमन तथा सज्जनों का रक्षण करता है, तो वह उस समय क्षत्रिय का कर्तव्य निभाता है, इसलिए पुलिस विभाग को

"सद्रक्षणाय खल निग्रहणाय "

यह घोषवाक्य दिया गया है।

वही व्यक्ति जब कोई व्यवसाय व्यापार करता है, तो वह वैश्य बन जाता है । और वही जब दौड़ दौड़ कर शारीरिक श्रम के कार्य करता है तो शूद्र कहलता है। संस्कृत भाषा में एक ही शब्द के अनेक अर्थ हैं इसीकारण अनुचित अर्थो के आधार पर चातुर्वर्ण्य के स्वरूप को विकृत करके समाज के सामने रखा गया है।

वेद के पुरूषसूक्त में समाज पुरूष का आलंकारिक वर्णन करते हुए कहा है।

ओं ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहुराजन्यकृतः
ऊरू तदस्य यदवैश्य पद्भ्यांशूद्रोऽजायत।।

ब्राह्मण : ज्ञान के द्वारा ब्रह्म को जानने वाला ब्राह्मण कहलाता है। ब्रह्म जानातीति ब्राह्मणः

ब्राह्मणः स्वकर्मणा न जन्मना।

ब्राह्मण का कर्म - शमो दमस्तपः शौचं क्षांतिरार्जमेवच

ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् (गीता -१८-४२)"[२२]

२. क्षत्रिय : क्षतात्किल त्रायत इति क्षत्रिय : दीन दुःखियों की रक्षा करने वाला क्षत्रिय कहलाता है।

क्षत्रिय का कर्म - शौयं धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्

दानमीश्वर भावश्च क्षात्रकर्म स्वभावजम्।।१८-४३-

३. वैश्य : सर्वत्र व्यवसायार्थ विशति इति वैश्यः । अपने व्यापार के लिए जो सर्वत्र जाता है। उसे वैश्य कहते हैं। विश = प्रवेशने

वैश्य कर्मः कृषिगोरक्ष वाणिज्यं वैश्य कर्म स्वभवजम्

परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्।।(गीता.१२-४४)"[२३]

४. शूद्र : आशु द्रवति इति शुद्रः । शारीरिक श्रम से अति शीघ्र दौड दौड कर कार्य करनेवाला गतिशील व्यक्ति शुद्र कहलाता है। **शूङ् =गतौ, द्रु =गतौ**

इन दो गत्यर्थक धातुओं से शूद्र शब्द बना है। शूद्र शब्द का अर्थ निकृष्ट नही है क्रियाशील है

इति संक्षेपेण वर्णव्यवस्था वर्णिता

अथ आश्रमव्यवस्था

चतुराश्रमधर्म

१. **ब्रहमचर्याश्रम :** छात्रजीवन /संयमी जीवन

चारों आश्रमों में से प्रथमाश्रम ब्रह्मचर्य पर अधिक लक्ष्य केन्द्रित करना आवश्यक है। क्योंकि वह मानव जीवनरूपी भव्यभवन की नींव है यदि नींव सुदृढ होगी तो भवन सुरक्षित तथा सुख शान्तिमय होगा। समय के साथ परिवर्तित प्रवाह में मार्गक्रमण करते हुए प्राचीन काल के सभी नियमों का पालन करना सम्भव नहीं है। तथापि जो कभी भी कालातीत नहीं हो सकते उन नियमों का पालन करना छात्रजीवनका धर्म हैं।

२. **गृहस्थाश्रम :** वैवाहिक जीवन सर्वश्रेष्ठ तथा अन्य आश्रमों का आधारस्तम्भ है

३. **वानप्रस्थाश्रम :** विरक्त वैराग्ययुक्त साधनाकाल

४. **संन्यासाश्रम : वसुधैव कुटुम्बकम्** की उदात्त भावना लेकर निष्काम कर्म करते रहना।

यथा

१. व्यसनमुक्त जीवन ।

२. समय पर सोना समय पर उठना।

३. सात्त्विक आहार।

४. स्वाध्याय में लक्ष्य केन्द्रित करना सद्ग्रन्थोंको पढना जिससे तन, मन पवित्र हो सके।

५. सुशीलो मितभाषी सभ्यो भव (उपनयन संस्कार संस्कारविधि पृ.४१५)"[२४]

आदर्श गृहस्थाश्रम : तीनों आश्रमों का पोषक तथा सुख समृद्धिशान्ति संवर्धक है।

तपः पूत जीवन वानप्रस्थ आश्रम है। तुझे संसार सागर में कमल की भाँति रहना है।

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः

सर्वेषामपि चैतेषां वेदस्मृतिः विधानतः ।

गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः स त्रीनेतान्बिभर्ति हि।।

(मनु अ-६ ९०पृ.२८९)"[२५]

यथा नदीनदाः सर्वे सागरं यान्ति संस्थितम् ।

तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्।।

(मनु अ-६ ९०पृ.२९०)"[२६]

वानप्रस्थाश्रम के नियम : तपःपूत जवीन वानप्रस्थ आश्रम है। तुझे संसार सागर में कमल की भाँति रहना है ।

गृहस्थस्तु यथा पश्येद् वलीपलितमात्मनः।

अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत्।

(मनु ६-२-पृ.क्र २७४)"[२७]

सन्त्यज्य ग्राम्याहारं सर्वं चैव परिच्छिदम् ।

पुत्रैषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत् सहैव वा।

(मनु ६-३-पृ.क्र २७४)"[२८]

मुन्यन्नैर्विविधैर्मेध्यै : शाकमूलफलानिच ।

एतानेव महायज्ञान् निर्वपेद्विधिपूर्वकम्।।

(मनु ६-५-पृ.क्र २७५)"[२९]

संन्यासाश्रम के नियम

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः

वनेषु च विहृत्यैव तृतीयं भागमायुषः ।

चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वासंगान्परिव्रजेत् ।।

(मनु ६-३३-पृ.क्र २८०)"[३०]

आश्रमाद् आश्रमं गत्वा हुतहोमो जितेन्द्रियः ।

भिक्षाबली परिश्रान्तः प्रव्रजन् प्रेत्य वर्धते।।

(मनु ६-३४-पृ.क्र २८०)"[३१]

ऋणानि त्रीण्यापाकृत्य मनोमोक्षे निवेशयेत् ।

अनापाकृत्य मोक्षे तु सेवमानो व्रजत्यधः ।।

(मनु ६-३५-पृ.क्र २८०)"[३२]

दृष्टिपूतं न्यसेत् पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्।

सत्यपूतां वदेत् वाचं मनः पूतं समाचरेत ।।

संन्यास : त्यागमय समर्पित जीवन जीना संन्यासी का धर्म है। संन्यासी का अपना कोई विशेष सम्बन्धी नही होता सारा संसार उसका हो जाता है।

All universe is my house हे विश्वची माझे घर-ज्ञानेश्वारी

समदृष्टि से सभी को अपना समझते हुए साधना में जीवन व्यतीत करना संन्यासाश्रम का परमधर्म है।

अयं निज परोवेति गणना लघुचेतसाम्।

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।

यही संन्याश्रम का सिद्धान्त है। इस तथ्य को स्वीकार करके जीवन जीना संन्यासी का अपना धर्म है। **धारणा ध्यान एवं अन्त में समाधि अवस्था को प्राप्त करके परमात्मा में तदरूप हो कर मोक्ष प्राप्त करना**

शतायु वै पुरूष : के अनुसार व्यक्ति के जीवन को चार भागों में विभक्त किया गया है। जिसे मनुस्मृति में आश्रमव्यवस्था कहा हे। वे चार आश्रम ये हैं।:

१.बह्मचर्य, २. गृहस्थ ३. वानप्रस्थ ४. संन्यास।

मनु के अनुसार व्यक्ति अपने आयु के प्रथम २५ वर्ष तक गुरू के समीप रहकर विद्यार्जन करे। अगले २५ वर्ष गृहस्थ आश्रम में व्यतीत करे। इस आश्रम में व्यक्ति अर्थ एवं कामरूप दो। पुरूषार्थों को प्राप्त करे। इन दो आश्रमों के पश्चात् २५ वर्ष तक वानप्रस्थ और २५ वर्ष संन्यासाश्रम में व्यतीत करते हुए मोक्ष को प्राप्त करे इस प्रकार चारों आश्रमों के कर्तव्यों का पालनकरना विश्वधर्म है जिससे समाज का वास्तविक उत्थान होता हे।

आश्रम शब्द का अर्थ है श्रम करना। आश्रम व्यवस्था का अभिप्राय है एक निश्चित कार्य करना। प्रत्येक कार्य की एक अवधि होती है जिससे इसी जीवन में अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए मानव चरम लक्ष्य मोक्ष को पा लेता है।

तीन ऋण :

१. देवऋण , २, ऋषिऋण, ३.पितृऋण,

हमारे ऋषि अत्यन्त उच्च कोटि के समाजशास्त्री एवं मनोवैज्ञानिक थे, जिन्होने समाज के लिए इतने उपयुक्त नियम बनाये। यदि दैवी सम्पति जल को हम प्रति दिन व्यय करते हैं तो हमारा कर्तव्य बनता है कि हम जलाशय, कूप, नल आदि की व्यवस्था करें। यह देव ऋण की पूर्ति है।

२. ऋषिऋण : द्वितीय ऋण ऋषि ऋण माना गया है। हमारे पूर्वज ऋषियों ने वेदादि शास्त्रों की रचना की। यदि हम उन शास्त्रों का अध्ययन मनन तथा आचरण नहीं करेंगे तो ऋषि ऋण से ऋण मुक्त नहीं हो सकते, अत: शास्त्रों को पढ़कर तदनुकूल आचरण करना हमारा धर्म है। इस धर्म के पालन से हम ऋषि ऋण से उऋण हो सकते हैं।

पितृऋण : तीसरा ऋण पितृऋण है माता पिता के माध्यम से ही हमें मानव शरीर मिला है। उनकी सेवा करना एवं सन्तान को जन्म देन पितृऋण से उऋण होना है। इसलिए उपनिषद् में कहा है।

मातृमान् पतृिमान्

आचार्यवान् पुरूषोवेद :

जिसे ममतामयीमाता, प्रेममयपिता एवं सदाचार सम्पन्न अर्थात् यास्काचार्य के अनुसार **आचारं ग्राहयति इति आचार्यः, आचिनोति अर्थान इति आचार्यः आचिनोति बुद्धि मिति वा स आचार्यः** निरक्त में उक्त गुणयुक्त आचार्य जिसे मिले हैं वह पुरूष धन्य है। वैदिक वाङ्मय में इन्हें देव कहा हैं।

मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्य देवभव । उपनिषद्

समाज व्यवस्था :

वैदिकवाङ्मय में जिन सामाजिक व्यवस्थाओं का वर्णन मिलता है उनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण व्यवस्था पुरूषार्थ चतुष्टय है। पुरूषार्थ का अर्थ है उद्योग जिससे चरम लक्ष्य तक पहुँचा जा सकता है। यह चरम लक्ष्य भारतीय संस्कृति के अनुसार मोक्ष की प्राप्ति है। चरम लक्ष्य की प्राप्ति चतुर्विध पुरूषार्थ से सम्भव है।

मानव समाज की विशेषता :

मानव समाज की विशेषता धर्म को लेकर स्पष्ट होती है। यहाँ प्रत्येक क्षण, व्यवहारिक जीवन में धार्मिक भावना का अनुसारण किया जाता है। धार्मिक भाव से, धर्माचरण से अन्तः करण की शुद्धि होती है, वंशशुद्धि होती है साथ ही वंश परम्परा सुदृढ, होती है। वंश की उन्नति के लिए धर्मवृक्ष आरोपण करना हमारा कर्तव्य है।

धर्म वह संस्था है जिसके द्वारा व्यक्ति का व्यक्तित्व सुस्पष्ट होता है। धर्मसे पृथक् होकर व्यक्ति धूलीसात् हो जाता हे। यदि आग दाहकत्व, पाचकत्व आदि धर्मो को त्याग दे तो आग का स्वत्व किस रुप में सुप्रतिष्ठित होगा, यदि चन्द्रमा शीतलता, प्रकाशत्व त्याग दे तो चन्द्रमा का स्वत्व क्या होगा इस प्रकार हम देखते है कि प्रकृति के सभी पदार्थ अपने अपने धर्मो के कारण ही सुप्रतिष्ठित होते हैं। मानव भी प्रकृति का ही एक अंग है अतः वह भी प्रकृति के इस गुण को लेकर ही जीता है। मानव समाज भी अपने व्यक्तित्व को मानव धर्मो का आश्रय लेकर ही सुप्रतिष्ठित कर सकता है।

इति संक्षेपण चतुराश्रमधर्मा/ प्रोक्ता

सामाजिक स्थैर्य के लिए १६ संस्कारो का महत्त्व :

भारत देश को देवभूमि कहा गया है। वेदादि सद्ग्रन्थों का चिन्तन मनन तथा निदिध्यासन इसी पावनभूमि में हुआ है। इस भूमि में जन्म पाने के लिए देवता भी तरसते

थे। भारतभू की महिमा का गौरवगानकरते हुए मैथीलीशरण गुप्त ने भारत भारती में एक पद्य उद्धृत किया है

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यवस्तु ये भारतभूमिभागे।(भारत भारती - मैथिली शरण गुप्त)

इसी श्लोक के आशय को हिन्दी कवि ने बहुत सुन्दर शब्दों में अंकित किया है।

पुनर्जन्म मानव का पावें यदि हम,

हमें सच्चे भक्तों का परिवार देना।

यही मातृभूमि जो 'ऋषियों की प्यारी,

हमें जन्म इसमें ही हर बार देना।।

इन मनीषाओं की पूर्णता के लिए संस्कारों की अनुपम धरोहर एतद्देशीय चिन्तशील ऋषियों ने षोडश संस्कारों के द्वारा विश्व के समक्ष प्रस्तुत की है। सम्प्रति संस्कार हीनता के कारण अनेक दुष्कृत्य मानव कर रहा है अतः समाज में पुनश्च संस्कार सुमनों की सुरभि का प्रसरण आवश्यक है। वैश्विकीकरण के बाजार में चारों ओर दुर्गण, व्यसनाधीनता अन्याय, अत्याचार क्रूरता, भ्रष्टाचार व्यभिचार आदि, सभी मानवीय मूल्यों को दाव पर लगा रहे हैं। ये व्याधियाँ इतनी तीव्रगतिसे फैल रहीं हैं कि इन पे नियन्त्रण रखना असम्भव सा प्रतीत हो रहा है। लेकिन हम हार मानकर बैठे नहीं रहेंगे, संस्काररूपी कुशल चिकित्सकों के समूह के द्वारा सभी बीमारियों को समूल समाप्त करेंगे यह हमाराधर्म है।

हम असम्भव को भी सम्भव बना सकते हैं।

अपने सत्कर्मो से दुनिया को हिला सकते हैं।।

इस बुलन्द आतमविश्वास के साथ कार्य करने की आज आवश्यकता है

सम्प्रति भारतवर्ष में अन्य रूपों में उपनयनादि संस्कार दृग्गोचर होते हैं लेकिन वास्तविकता से कोसों दूर हैं। इस अध्याय में वैदिक वाङ्मयोक्त षोडशसंस्कार उनका महत्व तथा वर्तमान समय में उनकी आवश्यकता का संक्षिप्त विवेचन किया जायेगा।

महर्षि दयानन्द सरस्वती लिखित संस्कार विधि के अनुसार वे षोडशसंस्कार इस प्रकार है

१. गर्भाधानसंस्कार ।

२. पुंसवनसंस्कार ।

३. सीमन्तोन्नयसंस्कार।

४. जातकर्मसंस्कार ।

५. नामकरणसंस्कार।

६. निष्क्रमण संस्कार।

७. अन्नप्राशनसंस्कार :

८. चूडाकर्मसंस्कार ।

९. कर्णवेधसंस्कार ।

१०. उपनयन संस्कार

११. वेदारम्भसंस्कार।

१२. समावर्तन संस्कार।

१३. विवाह संस्कार

१४. वान प्रस्थसंस्कार।

१५. संन्याससंस्कार ।

१६. अन्त्येष्टि संस्कार।

कार्य : शरीर संस्कार : पावन : प्रेत्य चेहच (मनुस्मृति)

अपने तन एवं मन की शुद्धि के लिए संस्कार अत्यन्त आवश्यक हैं। प्राचीन वैदिक वाङ्मय के अध्ययन अध्यापन से मानव जाति का कायकल्प हो सकता है। सम्प्रति जो अशान्ति चारों ओर दृग्गोचार हो रही है, वह वैदिकवाङ्मयस्थ षोडश संस्कारों द्वारा शान्ति में परिवर्तित हो सकती है। षोडशसंस्कारों का यथार्थ रूप विश्व के समक्ष प्रस्तुत करने हेतु वैदिकवाङ्मय का सम्यक् अवलोकन करना आवश्यक है। संस्कारों की समीक्षा करने से पूर्व संस्कार किसे कहते हैं यह जानना आवश्यक है।

निषेकादिश्मशानान्तोमन्त्रैर्यस्योदितोविधिः

(मनुस्मृति अ. २, १६)"[३२]

इस विधान से यह स्पष्ट होता है कि प्रथम संस्कार गर्भाधान एवं अन्तिमसंस्कार अन्त्येष्टि । मानव के जन्म से मृत्यु तक १६ संस्कार किये जाते हैं। जिनका संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जायेगा अधिक जानकारी हेतु संस्कार विधि या संस्कारचन्द्रिका का अवलोकन कर सकते हैं।

१. गर्भाधान संस्कार

गर्भाधान संस्कार पति पत्नी दोनों की प्रसन्नता से होना चाहिए। पति-पत्नी दोनों आपस में मित्र होते हैं अतः यह आवश्यक है कि इनमें से कोई भी एक दूसरे पर अन्याय न करें यदि पत्नी की इच्छा गर्भाधन के लिए नही है तो पति को उस पर बलात्कार करने का कोई अधिकार नहीं है, इसी प्रकार पति की इच्छा के बिना पत्नी भी उस पर गर्भाधान के लिये दबाव नही डाल सकती।

अप्रसन्नता से गर्भाधान करने से उत्तम सन्तान उत्पन्न नही होगी। इससे ज्ञात होता है कि प्राचीन 'ऋषियों ने दोनों की प्रसन्नता जानने के लिए यह गर्भाधान संस्कार की उत्तमरीति निश्चित की थी। जिस दिन गर्भाधान करना हो उस दिन इस संस्कार सम्बन्धी यज्ञ किया

जाता था। संस्कारविधि में इसकी विशेष जानकारी दी गई है। पत्नी की इच्छा गर्भाधान के लिए न हो तो वह सभ्यता से मधुमय वाणी से पति को कह सकती है कि आज गर्भाधान नहीं करेंगे। इसी प्रकार पति भी कह सकता है दोनों को समान अधिकार है **(संस्काचन्द्रिका पृ. १८४)**"[३३]

दोनों की प्रसन्नता विषयक मनुजी का यह मत अत्यन्त परिपोषक है :

सन्तुष्टो भार्य्यया भर्ता भर्त्रा भार्य्या तथैव च ।

यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै धुवम्।। (मनुस्मृति अ. ३, ६०)"[३४]

जिस कुल में पत्नी से पति तथा पति से पत्नी प्रसन्न रहती है, उस कुल का उद्धार होता है तथा मंगलमय वातावरण बना रहता है। गृहस्थ जीवन में आपस में प्रसन्न रहना दोनों का धर्म है। इससे भी आगे महर्षि मनुजी ने महिलाओं के सम्मान में अतीव महत्त्वपूर्ण मत व्यक्त किया है

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

यत्रैतास्तु न पूज्यन्तेसर्वास्तत्राफलाः क्रिया।।

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्

न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा।।(मनुस्मृति अ. ३, ५६, ५७)"[३५]

जिस कुल में महिलाओं का सम्मान होता है वहाँ सभी दिव्य गुणों का वास होता है। जहाँ उनका सम्मान नहीं होता वहाँ कोई क्रिया सफल नही होती (५६)

जिस कुल में महिलाएँ अपने पतियोंके दुराचार से पीडित रहती हैं उस कुल का सर्वनाश होता है। जिस कुल में महिलायें अपने पतियोंके सदाचार से प्रसन्न रहती हैं वह कुल सदा उन्नति के शिखर पर आरूढ होता है (५७) **(संस्कार चन्द्रिका पृ. १८७)**"[३६]

२. पुंसवनसंस्कार

पुंसवनसंस्कार का समय गर्भस्थिति ज्ञान के पश्चात् द्वितीय अथवा तृतीयमास में कहा है। इस संस्कार से गर्भस्थ बालक सुरक्षित, स्वस्थ रहता है और उत्तम प्रकार से बढता है। गर्भास्थिति ज्ञान के पश्चात् दो वर्ष तक पति को संयमी जीवन जीना होता है। ब्रह्मचारी की भाँति रहने से पुरूषत्व अर्थात शक्ति प्राप्त होती है जिससे द्वितीय सन्तान भी उत्तम उत्पन्न होती है।

पति का पत्नी को आश्वासन (विश्वास)

ओं यत्ते सुसीमे हृदये हितमन्तः प्रजापतौ। मन्येऽहं मां तद्
विद्वांसं माहं पौत्रमघन्नियाम् ।।

आशवलायनगृहयसूत्र त.१ अ. १, ख. १३ सूत्र २०

पुंसवनसंस्कार के समय पति पत्नी को एकान्त में ले जाकर उसके हृदय पर हाथ रखकर जो कुछ कहता है, वह असामान्य रहस्य है। उस गूढ तत्त्व की चर्चा इस प्रकार है:- पति एकान्त में इस प्रकार अपनी पत्नी से कहता है हे सुकेशी! मैं पूर्ण रीति से जानता हूँ कि तेरा हृदय सन्तान पालन के भाव से परिपूर्ण है अत: मैं भी ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि तेरे समान गर्भ तथा सन्तान की रक्षा में तत्पर रहूँ। कितनी प्रीतिपूर्ण वाणी से पति पत्नी को विश्वास दिला रहा है कि इस बालक की रक्षा करना हम दोनों का धर्म है।

कैसे सुन्दर उच्च भाव से युक्त और गूढ आशयपूर्ण यह सम्बोधन है। पत्नी के सद्भाव पर पूर्ण विश्वास रखता हुआ स्वयं भी प्रतिज्ञा करता है कि उसके समान वह भी गर्भ की रक्षा का पूर्ण दायित्व अपना कर्तव्य मानकर निभायेगा। ब्रह्मचर्यपूर्ण जीवन जीने का व्रतधारण कर लेता है। इसी को पुंसवन कहा है। वेदोक्त उचित समय तक संयमी जीवन व्यतीत करना ही पुंसवनसंस्कार है।

महाभारत तथा रामायण के अध्ययन से अवगत होता है कि एक समय था जब लोग पुंसवनका महत्त्व समझते थे उस समय कोई माता पिता अपवाद छोड़कर अपनी सन्तान को अपने सम्मुख मरते हुए नहीं देखते थे।

इस पावन परम्परा का पालन करना आज भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना वैदिक काल में था। पुंसवन अर्थात् संयम के अभाव से सम्प्रति सन्तान रोगी, विकलांग एवं मतिमन्द उत्पन्न हो रही है। अपनी सन्तान को स्वस्थ कुशाग्रमति एवं संस्कार सम्पन्न बनाने हेतु पुंसवनसंस्कार करना हमारा परमधर्म है, जिससे विश्व को शूर, वीर, बुद्धिमान्, ओजस्वी तेजस्वी सन्तान प्राप्त होगी। सम्प्रति नानाविध अत्याचार अहर्निश हो रहे हैं इसका कारण है संयम एवं संस्कारों का अभाव। इस महामारी से बचने हेतु संस्कार रूपी महौषधी का सेवन आवश्यक है।

३. सीमन्तोन्नयनसंस्कार :

तृतीयसंस्कार सीमन्तोन्नयन है। इस संस्कार से गर्भवती महिला का मन सन्तुष्ट, आरोग्य उत्तम तथा गर्भस्थिर होता है। अत्युत्तम प्रकार से गर्भ बढता है ।

चतुर्थे गर्भमासे सीमन्तोन्नयनम् ।

आश्वलायन गृह्यसूत्र पुंसवनवत् प्रथमे गर्भेमासे षष्ठेष्टमे च।

(पारस्कर गृह्यसूत्र)

पारस्कर के मतानुसार प्रथम, षष्ठ अथवा अष्टम मास में सीमन्तोन्नय संस्कार का विधान है प्रथम मास में यह संस्कार उचित नहीं है। लोक व्यवहार को देखते हुए एवं शास्त्रीय दृष्टि से भी प्रथम मास में यह नहीं होना चाहिए। सीमन्तोन्नयन एक स्वतन्त्र संस्कार है। इसका प्रभाव मी सर्वथा भिन्न है। यह संस्कार सप्तम या अष्टम मास में करना उचित है। गर्भस्थ बालक की मानसिक शक्तियों का विकास करना इस संस्कार का मुख्य उद्देश्य है। माता को जो वस्तु प्रिय है वह उसे न मिलने पर बालक विलांग, कुब्जा, विक्षिप्त, मूर्ख, बौना, अन्धा, बधिर,मूक उत्पन्न होता है अतः गर्भवती महिला को जिस पदार्थ की इच्छा हो

उसे वह पदार्थ अवश्य देना चाहिए। वाञ्छित पदार्थ प्राप्त होने से बालक सुदृढ एवं दीर्घायु उत्पन्न होता है। **सुश्रुत शरीरस्थान अ. ३, सू. ११**

इस संस्कार को मराठी भाषा में डोहाळ जेवण कहा जाता है। यह संस्कार आज भी दृग्गोचर होता है। उसका स्वरूप भिन्न हो गया है। उत्तम सन्तान प्राप्त्यर्थ गर्भवती की इच्छाये पूर्ण करें।

गर्भावस्था में कानों से मधुर संगीत सुनना आँखों से सत्य, शिव, सुन्दर एवं मनोहर प्राकृतिक दृश्यों को देखना चाहिए। रसना से घृतादि सात्विक पदार्थों का आस्वाद लेना चाहिए। नित्यप्रति वाटिकादि रमणीय स्थलों में भ्रमण करना चाहिए। माता जो सुनती है देखती है उसका गर्भस्थ बालक पर प्रभाव पडता है। महाभारत के चक्रव्यूह भेदन का उदाहरण मैं यहाँ प्रस्तुत करना उचित समझती हूँ।

जब सुभद्रा गर्भवती थी उस समय रात्री शयनकाल में अर्जुन सुभद्रा को युद्ध में चक्रव्यूह भेदन कैसे किया जाता है यह बता रहे थे। चक्रव्यूह का भेदन करके अन्तः प्रवेश तक का वृत्तान्त सुभद्रा ने सुना और सुनते सुनते वह निद्रा देवी की अंकशायिनी हो गई। उस समय गर्भस्थ बालक अभिमन्यु अपनी माता के कानों से चक्रव्यूह भेदन विधि सुन रहा था। माता के निद्रिस्त हो जाने पर चक्रव्यूह से बहिर्निस्सरण विद्या वह नहीं सुन पाया। यह कहा जाता है कि महाभारत के युद्ध में वीर अभिमन्यु चक्रव्यूह भेदकर अन्दर चला गया परन्तु बहार आने की कला उसे अवगत न होने के कारण वह मारा गया। यह उदाहरण हमें यह सन्देश दे रहा है कि माता के सभी क्रियाकलापों का प्रभाव गर्भसथ बालक पर पडता है इसीलिए उसकी कोई अभिलाषा अपूर्ण न रहे यह ध्यान रखना कौटुम्बिक धर्म है।

(सुश्रुतशरीस्थान सूत्र २३, २४)

प्राचीनऋषियों ने ये संस्कार समस्त विश्व के लिए निश्चित किये थे।

सीमन्तोन्नयन संस्कार की विशेषता यह है कि इस संस्कार के समय पति अपनी पत्नी के बालों में तेल लगाकर कंधी करता है। जिससे सम्मान मिलता है और पति के इस प्रीतियुक्त कार्य से पत्नी का मन प्रसन्न होता है। दोनों की प्रीति से आत्मीयता से गृहस्थजीवन स्वर्ग बन जाता है।

४. जातकर्म संस्कार :

बालक के जन्म के पश्चात् उसके सभी अंगाऐं को कवोष्ण जल से सम्यक् धोकर कोमल वस्त्र से पोंछकर नये वस्त्र धारण कराके मधु एवं घृत से सोने की श्लाका लेकर उसकी जिह्वा पर ओम् यह शब्द लिखें ऐसा विधान है परन्तु बालक की जिह्वा पर ओम लिखने तक वह स्थिर नहीं रह सकता दूसरी बात यह है कि श्लाका से उसे हानि भी हो सकती है अतः किञ्चित मधुमिश्रित घृत चखाना सर्वोत्तम है।

सम्प्रति आधुनिक वैद्यकशास्त्र सेएक नई विचारधारा सामने आई है। बालक को जन्म के पश्चात् तत्काल माता का दुग्धपान कराना चाहिए। यह विचार समय के साथ उचित है इसका स्वागत एवं आचरण होना चाहिए। अब मधुघृत का स्थान माता के दुग्ध ने लिया है। माता का दूध अमृत तुल्य माना गया है अतः इस आधुनिक विचार को स्वीकार करना हमारा धर्म है। माता के दुग्ध से बालक की रोग प्रतिरोधक शक्ति बढती है। **महर्षि दयानन्द सरस्वती** ने कहा है। **देश, काल एवं परिस्थिति के अनुसार किसी भी कार्य में लाभदायक उचित परिवर्तन कर लेना चाहिए**

पुराणमित्येव न साधु सर्वम्

न चापि सर्वं नवमित्यवद्यम्

बालक के मुखचुम्बन का निषेध

बालक के मुख का चुम्बन नहीं लेना चाहिए क्योंकि चुम्बन से संसर्ग जन्य रोग की सम्भावना रहती है। अतः ऋषियों ने ललाट माथा सूँघने की विधि प्रचलित की थी। मेरा यह

मत है कि केवल बीमार व्यक्ति को बालक के मुख का चुम्बन नहीं लेना चाहिए। स्वस्थ व्यक्ति के लिए यह विधान नहीं होना चाहिए। बालक माता पिता तथा सभी परिजनों को आनन्द देता है। इस आनन्द के कारण वे बालक का केवल मुख ही नहीं अपितु हाथ पैर आदि सभी अंगो का चुम्बन लेते हैं। इस अपूर्व आनन्द से उन्हें वंचित करना उचित नहीं हैं।

सुखपूर्वकप्रसव :

यजुर्वेद के एक मन्त्र में सुखपूर्वक प्रसव का उल्लेख दृग्गोचर होता है ।

एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणासह यथायं वायुरेजति यथा समुद्र एजति। एवायं दशमास्यो अस्त्रज्जरायुणासह (यजुर्वेद अ ८ मं. २८ (संस्कार चन्द्रिका पृ.क्र.२७६)"[३७]

इस मन्त्र का आशय यह है कि पीड़ा रहित प्रसव हो अतीव शान्तिपूर्वक । इससे यह ज्ञात होता है कि वैदिक काल में पीड़ा रहित प्रसव हेतु विविध साधन एवं औषधियाँ उपयोग में लाई जाती थीं। उनका कुशलवैद्यों द्वारा प्रयोग किया जाता था। आज भी अपामार्ग नामक वनस्पति सुखपूर्वक प्रसव के लिए उपयोग में लाई जाती है। यदि अपामार्ग की जड़ को गर्भवती की नाभि पर या कमर में बांध दिया जाए तो शल्य रहित एवं पीड़ा रहित प्रसव सम्भव है। इतना ध्यान रखना आवश्यक है कि प्रसव के उपरान्त तत्काल उसे हटाया जाये अन्यथा अतिरक्त स्राव की सम्भावना रहती है। इस वनस्पति पर संशोधन करके उसे उपयोग में लाना आज वैद्यकशास्त्र में आवश्यक है जिससे स्वास्थ्य एवं वित्तहानि दोनों से मुक्ति मिल सकती है।

वेदों में स्तनपान का विधान

यजुर्वेद के एक मन्त्र में स्तनपान के विषय में अतीव सुन्दर उल्लेख मिलता है।

१. **ओं इमं स्तनमूर्जस्वन्तं धयापां प्रपीनमग्नेसरिरस्य मध्ये।**

उत्संजुषस्व मधुमन्तमर्वन्त्समुद्रियं सदनमाविशस्व।।(यजर्वेद अ. १७ मं. ८७,सं.चं. पृ. २८६)"[३८]

अपने शिशु को पृथ्वी अन्तरिक्ष अर्थात् पृथ्वी से लेकर परमाणु तक सभी विद्याओं का विशेषज्ञ बनाने हेतु स्तनपान अवश्य कराना चाहिए। आधुनिकता के चक्र में फँसी कुछ माताएँ अपने सौन्दर्य के नष्ट होने के भय से अपने शिशु को अपना दूध नहीं पिलाती, यह उचित नही है। क्या अपने बालक से अधिक प्रिय इस संसार में अन्य कुछ हो सकता है यदि नहीं तो अपना दुग्धामृत अपने शिशु को अवश्य पिलाइये यह मातृधर्म है। इस धर्म का पालन सभी माताओं को करना चाहिए।

'ऋग्वेद में भीएक मन्त्र मिलता है

ओं यस्ते स्तन : शशयो यो मयोभुर्योरत्नधा वसुविद्यःसुदत्रः

येन विश्वा पुष्यसिवार्याणि सरस्वति तमिह धातेव कः ।।

(ऋग्वेद- मण्डल १) सूक्त १६४/ मन्त्र ४९ (सं.चं. प.२८६)"[३९]

हे माता! तेरा कल्याणकारक, स्वास्थ्यवर्धक, शक्तिवर्धक, मधुर दुग्धामृत अपने पुत्ररत्न को अवश्य पिला कर उसका अधिकार उसे प्रदान करके मातृधर्म निभा।।

प्रसव विषयक चरक का उपदेश

चरकसंहिता शरीरस्थान अध्याय ८ के ७५ वें सूत्र में लिखा है कि नवममास आरम्भ होने से पूर्व ही सूतिकागृह प्रसूतिस्थान बनाना चाहिए और वह अत्युत्तम स्थान पर जहाँ कूडा, कंकर आदि न हो, रूप, रस, गंन्धयुक्त पवित्रस्थान हो। शय्या कोमल सुन्दर सुगन्धित हो।

इसका अभिप्राय यह है कि प्रसूता माता के लिए सुन्दर दृश्ययुक्त जहाँ स्वच्छ वायु का अवागमन, मंगलमयवातावरण हो ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए। जिससे माता और बालक स्वस्थ एवं प्रसन्न रहें। कितने मनोवैज्ञानिक विचार थे ऋषियों के इसलिए मैथिली शरणगुप्त ने भारत भारती नामक पुस्तक में लिखा है।

शैशव दशा में देश सारे जिस समय सब व्याप्त थे,

निःशेष विषयों में तभी हम प्रौढता को प्राप्त थे

संसार को पहिले हमीने ज्ञान भिक्षा दान की,

आचार की व्यापार की व्यवहार की विज्ञान की।।(भारत भारती अतीत खण्ड)

जातकर्म संस्कार में दो विभाग विशेष है

१. **प्रथम सुखपूर्वक प्रसव और बालक माता की सम्यक् रक्षा।**
२. **द्वितीय बालक के शारीरिक रक्षण के साथ उसमें सुसंस्कारों का बीज बोना भी आवश्यक है जिससे उसका जीवन धन्य हो जाये।**

इस संस्कार के विषय में पारस्कर गृह्यसूत्र, गोभिलीय गृह्यसूत्र, आश्वलायन गृह्यसूत्र, शौनक गृह्यसूत्र इन सबका एक ही मत है।

५. नामकरण संस्कार

भारतवर्ष में यह पावन परम्परा सृष्टि के आरम्भ से है। किसी भी संस्कार से पूर्व शुभकार्य से पूर्व अग्निहोत्र करना। अग्निहोत्र वेदों का प्राण है। उसकी रक्षार्थ वेदों से, संस्कारविधि में, संस्कार के लिए पारस्कर गृह्यसूत्र गोभिलीय गृह्यसूत्र, आश्वलायनगृह्यसूत्र, शौनकगृह्यसूत्र, कत्यायनगृह्यसूत्र, आपरस्तम्बधर्मसूत्र आदिग्रन्थोंसे प्रत्येक संस्कार के लिये पृथक् पृथक् मन्त्रों, सूत्रों का चयन किया गया है।

नामकरण संस्कार के विषय में सस्कार विधि में कहा गया है कि जिस दिन बालक का नामकरण करना हो उस दिन अत्यन्त प्रसन्नता से इष्ट मित्रादि को आमन्त्रित करके, यथावत् सत्कार करके, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण ईश्वरस्तुति प्रार्थनोपासना आदि मन्त्रों से अग्निहोत्र करके माता बालक को लेकर उत्तम आसनपर बैठे और पिता इस प्रकार प्रश्न पूछे

कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि को नामासि - (यजुर्वेद अ. २० मन्त्र २९)"[४०]

यजुर्वेद का यही आशय किञ्चित् भिन्नता से मैत्रायणी ब्राह्मण में व्यक्त हुआ है

कोऽसि कतमोऽस्येषोऽस्यामृतोऽसि। आहस्पत्यं मासं प्रविशासौ।

(मैत्रायणी ब्राह्मण १/५/२४)"[४१]

प्रश्न : तू कौन सा है मरण धर्मा या अमृत धर्मा

उत्तर : तू आत्मस्वरूप है, अमरधर्मा है। ईश्वर तुझे स्वस्थ, सम्पन्न दीर्घायु प्रदान करे।

नाम किस प्रकार के हों

यदि पुत्री हो तो एक तीन अथवा पाँच अक्षरोंवाला नाम हो जैसे : श्री यशोदा, सुखदा, सुमेधा, समिधा, सुरभि तेजस्विनी सरस्वती, सुनीति आदि। यदि पुत्र हो तो जयदेव, सुखदेव ओमदेव सोमदेव, देवदत्त, राम, कृष्ण आदि चार या दो वर्णोंवाला नाम हो। नामकरण संस्कार के पश्चात् संस्कार में आये हुए मित्र, आप्तेष्ट तथा शुभचिन्तक बालक को आशीर्वाद दें।

३. हे बालक ! त्वमायुष्मान्, वर्चस्वी तेजस्वी, श्रीमान् भूयाः ।

हे बालक । तू दीर्घायुषी, वर्चस्वी, तेजस्वी, विद्यावान्, धर्मात्मा, यशस्वी, पुरूषार्थी, प्रतापी, परोपकारी एवं वैभवसम्पन्न बन सके ऐसा प्रयास कर। धन्य थे वे संस्कार विधायक ऋषि. जो मानव कल्याणार्थ बालकों को ११ वे १२ वें दिन से ही धृति का पाठ पढाते थे, कर्णमन्त्र देते थे मैं उन्हें शिरसा वन्दन करती हूँ जिन्होंने इतने पावन संस्कारों का विधान किया है।

भारतवर्ष में जब तक नामकरण संस्कार का उचित महत्त्व समझा जाता था तब तक राम, कृष्ण, युधिष्ठर, भीमार्जुन कर्ण जैसे तेजस्वी, धर्मात्मा, भीष्म जैसे दृढ प्रतिज्ञा करनेवाले पुरूष एवं गार्गी, मैत्रेयी, सुलभा, सीता सावित्री जैसी सन्तान पैदा होती थीं। आज भी जो लोग इन संस्कारों का महत्त्व जानते हैं और तदनुकूल आचरण करते हैं उनके घर में सदाचारी, महाव्रती, सुशील, मितभाषी, मधुभाषी विद्यावान पुत्र पुत्रियों का जन्म होता है। अपना नाम सार्थक करने हेतु, अपना और विश्वका हित करने हेतु अपना सर्वस्व न्यौछावरकर देते हैं। यही विश्वधर्म है तभी तुकाराम महाराज ने कहा है .

कुळी कन्या पुत्र होती जे सात्विक

तयाचा हारिख वाटे देवा।।(तुकाराम अभंग गाथा)

६- निष्क्रमणसंस्कार :

निष्क्रमण संस्कार में बालक को घर से बाहर जहाँ का वायु शुद्ध हो वहाँ का भ्रमण कराना होता है। समय एवं पर्यावरण सब उत्तम हों तभी बालक को बाहर ले जाना चाहिए। चौथे मास में तो अवश्य भ्रमण करायें।

प्रमाण :

चतुर्थे मासि निष्क्रमणिका सूर्यमुदीक्षयति तच्चक्षुरिति (आश्वलायनगह्यसूत्र)

चतुर्थमास में सूर्यरश्मियों के दर्शन से बालकसूर्यसम तेजस्वी बनता है।

जननाद्यस्तृतीयो ज्योत्स्नस्तस्य तृतीयायाम्

पारस्कर गृह्यसूत्र संस्कारविधि पृ.६१"[४२]

जन्म से तीसरे मास की तृतीया का जो सूर्य प्रकाश होता है वह बालक को दिखाना आवश्यक है, जिससे बालक के नेत्र तेजस्वी एवं दृष्टि उत्तम होती है।

निष्क्रमण संस्कार के दो काल बताये गये हैं। एक जिस दिन बालक का जन्म हुआ हो उसके पश्चात तृतीय शुक्ल पक्ष की तृतीया एवं चतुर्थमास में जिस दिन बालक का जन्म हुआ हो उसी तिथि में यह संस्कार करना चाहिए। बालक को शुद्धवायु सूर्य चन्द्र का दर्शन कराना इस संस्कार का मुख्य उद्देश्य है। यजुर्वेद में उक्त इस कामना के साथ यह संस्कार करना चाहिए।

१. ओं तच्चसुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्।

पश्येम शरद शतं जीवेमशरदः शतं श्रृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्। (यर्जुद ३६, मन्त्र २४)"[४३]

संस्कार की समाप्तिपर : **त्वं जीव शरदः शतम् वर्धमान :**

अर्थात् हे बालक! तुम शत शरद ऋतुओं तक स्वस्थ जीते रहो। यह आशीर्वाद दें। तत्पश्चात् बालक के माता पिता संस्कार में आये हुए आप्तेष्टों का यथोचित सत्कार करके उन्हें विदा करें।

७ अन्नप्राशनसंस्कार :

अन्नप्राशन तभी करानाचाहिए जब बालक की शक्ति अन्न पचाने योग्य हो जाये।

प्रमाण :

३) षष्ठे मास्यन्न प्राशनं, घृतौदनं तेजस्कामः, दधिमधु धृतमिश्रितमन्नं प्राशयेत् (आश्वलायनगृह्यसूत्र तथा पारस्कर गृह्यसूत्र) सं. विधि पृ.६४"[४४]

(हरियाणा साहित्य प्रकाशन गुरूकुल झज्जर)

इन दोनों गृहयसूत्रों में छठे मास में यह संस्कार करना उचित है ऐसा कहा है। त्वमन्नपतिरन्नादो वर्धमानो भूया:

तुम अन्न पति होकर स्वादिष्ट अन्न का भक्षण करते हुए स्वस्थ एवं सुदृढ़ बनो ऐसा आशीर्वाद माता पिता तथा अन्य वृद्ध जन दें।

८.चूडाकर्मसंस्कार (केशकर्तन)

आठवाँ संस्कार चूडाकर्म है। जिसे केशकर्तन संस्कार भी कहते हैं।

(मराठी में जावळ काढणे) आश्वलायनगृह्यसूत्र के अनुसार यह संस्कार तृतीय वर्ष में करनाचाहिए: **तृतीये वर्षे चौलम्**

(आश्वलायन गह्यसूत्र)

गोभिलीयगृह्यसूत्रानुसार एकवर्ष में भी चूडाकर्म कर सकते हैं।

प्रमाण :

१. सांवत्सरिकस्य चूडाकरणम् - गोभिलीयगृह्यसूत्र

(संस्काराविधि पृ.क्र. ६५)"[४५]

केशकर्तन के समय केशों को दर्भ के साथ पकडना चाहिए। दर्भ पवित्रता एवं शान्ति का प्रतीक होता है। केशकर्तन के पश्चात् बालक के शिर पर मक्खन या दधि लगाकर स्नान करायें इसका अभिप्राय यह है कि क्षौरकृत्य के पश्चात् बालक का शिर शान्त हो, उसे किसी प्रकार का कष्ट न हो क्योंकि नवनीत तथा दधि नरम होते हैं।**तत्पश्चात त्वं जीव शरदः शतम्** इस वचन सेसंस्कार में उपस्थित सभी जन बालक को आशीर्वाद दें।

९. कर्णवेधसंस्कार (कर्णच्छेद)

जन्म के तीसरे अथवा पाँचवे वर्ष में कर्णवेध संस्कार करने का विधान आश्वलायनगृहयसूत्र में है कर्णवेधो वर्षे तृतीये

पञ्चमेवा आश्वलायनगृह्यसूत्र

कर्णवेध करते समय बालक को दर्द न हो अतः उसका मन खिलौनों में लगा दें। कर्णवेध करते समय अधोलिखित मन्त्र का पाठ करें

४. ओं भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवाः भद्रं पश्येमाक्षभिर्य जत्राः ।

स्थिरैरंगैस्तुष्टुवाँसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः (यजुर्वेद २५ । मं.२१)"[४६]

रोगनिवारणार्थ एवं अलंकार धारणार्थ यह संस्कार किया जाता है। प्राचीन आर्य वैद्यों ने यह संस्कार रोग के बीज को बाल्यकाल में ही दग्ध करने हेतु प्रचलित किया है। यहाँ यह प्रश्न है कि वह कौनसा रोग है जिसके निवारणार्थ यह संस्कार किया जाता है इसका उत्तर सुश्रुतसंहिता चिकित्सास्थान अध्याय १९ के पाठ में बताया है। यह संस्कार

करने हेतु चरक, सुश्रुत आदि वैद्यक ग्रन्थों के जो विशेषज्ञ है उन्हें आमन्त्रित करना चाहिए। लेकिन आज ऐसा नहीं होता सामान्य सुवर्णकार से कर्णवेध किया जाता है ।

(संस्कारविधि पृ.क्र.७०)

रक्षाभूषणनिमितं बालस्य कर्णो विध्येत्

(सुश्रुत सूत्रस्थान अध्याय १६)

मुझे लगता है कि कर्णवेध संस्कार पाँचवे या सातवें मास में ही होना चाहिए क्योंकि उस समय बालक की त्वचा कोमल होती है जिससे अधिक वेदना नहीं होती है।

इति कर्णवेध संस्कार :

१०. उप नयनसंस्कार (यज्ञोपवीत संस्कार)

उप उपसर्गपूर्वक णीञ' = प्रापणे धातु से उपनयन शब्द निष्पन्न होता है। उप अर्थात् समीप नयन अर्थात ले जाना अथवा प्राप्त कराना। अपने पुत्र या पुत्री को शिष्य को गुरू के समीप पहुँचाना।

जिस दिन उपनयनकरना हो उस दिनप्रातः काल में पुत्र या पुत्री दोनों को स्नानादि कराके यज्ञ मण्डप में पिता याआचार्य मिष्टान्नादि का भोजन कराके वेदी के पश्चिम भाग में सुन्दर आसनपर पूर्वाभिमुख बैठायें और बालक बालिका का पिता भी पूर्वोक्त प्रकार से अपने अपने आसन पर बैठकर यथाविधि आचमन क्रिया करके पिता या आचार्य बालक के मुख से इस वाक्य का उच्चारण करायें :

ब्रह्मचर्यमागाम ब्रह्मचार्यसानि

(पारस्कर गृह्यसूत्र : का.२ क.२ सूत्र ६) वेदादिशास्त्रों को पढने हेतु मैं ब्रह्मचर्यव्रत धारण करता हूँ।

तत्पश्चात् :

ओं येनेन्द्राय बृहस्पतिर्वास : पर्यदधादमृतम्।

तेन त्वा परिदधाम्यायुषे दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे।।

इस मन्त्र को बोल के कन्या या कुमार को सुन्दर वस्त्र पहिनायें तत्पश्चात् बालक बालिका आचार्य के सन्मुख बैठे और यज्ञोपवीत हाथ में लेकर

ओ यज्ञोपवतीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्। आयुष्यमग्र्यं

प्रतिमुञ्चशुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः । यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्यत्वा यज्ञो पवीतेनोपनह्यामि। पारस्कर गृह्यसूत्र (कात्यायन गृह्यसूत्र क. २, सूत्र ११)

यज्ञोपवीत में तीन सूत्र होते हैं जो तीन ऋणों का स्मरण कराते हैं माता, पिता एवं गुरु इनकी आज्ञा का पालन करना सेवादि करना तथा अपने जीवन को सफल बनाना यही यज्ञोपवीत का मुख्य प्रयोजन है। माता पिता एवं गुरु सभी के होते हैं अतः निश्चित आयु में ही सभी का यज्ञोपवीत होना आवश्यक है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों का जो पृथक पृथक कहा है वह उचित नहीं है। शूद्र के लिए तो उपनयन का विधान ही नहीं है यह भी अनुचित है जब जन्म से किसी की जाति नहीं है तो यह पृथक्करण संस्कार में क्यों ? यज्ञोपवीत धारण करने का सबको समान अधिकार है। अन्यथा वर्णव्यवस्था जात्याश्रित हो जायेगी गुण कर्म स्वभावानुकूल नहीं।

इति उपनयनं संस्कार : ।

११. अथवेदारम्भ संस्कार :

उपनयनसंस्कार के साथ ही वेदारम्भ अर्थात् अध्ययन का आरम्भ किया जाता है। अध्ययन काल में कतिपय नियमों का पालन करना होता है वे नियम इस प्रकार हैं।:

१. अपोऽशान - भोजन से पूर्व शुद्ध जल का आचमन कर।

२. कर्म कुर - दुष्कृत्यों का त्याग करके सदैव सत्कार्य कर।

३. दिवा मा स्वाप्सी : दिन में शयन कभी मत कर।

४. क्रोधानृते वर्जय - क्रोध और मिथ्याभाषण कभीन कर।

५. नित्यं युक्ताहारविहारवान् विद्योपार्जने च यत्नवान् भव।

उचित आहार विहार करते हुए विद्यार्जन में यत्नशीलबन।

सुशीलो मितभाषी सभ्योभव - सुशील अल्पभाषी एवं सभ्य बन।

यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि, नो इतराणि। (विशेष उल्लेख)

यान्सस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि

(तैत्तिरीय उपनिषद प्र. पा. अनु. ७२)

७. **अत्यन्तं स्नानं भोजनं निद्रां जागरणं निन्दां लोभमोह भय शाकान् वर्जय**

अतिस्नान, अतिभोजन, अतिनिद्रा, अतिजागरण अन्यों की निन्दा, लोभ, मोह, भय आदि को छोड़कर कर एकाग्र चित्त होकर अध्ययनरत रहा कर ये आदेश पिता या आचार्य अध्ययनारम्भ पूर्व दिया करते थे जिसकी आज भी नितान्त आवश्यकता हे। यद्यपि २२ नियम इस संस्कार में दिये हैं किन्तु देशकाल को देखते हुए वर्तमान समय में सर्वत्र जिन का पालन किया जा सकता है उन्हीं ७ नियमों का उल्लेख किया गया है।

१२. अथ समावर्तनसंस्कार : (दीक्षान्तसमारोह):

विद्यार्जन के पश्चात् छात्र कृतज्ञता प्रकट करता है तथा आचार्य शुभाशीर्वाद देकर छात्र को द्वितीय आश्रम में प्रवेश करने की अनुमति देकर विदा करते हैं, यह संस्कार आज भी महाविद्यालयों में विश्वविद्यालयों में होता है केवल उसका स्वरूप कालानुसार परिवर्तित हुआ है।

दीक्षांत समारोह का प्राचीन स्वरूप

वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति। सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्। मातृदेवो भव। पितृ देवो भव। आचार्य देवो भव।

अतिथि देवो भव। श्रद्धाया देयम्। श्रिया देयम्। सत्यान्न प्रमदितव्यम् धर्मान्न प्रमदितव्यम् । कुशलान्न प्रमदितव्य। भूत्यै न प्रमदिव्यम्। स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् **(तैत्तिरीय उपनिषद् उप. अंक पृ.क्र.३३५,३६,३७)**"[४७]

समाजव्यवस्था

१. वर्णव्यवस्था ।

२. आश्रमव्यवस्था । यज्ञसंस्कृति

३. संस्कार परम्परा

४. नारी शिक्षा।

५. नारी धर्म।

६. वेदों में कन्या।

७. वेदों में पत्नी।

८. वेदों में माता।

९. विवाह प्रथा।

१०. बहुविवाह निषेध।

११. नारी स्वातन्त्रता।

१. वेद में पत्नी : कन्या जब वधू बनकर अपने पति के गृह में प्रवेश करती थी तब उसका कार्य अपने सास ससुर की सुश्रुषा और गृहकार्य का निरीक्षण एवं सम्यक् सम्पादन था। गृहकार्य के क्षेत्र में वह पूर्ण प्रभुता सम्पन्न होती थी। वैदिक काल में नारी केवल गृह सेविका नही थी वह अपने घर की सम्राज्ञी कही जाती थी।

साम्राज्ञीश्वशुरे भव साम्राज्ञीश्वश्रवां भव ।

ननान्दरि साम्राज्ञीभव साम्राज्ञी अधिदेवृषु।। (ऋग्वेद १०,८५,४६)

हे वधू। तू सास, ससुर, ननन्द तथा देवर के मध्य राजरानी का रूप प्राप्त कर। इन सब के मध्यराजरानी बनने हेतु अपनी मधुमती वाणी कार्यकुशलता, कर्तव्यदक्षता, मधुमय वातावरण बनाना आवश्यक होता है अपनी बहन को बिदा करते समय उसकी सखियों ने एक सन्देश दिया है जिसके पालन से घर स्वर्ग बन जाता है।

नव वधू को सन्देश :

शुभसदाचार कर्तव्य प्यार से

घर को स्वर्ग बनाना

झूठमूठगहनों से प्यार न बढाना।

१. सबसे सजीला गहना प्रेम से रहना,

कितने भी कष्ट आएँ हँस हँस के सहना,

ऐसा गहना किसने पहना शोभा का क्या कहना

२. भावानुराग भरे बिन्दीसुहाग की

पैरों में पायल तेरे श्रम और त्याग की

मीठी वाणी की अनुरागा सबको है सुनाना

३. तुम्हारी हो वाणी ऐसी जैसे हो मीठा

तुम्हारे व्यवहार से कोई न हो रूठा

बहिना मेरी बडे जनों की सेवा करती रहना झूठ

वैदिक युग में पत्नी को बहुत सम्मान प्राप्त था। वे पत्नी को ही घर मानते थे।

न गृहं गृहमित्याहु गृहिणीर्गृहमुच्यते।

गृहं हि गृहिणीहीनं श्मशान तुल्यं मतम्।।

बिना नारी के घर का अस्तित्व कहाँ, और घर के अभाव में गृहस्थ धर्म गृहस्थाश्रम की कल्पना ही कैसे की जा सकती है? इस विचारधारा में गृहिणी गृहस्थ धर्म की प्रतिष्ठा का एक मात्र सहाय्यक आधार थी। पति पत्नी दोनों का सामूहिक नाम ही दम्पती है। इसका अर्थ है घर का स्वामी एवं स्वामिनी।'ऋग्वेद में पत्नी को पति का अर्धांग कहा है। तैतिरीय संहिता का भी यही मन्तव्य है।शतपथ ब्राह्मण में भी इसकी व्याख्या करते हुए पति पत्नी को दाल के दो दलों की भाँती माना गया है। बृहदारण्यक उपनिषद् में भी यही शब्द है। इस प्रकार वे दोनों मिलकर एक मन होकर सभी कार्य करते थे। पत्नी के बिना पति धार्मिक कृत्य सम्पादन में असमर्थ था, उसे यज्ञ करने का अधिकार नहीं था :

अयज्ञो वा एष योऽयमपत्नीक:
तैत्तिरीय ब्राह्मण २, २, २, ६
अथो अर्धो वा एव आत्मन: यत् पत्नी
(तै, ब्रा. ३, ३, ३, ५)

समाज में नारी का स्थान :

सामाजिक जीवन में भी नारियों को सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त था। यह उन्मुक्त प्रेम का युग था। सवननाम के सार्वजनिक उत्सवों में महिलाएँ भी भाग लेती थीं, वैदिक संस्कृति में महिलायें पुरूषों के ही समान उच्च शिक्षा प्राप्त करती थी। वेदादि शास्त्रों में पारंगत होने के अतिरिक्त वे ऋचाओं की रचना भी करती थीं। वेद के साक्ष्य के अनुसार गार्गी, मैत्रेयी, विश्ववारा, लोपामुद्रा, सरस्वती, यमी, अपाला और घोषा ऋग्वेद की प्रतिभाशाली कवयित्रियाँ हैं। समाज में एक पत्नीवृत की मर्यादा मान्य थी। बहुपत्नीत्व की प्रथा अमान्य थी कन्या एवं कुमार दोनों को ही अपना जीवन साथी चुनने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी जिसे स्वयंवर कहा जाता था।

वेदमें माता :

पत्नी रूप का चरम सौन्दर्य उसके मातृत्व में होता है। यही नारी जीवन की वह अवस्था है जहाँ उसकी शक्ति और महत्ता प्रस्फुटित होती है तथा उसका निसर्ग सिद्ध कोमल स्वरूप प्रत्यक्ष का विषय बनता है। वैदिक वाङ्मय में उसके इस स्वरूप को मातृ शब्द से सम्बोधित किया गया है अवश्य ही मातृ शब्द से उसका महत्त्व प्रतीत होता है।

ऋग्वेद के अनुसार माता सर्वाधिक घनिष्ठ और प्रिय सम्बन्धी है। भक्त परमात्मा को पिता की अपेक्षा माता कहकर अधिक सन्तुष्ट होता है। माता पिता के समास में माता को प्रथम स्थान दिया है। मात च पिताच मातापितरौ।

पितरौ शब्द में तो वह स्वास्तित्व को मिटाकर भी विद्यमान है। यह समर्पण की सुन्दर प्रतिमा है जो सब के आनन्द को अपना आनन्द मानती है। ऐसा औदार्य वात्सल्य, मांगल्य माता में ही हो सकता है अन्यत्र नहीं।वेद ने माता को गुरु माना है। अथर्ववेद में आदेश है कि माता के मन के अनुकूल बनो : मात्रा भवतु सम्मना :

शांखायन धर्मसूत्र के अनुसार उपनयन संस्कार के समय ब्रह्मचारी को सर्वप्रथम अपनी माता से भिक्षा माँगने का विधान है, इससे माता का पिता से अधिक अधिकार एवं उत्कर्ष सिद्ध होता है। वैदिक युग में माताएँ ही कन्याओं का श्रृंगार करती थीं। कन्याओं के विवाह में माताओं के अधिकार अधिक होते थे जिसे हम वर्तमान में भी देख सकते हैं।

वेद में विवाह प्रथा :

वेदकालीन समाज में विवाह की प्रथा सुव्यवस्थित थी। विवाह एक पुण्य संस्कार था आज भी है। वैदिक विवाह पद्धति से स्पष्ट है कि उस समय युवावस्था में ही विवाह होते थे। बालविवाह के संकेत नहीं मिलते। वधू को दिया जानेवाला यह आशीर्वाद भी वह सास आदि पर "साम्राज्ञी भव" किसी बालिका वधू के लिए चरितार्थ और उपयुक्त नहीं हो सकता।

बहुविवाह :

आर्यों में एक विवाह ही प्रशस्त था। बहुविवाह सर्वथा वर्ज्य था। तथापि अपवादरूप ऐसे विवाह भी होते थे। ऐसे विवाह आदर की दृष्टि से नहीं देखे जाते थे। समाज में उन्हें सम्मान नहीं मिलता था। यज्ञादि कर्म में सदा पत्नी शब्द का एकवचन में प्रयोग हुआ है जो एक विवाह की वैधता का स्पष्ट संकेत है। अनेक विवाह परम्परा में कलह का समावेश स्वयं ही हो जाता है जिस से गृहस्थ की सुख, शान्ति आह्लाद सब कछ धूलीसात् होकर उस घर का सर्वनाश होता है जहाँ कलह है वहाँ विनाश निश्चित है।

कलहन्तानि हर्म्याणि :

घर का अन्त कलह से होता है अत: वेद बहुविवाह के विरोधक एवं एक विवाह के समर्थक एवं प्रशंसक है।

सहशिक्षा :

उपनिषदों के युग में सहशिक्षा शिक्षा का प्रचार बना रहा। महिला विद्यार्थिनी दो प्रकार की होती थी।

ब्रह्मवादिनी एवं सद्योदवाह :

ब्रह्मवादिनी आजीवन धर्मशास्त्रों एवं दर्शनशास्त्रों का स्वाध्याय करती थी, सद्योदवाहा वर्ग की नारियाँ कम से कम ८ वर्ष तक संस्कारों की विधि तथा वैदिक ऋचाओं एवं मन्त्रों की उच्चारणविधि सीखकर गृहस्थ जीवन को अपनाती थीं । उपनिषद् युग में दार्शनिकों कीसभा में विदवत्तापूर्ण विषयों पर भाषण देनेवाली गार्गी एवं ब्रह्म के उच्चतम ज्ञान का साक्षात्कार करनेवाली मैत्रेयी के समान विदुषी नारियों के उदाहरण उपलब्ध हैं।

वेदानुगामी आर्यसमाज एवं नारी शिक्षा :

नारीशिक्षा में आर्यसमाज का योगदान :

आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती जीने : स्त्री शूद्रो नाधीयताम् का खण्डन किया। सन् १८७५ में मुम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की। आर्य समाज ने नारी

शिक्षा तथा उसकी दशा को सुधारने में भगीरथ प्रयास किया है। कन्यागुरूकुल तथा स्त्री शिक्षा के लिए अनेक संस्थायें खोली गईं। कार्यकर्ताओं ने घूम घूमकर नारीशिक्षा तथा समानता का प्रचार किया और प्रेरणा दी है। आज भी आर्यसमाज यह कार्य पूरी लगन से निरन्तर कर रहा है। कितनीही विदुषी बहिने आज आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत लेकर कन्याओं की शिक्षा में तत्पर हैं। कन्या गुरूकुल नरेला की स्नातिकाएँ आदरणीया डॉ सुमेधा जी एवं डॉ. सुकामा जी गुरूकुल शिखापूरम् में अथक परिश्रम के साथ कन्याओं को वेदाध्यापन कर रही हैं। गुरूकुलों में केवल अध्ययन ही नहीं होता अपितु छात्र छात्राओं का शारीरिक मानसिक बौद्धिक, सामाजिक, नैतिक तथा वैयक्तिक विकास होता है। आर्य समाज ने नारी जीवन के एक नये युग का आरम्भ किया। नारी विषयक असमानताओं और सतीप्रथा जैसी कुरीतियों पर आर्यसमाज ने कुठाराघात करके उन्हें जड़ से उखाड़ने हेतु साहित्य लिखा और आन्दोलन भी किये नारी को धार्मिक अधिकार प्रदान करने में आर्यसमाज का सर्वाधिक प्रयास रहा है और सम्प्रति निरन्तर चल रहा है और चलता ही रहेगा।

वेदों वाले ऋषिपर तेरी शान सा सारी दुनिया में कोई बसर न मिला।

तूने दरिया बहाया है जो ज्ञान का वह प्रलय तक निरन्तर बहेगा यहाँ।

कोई ताकत उसे रोकसकती नहीं दिन प्रतिदिन यह बढता रहेगा यहाँ।

नारी शिक्षा :

वेद में माता या पत्नी के जो कर्तव्य गृहसंरक्षण के बताये गये हैं उनके विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि वेदकालीन नारी सुशिक्षित थी। उसने नानाविद्याओं को आत्मसात् किया था। अनेक कलाओं में निपुणता भी उसने प्राप्त की थी। पुरुषों के तुल्य महिलाएँ भी उच्चशिक्षा प्राप्त करती थीं यह तथ्य नारी के लिए प्रयुक्त विशेषणों एवं उदाहरणों से पुष्ट होता है। तिस्रो देवी इडा सरस्वती मही

इड - स्तुतौ धातु से टाप प्रत्यय लगाने पर यह शब्द सिद्ध होता है

इसका अर्थ है प्रशंसनीय गुण, कर्म, स्वभावयुक्त जिसका प्रत्येक कार्य प्रशस्य है जो गुणों की खान है मधुमय व्यवहार युक्त है। ये विशेषण किसी अशिक्षित नारी के लिए प्रयुक्त नहीं होते।

२. सरस्वती : सरः ज्ञानं तद्वती यह शब्द सृ=गतौ धातु से निष्पन्न होता है जितनी भी गत्यर्थक धातुएँ हैं वे सभी ज्ञर्थक हैं ये ये गत्यर्थाः ते ते ज्ञान गमन प्रात्यर्थाः जो ज्ञानप्राप्त्यर्थ गतिशील होकर पूर्ण विदुषी बनती थीं उन्हें सरस्वती कहा जाता था। आज भी सरस्वती शब्द विद्या के लिए ही प्रयुक्त होता है।

३ मही - मह = पूजायाम् धातु से मही शब्द निष्पन्न होता है पूजा ज्ञान की ही होती है अतः यह विशेषण भी नारी की शिक्षा का द्योतक है।

ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त १५९, मन्त्रांश २ में नारी ने आत्मगौरव पूर्वक घोषणा की है कि मैं ज्ञानवती हूँ, घर की स्वामिनी हूँ तथा शत्रुनाशिका हूँ **अहं केतुरहंमूर्छाहमुग्रां विवाचनी**।

यह उदाहरण यह भी सिद्ध करता है कि नारी शिक्षा के साथ अर्थात् शास्त्र ज्ञान के साथ अस्त्रशस्त्र में भी कुशल थी इसीलिए वह घोषणा करती है कि मैं शत्रुनाशिका हूँ। ऋग्वेद मण्डल ५ सू ४१, मन्त्र ७ में सुशिक्षित नारी के लिए विदुषी पूर्ण विद्यासम्पन्न शब्द का प्रयोग मिलता है। उषासानक्ता को उस विदुषी नारी के समान यज्ञ करने का उपदेश दिया है।

उषासानक्ता विदुषीव विश्वमाहा वहतो मर्त्याय यज्ञम्।

यह सृष्टि एक यज्ञ है, अतः हे विद्यावती! इस यज्ञ की ब्रह्मा संचालिका बनकर कुशल शासन करो, ऐसा उपदेश विदुषी नारी को दिया गया है। उषासानक्ता शब्द बड़ा ही मार्मिक और गूढार्थ समाये हुए है। वह बता रहा है कि उषा की भाँति ज्ञान प्रकाश लेकर प्रसन्न एवं रमणीय बनकर कार्य करो। नक्ता निशासम शीतल सबको सुखमय बनानेवाली

बनो। निशादेवी निद्रा के माध्यम से सबको आराम देती है वैसे हे विदुषी! तुम भी इस सृष्टि को आह्लादमय बनाओ। सुशिक्षा के कारण ही ऋग्वेद में अनेक ऋषिकाओं का उल्लेख मिलता है, जिन्होंने मन्त्रदर्शन में ऋषियों की समकक्षता प्राप्त की थी। उनमें आत्रेयी, अपाला, घोषा, काक्षीवती वागाम्भृणी, रात्रि, भारद्वाजी, श्रद्धा, कामायनी, शची, पौलोमी, लोपामुद्रा, रोमशा के नाम उल्लेखनीय हैं। वेद कालीन समाज पृ.१४५)

बृहदारण्यक उपनिषद के अनुसार गार्गी ने जनक की राज सभा में याज्ञवल्क्य ऋषि से ब्रह्मविद्या के विषय में ऐसे गम्भीर प्रश्न पूछे थे कि उन्होंने यह कहकर उससे बचाव किया कि तुम ऐसे विषय में प्रश्नकर रही हो जिसके विषय में अधिक नहीं पूछना चाहिए। ऋग्वेद मण्डल १४,१,१२ में नारी को ज्ञानयुक्त वक्तृता देने का कथन है। विदथमा वदासि इसके अतिरिक्त नारियाँ पाककला, बुनना कातना, धनुर्विद्यादि कलाओं का ज्ञान भी प्राप्त करती थी। इन सभी उदाहरणों से स्पष्ट होता हे कि वैदिककाल में महिलाएँ वर्तमान समय की भाँति उच्च शिक्षित थीं।

नारी धर्म :

दुर्जनों का संग न करना, व्यर्थ इधर उधर नहीं घूमना, असमय में न सोना, दूसरो के घर में निवास न करना।

नारी का महत्त्व :

युग युग का इतिहास नारी के गौरव को प्रतिष्ठित करता रहा है। मानव जीवन का प्रत्येक क्षेत्र नारी के अभाव में अपूर्ण है। नारी शक्ति है, प्रेरणा है तथा जीवन की आवश्यक पूर्ति है। वह त्याग बलिदान, सेवा, समर्पण और वात्सल्य की प्रतिमूर्ति है। अपने अलौकिक सौन्दर्य तथा असंख्य मानवीय गुणों के कारण विद्वानो, कलाकारों और कवियों का आकर्षण तथा साहित्य का प्राण रही है।

नारी की प्रकृति से तुलना :

नारी उस वृक्षतुल्य है जो फल देना तो जानती है किन्तु उसका स्वयं आस्वाद नहीं लेती, नारी उस नदीसम है जिसके जलसे अन्य प्यासे अपनी प्यास बुझा लेते हैं पर वह स्वयं प्यासी रह जाती है।नारीशक्ति पुरुष शकितवान् है। शक्ति के अभाव में शक्तिवान् की कोई महत्ता नहीं। शिवा के अभाव में शिव शवतुल्य है । अपनी इन्ही महत्ताओं के कारण भारतीय समाज में नारी को सर्वोपरि माना गया है। नारी समाज के स्तम्भों में मुख्य स्तम्भ है। नारी के बिना विश्व की कल्पना खपुष्पवत् है।

नारी की कर्म कुशलता :

भारतीय समाज वरदान चाहता है कि वह अपनी माता के हाथों से ही भोजन करे। आज जिस समाज में पुरुष द्वारा उपार्जित धन का विनियोग नारी समाज द्वारा किया जाता हे, उस समाज की जीवनचर्या सत्यम्शिवम् सुन्दरम् का मानो त्रिवेणी संगम है।

जब तक मात्र नारी को संयम का उपदेश देकर पुरुष स्वयं असंयमित रहेगा तब तक भारतीय समाज का विकास नहीं हो सकेगा अतः पुरुषों को भी नारी सम संयम नितान्त आवश्यक है।

मानव जीवन का प्रत्येक क्षेत्र नारी के अभाव में अपूर्ण है। सत्य तो यह है कि जब तक नारी का उत्थान नहीं होगा, तब तक देश और समाज की उन्नति भी असम्भव है। एक नारी की महानता समस्त परिवार को महान् बना देती है।

जय शंकर प्रसाद के शब्दो में :

नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत पग तल में
पीयूष स्त्रोत सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में।।

अब वह समय आ गया है कि नारी विषयक सभी प्रकार की कुप्रथाओं को समाप्त किया जाए, यह विश्वधर्म है, तभी स्वस्थ समाज का निर्माण सम्भव है।

संदर्भ सूची :

१. भागवद्गीता तृ.३.श्लो.१४

२. भागवद्गीता तृ.३.श्लो.०९

३. भागवद्गीता तृ.३.श्लो.१०

४. भागवद्गीता तृ.३.श्लो.११

५. भागवद्गीता तृ.३.श्लो.१२

६. भागवद्गीता तृ.३.श्लो.१३

७. शतपथ ब्राह्मण -१-७-३-५

८. ऋग्वेद २-३५-७ महर्षि दयानन्द सरस्वती,ऋग्वेद हिन्दी भाष्य

९. अथर्ववेद ५-२८-३, क्षेमकरणदास त्रिवेदी, अथर्व. हिन्दी भाष्य

१०. अथर्ववेद ४-२१-६, क्षेमकरणदास त्रिवेदी अथर्व. - हिन्दी भाष्य

११. स्वस्त्यायन स्मारिका सविता आर्या पृ.८२,८३

१२. मनुः २-२२६, पं. तुलसीराम स्वामी , मनु, भाषानुवाद

१३. मनुः अ.२-२२६, पं. तुलसीराम स्वामी , मनु, भाषानुवाद

१४. मनुः अ.२-२२८, पं. तुलसीराम स्वामी , मनु, भाषानुवाद, पृ. ११५

१५. मनुः २-२२९, पं. तुलसीराम स्वामी , मनु, भाषानुवाद, पृ. ११६

१६. मनुः २-२३, पं. तुलसीराम स्वामी , मनु, भाषानुवाद, पृ. ११६

१७. अथर्ववेद १०-६-४, क्षेमकरणदास त्रिवेदी, अथर्व हिन्दी भाष्य

१८. अथर्ववेद १-६-५, क्षेमकरणदास त्रिवेदी, अथर्व. हिन्दी भाष्य,पृ.२७६

१९. अथर्ववेद १५-११-१, क्षेमकरणदास त्रिवेदी, अथर्व. हिन्दी भाष्य,पृ.७४५

२०. अथर्ववेद १५-११-२, क्षेमकरणदास त्रिवेदी, अथर्व. हिन्दी भाष्य,पृ.७४६

२१. पशुयज्ञ मिमांसा डॉ. कृष्णा महाभारत शा.प.२६३,६

२२. गीता - १८-४२

२३. गीती-१८-४४

२४. उपनयन सं., महर्षि दयानन्द स. विधि., पृ.४१५

२५. मनु. अ. ६-९० पं. तुलसीराम स्वामी मनुभाषानुवाद, पृ. २८९

२६. मनु. अ. ६-९१ पं. तुलसीराम स्वामी मनुभाषानुवाद, पृ. २९०

२७. मनु. अ. ६-२ पं. तुलसीराम स्वामी मनुभाषानुवाद, पृ. २७४

२८. मनु. अ. ६-३ पं. तुलसीराम स्वामी मनुभाषानुवाद, पृ. २७४

२९. मनु. अ. ६-५ पं. तुलसीराम स्वामी मनुभाषानुवाद, पृ. २७५

३०. मनु. अ. ६-३३ पं. तुलसीराम स्वामी मनुभाषानुवाद, पृ. २८०

३१. मनु. अ. ६-३४ पं. तुलसीराम स्वामी मनुभाषानुवाद, पृ. २८०

३२. मनु. अ. ६-३५ पं. तुलसीराम स्वामी मनुभाषानुवाद, पृ. २८०

३३. सं.चन्द्रिका , भीम सेन शर्मा, आत्माराम अमृतसरी, पृ. २८४

३४. मनु.अ.३-६०, पं. तुलसीराम स्वामी मनुभाषानुवाद,

३५. मनु. ३-५६-५७ पं. तुलसीराम स्वामी मनुभाषानुवाद,

३६. संस्कार चन्द्रिका, भीमसेन शर्मा, पृ.१८६

३७. संस्कार चन्द्रिका, भीमसेन शर्मा, पृ.२७६

३८. संस्कार चन्द्रिका, भीमसेन शर्मा, पृ.२८६

३९. ऋग्वेद १-१६४-४९, भीमसेन शर्मा, संस्कार चन्द्रिका, आत्माराम अमृतसरी, पृ.२८६

४०. यजुर्वेद अ. २० मन्त्र - २९, महर्षि दयानन्द सरस्वती, यजु: भाषा भाष्य

४१. मैत्रायणी ब्राह्मण १-५-२४

४२. पारस्कर गृह्यसूत्र संस्कार विधि, पृ. ६१

४३. यजु: ३६ - मन्त्र - २४, म.द.स. यजु: हिन्दी भाषा भाष्य

४४. आश्वलायन गृह्यसूत्र तथा पास्कर गृह्यसूत्र संस्कार विधि, पृ.६४

४५. परिच्छेद : महर्षि दयानन्द सरस्वती, संस्कार विधि, पृ.६५

४६. यजु: २५-२१ महर्षि दयानन्द सरस्वती, यजु: भाषा भाष्य, पृ.६५

४७. तैत्तिरी उप. उप. अंक, पृ. ३३५५,३६,३७

*****

चतुर्थ अध्याय
वैदिक वाङ्मय में विश्वारोग्य एवं विश्वशान्ति

१. शारीरिकारोग्य । १ आयुर्वेद। कायिकशान्ति-शान्तिपाठ

२. मानसिकरोग्य । २ ध्यान। मानसिकशान्ति-शान्तिप्रकरण

३. वाचिकारोग्य । ३ मधुवाक् -वाचिकशान्ति-जलचिकित्सा- अन्नजल-

४. कौटुंम्बिकारोग्य । ४ आत्मीयता । कौटुंम्बिकशान्ति-आदर्श गृहस्थ

५. राष्ट्रीयारोग्य । ६ एकता । राष्ट्रीयशान्ति-सद्भाव

६. सामाजिककारोग्य । ७ सौहार्द। सामाजिकशान्ति - सहिष्णुता

७. वैश्विकारोग्यय । ८ विश्वबन्धुता । वैश्विकशान्ति-विश्वैक्यभाव

८. सन्दर्भसूचि ।

१. अष्टांगयोग एवं चिकित्साशास्त्र - आयुर्वेद - योगदर्शन :

१- आध्यात्मिक	**१ - आधिदैविक।**
२- नियम	२ - एकता।
३ - आसन ।	३ - सौहार्द
४ - प्राणायम।	४ - संयम।
५ - प्रत्याहार।	५ - सहिष्णुता।
६ - धारणा ।	६ - ऋजुता।
७ - ध्यान।	७ - सहानुभूति।
८- समाधि।	८ - आत्मीयता।

प्रस्तावना :

विश्वारोग्य की परिभाषा

विश्वारोग्य के अन्तर्गत मानव के शारीरिक, मानसिक, पारिवारिक राष्ट्रीय तथा वैश्विक सुस्वास्थ्य को बनाये रखने वाले नियमों का समावेश किया गया है । शारीरिक स्वास्थ्य के लिए- योगासन, मानसिक स्वास्थ्य के लिए प्राणायाम, कौटुंम्बिक स्वास्थ्य के लिए स्नेह, सौहार्द, सहिष्णुता, उदारता आदर आदि उपायों की आवश्यकता है। सामाजिक निरामयता के लिए अहिंसा, सत्य, अस्तेय,ब्रह्मचर्य, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय आदि योगांगो का अनुष्ठान करना हम सभी वैश्विक जनों का धर्म है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य को सन्तुलित रखने के लिए समता, एकता, विशालता, सदाचार, समदृष्टि, आदि सद्‌गुणों को स्वीकार करना मानवमात्र का धर्म है।

सम्प्रति विश्व में त्राहि मां त्राहि मां का आर्तनाद कर्ण गोचर हो रहा है। इसका कारण है हिंसाचार, भ्रष्टाचार, व्यभिचार, अन्याय, असंयम बलात्कार, विविध शारीरिक, मानसिक, वाचिक व्याधियाँ इन विघातक तत्त्वों ने व्यक्ति एवं समाष्टि को ग्रास लिया है। इन से मुक्ति पाने के लिए वैदिक वाङ्मय एक महाद्वार है। महौषधि है।

वेदशान्तिप्रदाता हैं

अयं ते स्तोमो अग्रियोहृदि स्पृगस्तु शन्तमः। अथा सोमं सुतं पिब।। (ऋग्वेद - १/१६/७१)"[१]

पक्षपातरहितसभी विद्वान इस बात से सहमत हैं कि वेद संसारमें सबसे प्राचीनतम ग्रंथ है। इसलिए इन्हे शान्तिप्रदाता कहा है। वेद सभी का हित चाहते हैं, विश्वमें शान्ति चाहते हैं ।, सर्व प्रथम ज्ञान भगवान् से प्राप्त होता है, उन ज्ञानदायक भगवान को पाना ही विविध व्याधियों से मुक्ति पाना है। वेद ज्ञान का परिपक्व ज्ञानी कहता है।

अपश्यं गोपामनिपद्यमानम्-

वेदाहमेत पुरूष महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् (यजुर्वेद - ३१/१८)"[२]

मैने उस सर्वरक्षक महान् प्रकाशमय ईश्वर को देखा है जो अन्धकार से परे है जब उस प्रकाशमय प्रभु के दर्शन हो जाते हैं तब अज्ञान रूपी अन्धकार नष्ट हो जाता है अशान्तिरूपी तिमिर मिट जाता है। निशा की समाप्ति पर उषा का आगमन होता है। कठोपनिषद् में कहा है।-

एको वशी सर्व भूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति। तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्। (कठोरपनिषद् - ५/१२)"[३]

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहुनां यो विदधाति कामान्। तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् (कठोपनिषद् - ५/१३)"[४]

जो सब का अन्तरात्मा सबको नियन्त्रण में रखनेवाला अकेला ही एक प्रकृति रूपी बीज को अनेक प्रकार का बना देता है। आत्मा में निवास करने वाले उस परमात्मा के जो ध्यानी दर्शन करते हैं, उन्हें ही चिरस्थायी सुखशान्ति मिलती है। वही नित्यों में नित्य अर्थात् सदा एक रस और चेतनों मे चेतन सर्वज्ञ है। वह अकेला सभी कामनाएँ पूर्ण करता है। उस आत्मस्थ नित्य चैतन्य रूप का जो धीर दर्शन करते हैं, उन्हें ही अखंड शांन्ति मिलती है। परमात्मा का यथार्थ ज्ञान वेद से मिलता है । ऋषियों ने कहा है-

नावेदविन्मनुते तं बृहन्तम्

वेद न जानने वाला उस महान् प्रभू को नहीं जान पाता उसका मनन,चिन्तन निदिध्यासन नहीं कर सकता। संसार में आकर जीव प्रमादी बन जाता है। भगवान् को भुला देता है। संसार के मोहक पदार्थो में फँसकर स्वस्वरूप को भी भुला देता है। किसी कवि ने बहुत सुन्दर कहा है-

हँस का रूप था गदला पानी पिया बन के कागा। (आर्य सत्संग गुटका)

इसी कारण अनेक प्रकार के कष्ट पाता है। वह संसार के विषयों में इतना लिप्त हो जाता है की अन्तरात्मा में उठती हुई भगवान की आवाज भी नही सुनता तब वेद पुकारताही नहीं भेरी नाद करता है।

ओं आश्रुत्कर्ण श्रुधी हवं नू चिद्दधिष्व मे गिर।

इन्द्रस्तोममिदं मम कृष्वा युजश्चिदन्तरम् (ऋग्वेद १/१०/१९- पृ.५२)"५

हे चारों और सुनने वाले मेरी पुकार सुन, मेरे शब्दों को धारण कर तदनुकूल आचरण कर। क्या सुना रहे हैं प्रभु वेद वाणी से ? हे अज्ञान नाश के इच्छुक ! मेरे उपदेश को योग्य समाधि द्वारा अन्तरात्मा में धारण कर। स्पष्ट ही भगवान् योगासाधना का सन्देश दे रहे है।

आत्मशान्ति एवं आत्मकल्याणार्थ मन का स्थिर होना आवश्यक है। इसीलिए वेद कह रहा है : **स्थिरं मनश्चकृषे - ऋग्वेद (५-३०-४)**"६

मन बहुत चञ्चल हैं इसको वश मे करना कठिन है:

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृदम्।

तस्याहं निग्रहं मन्ये वायुरिव सुदुष्करम्।। (गीता - ६/३४)"७

मन की चंचलता का चित्र यजुर्वेद के शिवसंकल्प मन्त्रों में दर्शाया है।

यज्जाग्रतो दुरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति - (यजुर्वेद - ३४/१)"८

जैसे जागते हुए का मन दूर दूर तक भ्रमण करता है वैसा सोते हुए का भी दूर दूर तक जाता है। इसीलिए प्रार्थना की है :-

जागते हुए और सोते में भी जो दूर दूर तक जाता है,

नित्ययुक्त शुभ संकल्पों से वह मन मेरा हो भगवान्।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि अनेक शत्रु आत्मा पर प्रहार करते हैं। आत्मा अकेली है और उसकी शत्रुसेना विशाल है अतः इससे मुक्ति पाने हेतु अष्टांगयोग की शरण में जाना ही होगा **न्यान्यपन्थाविद्यते।**

योग ही वह संजीवनी शक्ति है जो सभी शत्रुओं का सामना कर सकती है वह भी बिना शस्त्रास्त्र के। विश्वरोग एवं विश्वशान्ति के लिए आष्टांगयोग को आत्मासात् करना विश्वधर्म है। अधिकांशतः जिन्होंने योग शास्त्र का अध्ययन नहीं किया है उन्हें केवल आसन और प्राणायम ये दो ही अंग अवगत हैं। योग के दो नहीं अपितु आठ अंग हैं अतः उन्हें अष्टांग कहा जाता है। कौनसे हैं वे आठ अंग जिनसे विश्वरोग्य एवं विश्वशान्ति का साम्राज्य आसकता है।

एक सिंहावलोकन :-

१-यम, २- नियम, ३ - आसन, ४ - प्राणायम, ५ - प्रत्याहार, ६ - धारणा, ७ - ध्यान, ८ - समाधि।

क्रमशः विशदी करण एवं लाभ-

१. यम : अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः

२. नियम : शौचसन्तोषतपस्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः।

३. आसन : स्थिरसुखमासनम्।

४. प्राणायामः श्वासप्रच्छवासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।

५. प्रत्याहार : स्वविषयसंप्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः

६. धारणा : देश बन्धश्चित्तस्यधारणा।

७. ध्यानम् : तत्र प्रत्यैकतानताध्यानम्।

८. समाधि : तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव (समाधि)

योग धर्म से दोषों का निवारण -

दोषाणां तु निर्घातः योगमूल इह जीविते।

निहत्य भूतदाहीयान् क्षेमं गच्छति पण्डितः।।

(आपस्तम्बधर्मसूत्र - (११/३.पृ. १७३) "[९]

मानव जीवन में क्रोधादि दोषों का निवारण योग से ही होता है। प्राणियों को जलाने वाले इन दोषों को मारकर अर्थात् योगाग्नि में जलाकर विद्वान् लोग आत्मकल्याण कर लेते है। प्राणायाम के विषय में भी कहा है।

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मला :।

तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्।

प्राणायामैर्दहेद् दोषान् धारणाभिश्च किल्बिषम्।

प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनानीश्वरान्गुणान्

(मनु.६-६२-- पृ.२८७)"[१०]

जिसप्रकार अग्नि में जलाऐ जाने पर सुवर्णादि धातुओं के मल धुल जाते हैं तथा वे चमकने लगती हैं, उसी प्रकार प्राणायाम से हमारी इन्द्रियों के काम, क्रोधादि दोष जलकर भस्म हो जाते हैं और हमारा जीवन पवित्र बन जाता है।

क्रोधो हर्षो रोषो लोभो मोहो दम्भो द्रोहो। मृषोद्यमत्याशपरीवादावसूया काममन्यू अनात्म्यमयोगस्तेषां योगमूलो निर्घातः।

(आपस्तम्ब धर्मसूत्र पृ. १७५)"[११] **(१३/५)**

क्रोध, हर्ष, रोष, लोभ, मोह, दम्भ, द्रोह, अर्थात् दूसरों का अनिष्ट करने की दुर्भावना, असत्यभाषण, अतिभोजन, दूसरोंपर मिथ्या दोषारोप, दूसरों के गुणों से द्वेष करना, इन्द्रियों को वश में न रखना, मन को एकाग्र न करना ये प्राणियों का विनाश करने वाले दोष हैं। ये दोष योग द्वारा ही समाप्त होते हैं।

अक्रोधोऽहर्षोऽरोषोऽलोभोऽमाहोऽदम्भोऽद्रोहः सत्यवचनमनत्याशोऽपैशुनमनसूया संविभागस्त्यागः आर्जवं मार्दव शमोदमःसर्वभूतैरविरोधो योग आर्यमानृशंस तुष्टिरिति सर्वाश्रमाणां समयपदानि तान्युत्तिष्ठन् विधिना सर्वगामी भवति।

(आ.ध.सू.१४-६ पृ. १७६)"[१२]

अक्रोध, हर्ष का अभाव, रोष न करना, लोभ न करना, मोह न करना, दम्भ न करना, द्रोह न करना, सत्य वचन, भोजन में संयम परदोष कथन से विमुख रहना, निन्दा न करना स्वार्थहीनता, उदारता, दान आदि न लेना, सरलता, कोमलता, अनुचित भावावेगों का शमन, इन्द्रियों को वश में करना, सभी प्राणियों के साथ प्रेम, चित्त को आत्मचिन्तन में निमग्न रखना, सज्जनों के नियमानुसार आचरण, क्रूरता का त्याग, सन्तोष इन उत्तम गुणों का विधान चारों अश्रिमियों के लिए किया है। शास्त्रोक्तविधी से इनका पालन करना सभी का धर्म है। यह अष्टांगयोग से ही सम्भव है। अष्टांगयोग से व्यक्तिगत, कौटुंबिक, सामाजिक, राष्ट्रीय एवं वैश्विकारोग्य की प्राप्ति तथा चिरस्थायी सुखशान्ति प्राप्त होती है।

योग की परिभाषा

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः (समाधिपाद सू - २ योगदर्शन पृ.४५ षड्दर्शनम्)"[१३]

अन्त:करण मे उठने वाली विविध वृत्तियों को रोकना ही योग है।

तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्।

(कठोपनिषद - २/६/११.पृ.१०१ उप.म. भाषांतर)"[१४]

इंन्द्रियों की स्थिरता को ही योग कहा जाता है।

वृत्तियों का परिचय

वृत्तयःपञ्चतय्यः क्लिष्टाकिलष्टाः (यो.द.स.पा.सू.५. पृ. ४५ षड्दर्शम्)"[१५]

वृत्तियाँ पाँच प्रकार की होती हैं दु:खदायक एवं सुखकारक वे बन्धन में भी डाल सकती हैं और मुक्ति भी दिला सकती है।

१. प्रमाण, २) विपर्यय, ३) विकल्प, ४) निद्रा, ५) स्मृति ये ५ वृत्तियाँ हैं इन वृत्तियों के निरोध को योग कहा है। श्वेतश्वेतरोपनिषद में योग की अत्यन्त सरल एवं सुन्दर व्याख्या की गयी है।

लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्त्वं वर्णप्रसादं स्वरसौष्ठवं च।

गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पं योगप्रवृत्तिं प्रथमां वदन्ति

(श्वेताश्वेतरोपनिषद - २/१३ उप.अंक)"[१६]

शरीर की लघुता (हलकापन) सुस्वास्थ्य, इंन्द्रियसंयम, तेजस्विता अर्थात् त्वचा पर कान्ति, स्वरमाधुर्य, शरीर में सुगन्ध, मलमूत्र की स्वल्पता, ये लाभ जिससे होते हैं। उसे योग कहा जाता है।

श्वेताश्वेतर के ही अन्य एकमन्त्र में योग विषयक गुणों का वर्णन मिलता है।

न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः।

प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्।। २/१२) श्वेता

अष्टांगयोग की साधना से जिसे योगाग्निमय शरीर प्राप्त होता है उसे न रोग होता है, न वार्धक्य आता है, न उसकी मृत्यु होती है। वह सदा स्वस्थ, यौवनसम्पन्न एवं अमर होता है।

योग की परिभाषा करते हुए भगवद्गीता में कहा है

योगस्थः कुरू कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनञ्जय ।

सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्त्वं योग उच्यते ।। (गीत२-४८)"[१७]

यश, अपयश, लाभ, हानि, सुख दु:ख सबको समान समझते हुए कर्म करने को ही योग कहा जाता है। **योग : कर्मसु कौशलम् (गीता २-५०)**"[१८]

यम से लेकर समाधि तक अष्टांगो में निपुणता प्राप्त करके मन की वृत्तियों को रोकना ही योग है, यह हुआ आध्यात्मिक अर्थ, भौतिक अर्थ में यह वाक्य हमें प्रत्येक कार्य कुशलता से करने का सन्देश देता है। कितना सुन्दर संगम है आध्यात्मिकता एवं भौतिकता का सामान्यत: योग का अर्थ है किसी भी कार्य को मग्न होकर सतर्कता से करना।

युजिर = योगे तथा युज = समाधौ इन दो धातुओं से योग शब्द निष्पन्न होता है।

यह अतीव आनन्द का विषय है की वर्तमान समय में योग का महत्त्व लोगों को समझ में आने लगा है। सायं प्रात:उद्यानो में मैदानों पर योग करते हुए अनेक लोग दृग्गोचर हो रहे हैं किन्तु योग के केवल दो अंगो से हम परिचित हैं। अन्य षडंगो से अनभिज्ञ हैं। इस अध्याय में आठ अंगो का विशद वर्णन एवं उनके द्वारा आरोग्य एवं शान्ति की स्थापना कैसे हो सकती है, इसका स्पष्टीकरण किया जायेगा।

अष्टांग योग से विश्वोराग्य एवं विश्वशान्ति

१. यम - यमु = उपरमे धातु से यम शब्द की निष्पति होती है।

इसका अर्थ है अपनी सभी इन्द्रियों को वश में रखना।

१.अहिंसा :-

मानसिक अहिंसा : मनसा, वाचा, कर्मणा किसी की हिंसा न करना, मन से किसी के लिए अशुभ चिन्तन न करना मानसिक अहिंसा है। इससे मन जलसम पावन, प्रसन्न, शान्त तथा आनन्दमय बनता है। शिवसंकल्पों से मानसिक रोग भी दूर हो जाते हैं। मन सम्पूर्णतया स्वस्थ एवं निर्भय हो जाता है। यदि हम किसी का अशुभ चिन्तन करते हैं तो हम अपने ही मन को मलीन करते हैं। मन की पवित्रता अत्यन्त आवश्यक है। निर्मल मन में ही प्रभू का

प्रतिबिम्ब दिखता है। जो सुख का सागर है दु:ख दावानल को शान्त करने वाला है। आनन्दधन है ऐसे विश्वविधाता के दर्शन कौन नहीं चाहता ? सभी मेधावी लोग उसका आश्रय चाहते हैं, उसकी शरण मे रहना चाहते हैं। उसकी प्राप्ति हेतु हमारे ऋषि मुनि युगों तक तपस्या करते थे और ध्यान, धारणा समाधि के द्वारा मोक्षानन्द में मग्न होते थे। अहिंसा धर्म के पालन से तन, मन, वचन सभी शान्त एवं स्वस्थ रहते हैं

इसीलिए कहा है मनः पूतं समाचरेत् । मनु

२. वाचिक अहिंसा :

अपनी वाणी से किसी को कटु वचन न बोलना वाचिक अहिंसा है। इसके विपरीत यदि हम किसी को कटुदुर्वचन बोलकर दु:ख देते हैं तो वह वाचिक हिंसा हो जाती है। वाणी की कटुता से मित्र भी शत्रु बनते हैं, अपने पराये हो जाते हैं। इसी वाणी में इतनी मधुरता भी है कि हम विश्वजन के मन को भी जीत सकते हैं। इसी वाणी के कारण ही रामायण और महाभारत हुआ, इतिहास इसका साक्षी है। मधुर वाणी में वह शान्ति है जो विश्व के किसी भी पदार्थ में नहीं। मधुर व्यवहार से मनुष्य ही क्यों पशु पक्षी भी अपने हो जाते हैं मीठा बोलने के लिए कोई मोल नहीं चुकाना पडता मधुमती वाणी से हमारा जीवन मधुमय बन जाता हैं इससे बड़ी उपलब्धि व जीवन का सुख क्या हो सकता है ? जोड़ने के लिए समय लगता है तोड़ने के लिए नहीं, वर्षों से मधुरता एवं प्रेम के सूत्र में बन्धे सम्बन्ध कटु वाणी से क्षणभंगुर हो जाते हैं। जोड़ना जीवन है तोड़ना मृत्यु है। अतः अपनी वाणी से हम विश्व को जोड़ने का प्रयास निरन्तर करते रहेंगे तो एक दिन समस्त दु:खों का अशान्ति का अन्त हो जायेगा अथर्ववेद के मन्त्रानुसार -

सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु (अथर्ववेद कां. १९ सू. १५-६)"[१९]

सभी दिशाओं में मेरे मित्र हों यह कामना पूर्ण हो जाऐगी।

३. कायिक अहिंसा :

अपने शरीर से अर्थात् हाथ पैर आदि के द्वारा किसी को न मारना। उस सर्वरक्षक प्रभु ने हमे यह शरीर अपनी और दुसरों की रक्षा के लिए दिया है। हमारे समाज में ऐसे भी महापुरूष हुए हैं जिन्होने एक पक्षी का जीवन बचाने हेतु अपनी जंघा काटकर दी थी ।

मा हिंसीः तन्वा प्रजाः (यजुर्वेद १२-३२)"[२०]

यदि समस्त विश्व तक यह वैदिक सन्देश पहुँच सके ओर उसका पालन हो जाये तो संसार में आतंकवाद का नाम भी शेष नहीं रहेगा। यह कार्य वेदविदों का है। वेदों के पावन सन्देश, दर्शनों कें सिद्धान्त जन-जन तक पहुंचाएँ। जिस दिन मानव को अहिंसा तत्त्व का महत्त्व समझ मे आयेगा उस दिन मानो वसुन्धरा स्वर्गमय बन जाएगी। भय और अशान्ति का कोई दानव संसार मे शेष नही रहेगा। काश! ऐसा सम्भव हो पाता महर्षि पतञ्जलि के अहिंसा सिद्धान्त को विश्व समझ पाता।

सामवेद मे कहा है : न स्त्रेधन्तं रयिर्नशत् (सामवेद - उत्तरार्चिक - ४ - ४३-२)"[२१]

हिंसक को शान्ति रूपी धन नहीं मिलता। सच्चे धनभिलाषी को शान्तिरूपी धन ही प्राप्तव्य है। शान्ति अभ्यन्तर धन है, घर, पशु तथा अन्य भौतिक धन धान्य तो केवल बाह्य सुखकारक एवं अस्थिर हैं, सच्चा सुख तो आत्मशान्ति मे निहित है- **शं पदं मघं रयिषिणे (सामवेद -४४१)**"[२२]

चिरस्थायी धन ही प्राप्तव्य होता हे। भौतिक धन तो चोर डाकुओं के पास भी होता है लेकिन वह हिंसासे प्राप्त होने के कारण अशान्तिकारक होता है। ऐसे धन से सज्जनों की तुष्टी नहीं होती। याज्ञवल्क्य जब धर छोडकर संन्यासी बनाना चाहते थे तब उन्होने अपनी पत्नी मैत्रेयी से कहा आओं मैत्रेयी तुम दोनों अर्थात् कात्यायनी और तुझ मे धन का विभाजन कर देता हूँ। मैत्रेयी ब्रह्मज्ञा थी उसने पूछा :

यन्नु म इयं भगो सर्वा पृथिवी वितेन पूर्णास्यान्व्हं तेनामृता। (बृहदा ४-५-३)"[२३]

ऋषिवर यह धन धान्य से पूर्ण सम्पूर्ण पृथिवी यदि मेरी हो जाए तो क्या में अमृत हो जाउँगी इस पर यथार्थ वक्ता सत्य द्रष्टा याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया

नेति नेति यथैवोपकरवतां जीवितं तथैव ते जीवितं स्यात्

अमृतत्वस्य तु नाशास्ति वित्तेन (बृहदा ४-५-३)"[२४]

नहीं नहीं धन से अमरत्त्व नहीं मिलता इससे तुम्हारा जीवन भी वैसा ही होगा जैसा अन्य सामान्य मर्त्यो का होता है। मैत्रेयी ने कहा :

येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्यां यदेव भगवान् वेद तदेव मे ब्रुहि (बृहदारण्यक ४-५-६)"[२५]

जिससे मुझे मोक्षधन न मिले उसे लेकर मै क्या करूँ, भगवन्! मुझे तो चिरन्तन शान्ति देने वाले अमृत पद की अभिलाषा है उसे प्राप्त करने का साधन मुझे जानना है। कितना भी शास्त्रवेत्ता क्यों न हो जब तक हिंसादि दुष्ट कर्मो को नहीं छोडता तब तक शान्ति धन नहीं मिलता। हिंसक आत्मा को नही पा सकता।

कोऽ हम्? कुत आगतोऽ स्मि ?किं में कर्तव्यम् ? का मे गतिः?

मै कौन हूँ? कहाँ से आया हूँ? ये प्रश्न जब मन मे उठते हैं तो उस परम पिता से यह आत्मा पूछती है।

कथं तरेयम् भवसिन्धुमेतं

का वा गतिर्मे कथमस्त्युपायः

जाने न किञ्चित् कृपयावमाम्भो।

संसारदुःखक्षतिमा तनुष्ठः

तब उत्तर मिलता है तुम चेतन आत्मा हो, ना तुम्हारा जन्म है ना मृत्यु सदा से हो और सदा रहोगे सन्मार्ग पर चलते हुए मोक्ष प्राप्ति तुम्हारा कर्तव्य है। अतःहिंसादि दुष्कृत्यों से परे हट जाओं अहिंसा को उपनाओं, शान्त्यादि मार्ग के पथिक बनों, तभी तुम त्रिविध तापों से मुक्ति पा सकोगे।

वेदपाठक वेदानुयायी हिंसा नही करता क्योंकि वह घोषणा करता है। **मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे - यजुर्वेद -३६-१८)**"[२६] मै सभी को मित्र की दृष्टि से देखता हूँ मैं ही क्यों हम सभी **मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे** : आपस में एक दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखें। मित्र मित्र की हिंसा नहीं करता रक्षण करता है। कई बार पशु जगत् मे हिंसा मार काट देखकर हम हिंसा को प्राकृतिक नियम समझ लेते हैं। हम भूल जाते है की हम मनुष्य हैं मननशील हैं, विचारशील है। उचितानुचित का ज्ञान रखते हैं। पशुओं के पास विचारशक्ति नहीं होती वे उचितनुचित का चिन्तन नहीं कर सकते वह भोगयोनी है, मनुष्य कर्मयोनी है, वह सत्कर्मो से अपना भाग्यविधाता स्वयं बनता हैं। पशुओं में सन्तान को खा जाने की प्रवृत्ति है। क्या मनुष्य यह कर सकता है। यदि नहीं तो हिंसा को प्राकृतिक नियम कहना निस्सार है। वेद में तो **पशून् पाहि कहा है**। **(यजु अ. १-१)**"[२७]

अतः अहिंसा परमो धर्मः का पालन करना हमारा धर्म है। इसी में सुख शान्ति निहित है। विश्व के सभी सन्तों ने अहिंसा का शान्ति का, सहष्णुता का सहानुभूति का, करुणा का आत्मीयता का पाठ पढ़ाया है। इन तत्त्वों का पालन करना विश्व धर्म है।

२- सत्य :-

आर्ष ग्रन्थों में सत्य को सर्वोपरि स्थान देते हुए कहा है।

न हि सत्यात्परो धर्म : नानृतात्पाकं महत्

सत्य से बडा काई धर्म नहीं है ओर असत्य से बडा कोई पाप नही है। मनसा, वाचा, कर्मणा सत्य का पालन करना हमारा धर्म है। जो मनमे वही वाणी मे हो, जो वाणी मै वही

क्रिया मे हो। चित्ति, उक्ति, कृति की भिन्नता हमें भ्रष्ट बना देती है। अधिकतम राजनैतिक क्षेत्रों में यह प्रत्यक्ष दिखता है निर्वाचन के समय में जो आश्वासन जनता को दिये जाते है वे कहाँ तक सत्य होते हैं यह हम सभी जानते हैं। हमारे व्यक्तिगत जीवन में भी ऐसे अनेक प्रसंग आते हैं। एक असत्य तिरोहित करने हेतु हमें और दस असत्य बोलने पडते हैं।

सत्य से हमारा मन निर्मल होता है, वाणी ओजोमय हो जाती है, हम निर्भय एवं विश्वसपात्र बन जाते हैं।

यदि पथि विपथे वा वर्तयामः स पन्था।

आँखे बंद करके विश्व हमारा विश्वास कर सके कि हम जो कहेंगे वह सत्य ही होगा। इतना विश्वासपात्र बनने हेतु हमें प्रतिज्ञा करनी पडेगी **इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि** आज ही मै अनृत को त्यागकर ऋत को स्वीकार करता हूँ। वेद की यह दुन्दुभि सप्तद्वीपा वसुन्धरा के कोने - कोने में पहुँचाना हमारा धर्म है क्यों कि हम ऋत की गरिमा को जानते हैं। उसे आचरण से सार्थक करना होगा। सत्य कभी पराजित नहीं होता है वह कहता है **अहमिन्द्रो न पराजिग्ये** मेरा सामर्थ्य अपरम्पार है कभी परास्त नहीं हो सकता यह घोषणा केवल सत्यवादी ही कर सकता है वह सर्वथा निर्भय होता है। उपनिषद में उल्लेख है

सत्यमेव जयति नानृतम्

सत्यव्रती की क्रिया में सौम्यता भी होती है और शूरता भी धर्मशास्त्र कहता है-

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात

न ब्रूयात सत्यमप्रियम्

सत्य बोलो, प्रिय बोलो, अप्रिय सत्य मत बोलो यह कला बहुत कठिन प्रतीत होती है किन्तु अपनी कुशलता से कुशाग्र मेधा से हम यह कार्य करने में सफल हो सकते हैं।

१. मानसिक सत्य :

सत्य से मन शुद्ध होता है असत्य से मलिन होता है **मनः सत्येन शुध्यति** - मानव का मन बन्धन कारक भी है और मोचक भी है **मन एव मनुष्यांना कारणं बन्धमोक्षयोः** सन्मार्ग पर स्थिर होकर यह बन्धन खोल देता है। और असत्य से यह बन्धन में ड़ाल देता है। मननशील मनुष्य इसकी सहायता से मोक्षानन्द पा लेता है। यास्काचार्य के अनुसार

मनुष्य : कस्मात् मत्वा कर्माणि सीव्यतीति मनुष्यः

जो विचार पूर्वक कर्म करता है वह मनुष्य कहा जाता है। मनुष्य को सम्बोधित करते हुए वेद कहता है। (**ऋतं चिकित्व ऋग्वेद - ५-१२-२)** "[२८]

हे मानव तू सदा सत्य की कामना कर इस मनुष्य तन को पाकर यदि हम सत्य का अनुसन्धान, अभिलाषा एवं आचरण नहीं करते तो मनुष्य कहलाने के अधिकारी नही हो सकते। मनुष्य के समक्ष सत्यासत्य दोनों आते हैं। वेद में उल्लेख है । **सुविज्ञानां चिकीतुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते (ऋग्वेद -७-१०४-१२)** "[२९]

सत्य ज्ञानाभिलाषी के समक्ष सत्य और असत्य वचन एक दूसरे को दबाते हुए आते हैं। मेधावी क्षीरनीर विवेकी मनुष्य असत्य को हानिकारक, अमंगल समझकर त्याग देता है। **तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीयस्तदित्सोमोऽवतिहन्त्यासत् (ऋग्वेद - ७ - १०४- १२)** "[३०] उनमें जो सत्य है सरल है, शान्तिकांक्षी उसे स्वीकार करता है। सत्य सरल होता है निष्कपट होता है। निर्मल होता है उसे धारण करने से निःसन्देह मानव भी सरल निश्छल एवं पावन हो जाता है और शाश्वत शान्ति पा लेता है। असत्य कुटिल होता है मलीन होता है, दुःखदायी होता है अतः शान्ति की कामना करने वालों को सत्याभिलाषी सदाचारी बनना आवश्यक है। वेद असत्य का विरोधी है और नितान्त निर्भ्रान्त सत्य का समर्थक है। धार्मिक जन कभी भी दोरूखी चाल नहीं चलते। वे एकमेव सत्य का अनुसरण करते हैं क्योंकि सत्य से बडा कोई धर्म नहीं है यह उपनिषद का उद्घोष है। असत्य को राक्षस कहा

गया है, ऋत को सुखवर्षक कहा है, सुख की शीतल धारा से स्वयं को शन्तिर्मय करने के लिए सत्य का जानना, मानना एवं तदनुकूल आचरण करना विश्वधर्म है।

२) वाचिकसत्य - सत्यपूतां वदेत् वाचम् (मनुः ६-४६- पृ.२८२)"[३१]

अपनी वाणी को सत्य से पवित्र करके सम्भाषण करना चाहिए, ऐसी पवित्र वाणी पर समस्त विश्व विश्वास रखता है। यह सम्पूर्ण जगत् उस पावन परमेश्वर से व्याप्त है वह हमारे सत्यासत्य को जानता है। उसे साक्षी मानकर ही हमें सदैव सत्य बोलना चाहिए। त्रेता युग के राजा दशरथ एवं सत्य युग के राजा हरिशचन्द्र सत्यभाषण के कारण ही आज भी जन-जन के मानस पटल पर स्थित हैं। अपनी वाणी से किसी को असत्य बोलने के लिए प्रेरित करना भी महापाप है, वाचिक असत्य है क्योंकि स्वयं तो असत्य से लिप्त हो ही जाता है और अन्य को भी दूषित कर देता है। सत्यभाषी विश्व को जीत लेता है। असत्यभाषी तिरस्कार का पात्र तो बनता ही है और पराभूत भी होता है। छान्दोग्योपनिषद में सत्यकाम जाबाल की कथा बडी ही मार्मिक है।

जबाला के पुत्र सत्यकाम ने अपनी माता जबाला को सम्बोधित हुए निवेदन किया हे माते! मैं ब्रह्मचर्यपूर्वक गुरूकुल में निवास करना चाहता हूँ जिससे वेदादि शास्त्रों का अध्ययन कर सकूं। आप मुझे बताओं मैं किस गोत्र का हूँ इस पर माता जबाला ने जो उत्तर दिया वह विचारणीय है, सत्यस्वीकृति की पराकाष्ठा है। उसने उपने पुत्र से कहा बेटा, तू किस गोत्र का है यह मैं नही जानती युवावस्था में मैं जब बहुत कार्य करने वाली परिचारिणी थी, उस समय मैंने तुझे प्राप्त किया है। मेरा नाम जबाला है और तुम्हारा नाम सत्यकाम है अतः तू अपना नाम **"सत्यकाम जाबाल"** बतला देना। सत्यकाम हारिद्रुमत गौतम ऋषि के आश्रम में गया और उनसे कहा मैं आपके श्री चरणों में रहकर ब्रह्मज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ इस पर गौतम ऋषि ने उसका गोत्रपूछा तब सत्यकाम ने जैसा माता ने कहा था वैसा ही उत्तर दिया। इस उत्तर को सुनकर हारिद्रुमत ऋषि ने कहा ऐसा सत्य निश्चित ही

कोई सामान्य व्यक्ति नही बोल सकता वह अवश्य कोई महान आत्मा है। उन्होंने सत्यकाम से कहा सौम्य तू समिधा ले आ मै तेरा उपनयन संस्कार दूँगा क्योंकि तुमने सत्य का त्याग नहीं किया। (छान्दोग्य उप.अ.४-खं-४ पृ.क्र.४३८)"[३२]

३) कायिकसत्य :

जैसा चिन्तन वैसा वचन जैसा वचन वैसा कर्म अर्थात् मनसा, वाचा कर्मणा एक सा आचरण करना पूर्ण सत्य धर्म का पालन है। अनुचिताचरण असत्य होता है, उचित आचरण सत्य होता है अत: सदाचार विश्वधर्म है, योगदर्शन में कहा है -

सत्यप्रतिष्ठायाँ सर्व क्रियाफलाश्रयत्वम् - (यो.द.सा.पा.सू. ३६)"[३३]

सत्यव्रत के पालन से सभी क्रियायें सफल हो जाती हैं और अपूर्व आनन्द की प्राप्ति होती है। जिस आत्मानन्द की प्राप्ति हेतु मानव अहर्निश प्रयास करता है वह आनन्द सत्याचरण से प्राप्त होता है। अत: सत्य का पालन विश्वधर्म है इससे बडा कोई धर्म नही है। सत्य के पालन से सभी धर्मो का पालन स्वयमेव होता है।

३-तृतीय यम - अस्तेय

अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् - (यो.द.सा.पा.सू.३७)"[३४]

अस्तेय अर्थात् चोरी न करना। मन मे पर द्रव्य की लालसा रखना मानसिक चोरी है। वाणी से परपदार्थ को लेने की प्रेरणा देना वाचिक चोरी है तथा स्वयं अपने हाथों से परद्रव्य का अपहार कायिक चोरी है। महर्षि पतंजलिका यम हमें अस्तेय का मार्ग दिखाता है। जब विश्व का समस्त कोष हमें प्राप्त हो रहा है तो हम क्यों कलुषित इच्छाओं, कलुषित भावनाओं, कलंकित करने वाली प्रेरणायें तथा ग्लानिकारक चौर्य कर्म में प्रवृत हो ? जिस कार्य से हमारा अध:पतन होता है, मन अशान्त होता है वह घृणित कर्म हमें नहीं करना चाहिए।

महर्षि दयानन्दजी ने सत्यार्थ प्रकाश में कहा है परद्रव्येषु लोष्ठवत्

दूसरों की सम्पत्ति मिट्टो के समान समझकर उसकी अभिलाषा नहीं करनी चहिए। यजुर्वेद में कहा है -

कुवन्नेवेह कर्माणि जिजी विषेच्छतंसमाः (यजुर्वेद अ.४० मन्त्र -२)"[३५]

हे मानव चौर्यादि घृणित कार्यो को, अपवित्र कार्यो को त्याग कर सदैव सन्मार्ग पर चलते हुए, सत्यकार्य करते हुए सौ वर्ष तक जीने की अभिलाषा कर। जो परिश्रम पूर्वक उचित, न्यायसंगत मार्ग से धनार्जन करता है, वह सुख, शान्ति, आनन्द एवं मोक्ष को पा लेता है। लोभ के वशीभूत हुआ व्यक्ति पाप कर्म में प्रवृत्त होता है। वह सभी प्रकार से पापपंक में फँस जाता है, सुख का लवलेश भी उसके जीवन में नही रहता। सुखवृष्टि से शान्त होने हेतु, अस्तेय मेघो की निर्मिति हेतु हमे चौर्य जैसे दूषित वातावरण का निवारण करना आवश्यक है। अस्तेयव्रत से हमारा मानस पावन एवं प्रसन्न होता है, वाणी स्पष्ट एवं ओजमय बनती है तथा सभी क्रियायें सफल हो जाती हैं। हमारी क्रियाओं में अप्रतिहतगति आ जाती है। चोर सदैव भयभीत रहता है, वह चैन नही पा सकता। अस्तेय का पालन करने वाला निर्भय होता है। मननशील मानव के मन में चौर्यादि कर्म के विचार से ही भय, शंका एवं लज्जा का भाव आता है। दयानन्द जी ने उचित अनुचित कर्म की व्याख्या करते हुए लिखा है जिस कार्य को करते हुए भय, शंका एवं लज्जा का भाव निर्माण होता है वह कार्य निश्चित त्याज्य है। हमें अस्तेय का पालन करना चाहिए इससे समाज स्वस्थ एवं शान्तिमय बनता है। भय का आतंक नष्ट हो जाता है। समस्त विश्व को निर्भय बनाने के लिए अस्तेय धर्म का पालन करना वैश्विक धर्म है। श्रम धर्म के पालन से अस्तेय धर्म का पालन स्वयमेव हो जाता है। वेदों में प्रार्थना है -

यतो यतः समीहसे ततो न अभयं कुरू। (यजुर्वेद)

चारों और निर्भय वातावरण हो हम भयमुक्त जीवन जीयें। विश्व का प्रत्येक प्रदेश निर्भय एवं शान्त हो। सम्प्रति योगशास्त्र की शिक्षा पाठ्यक्रम के द्वारा विश्व के कोने-कोने मे पहुँचाने की आवश्यकता है।

आज ऐसी अवस्था हमे द्रग्गोचर हो रही है कि कोई बहुमूल्य वस्तु हम अपने घर में भी निर्भयता से नहीं रख सकते क्योंकि हमने अस्तेय को नही समझा है। यदि हम इस व्रत की महिमा समझ जाएँ तो तालों की आवश्यकता ही नहीं होगी। योग दर्शन के सूत्रोक्त रत्नों का अभिप्राय दिव्यता से है यदि हमारा जीवन दिव्य बन जायेगा तो संसार की कोई भी परवस्तु हमें तृणतुल्य प्रतीत होगी हम कभी उसकी आकांक्षा नहीं करेंगे, आवश्यकता है अस्तेयव्रत की महिमा को समझने की। एक समय था जब अश्वपति राजाने यह गर्व से कहा था

न मे स्तेनो राज्ये।

मेरे राज्य में कोई भी चोर नही है। क्या यह उद्घोष फिर से सार्थक करना सम्भव है? अस्तेयव्रत के पालन से यह सम्भव है। चोरों के भय से आज घरों के सामने रक्षकों की नियुक्ति करनी पडती है। यह चित्र बदलना हमारा धर्म है। अष्टांग योगोक्त अस्तैय यम का पालन करना सार्वभौम व्रत है। यह सभी का धर्म है। प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि मै मनसा वाचा, कर्मणा सुख, शान्ति एवं आनन्द की प्राप्ति हेतु अस्तेय व्रत को धारण करता हूँ। चोरी करने वाला कभी भी आन्तरिक आनन्द नही पा सकता वह सदैव आतंकित एवं अशान्त रहता है। शान्ति उसे स्वप्न में भी नही मिल सकती। भारत भारती में शंख लिखित मुनि का उदाहरण देते हुए मैथिली शरण गुप्त ने लिखा है -

एक दिन शंखमुनि लिखित मुनि के आश्रम मे गये उस समय लिखित मुनि स्नानार्थ नदी पर गये थे, बहुतकाल प्रतीक्षा करने पर भी जब लिखित मुनि नहीं लौटे तो शंखमुनि

बुभुक्षा से पीड़ित हो गये और उन्होंने लिखित मुनि के आश्रम के आम्र वृक्ष से एक आम्रफल तोड़कर खा लिया किन्तु उन्हें पश्चाताप होने लगा कि अपने भ्राता की आज्ञा बिना उनकी अनुपस्थित में यह चोरी मैंने की है। उनका अन्तः करण अशान्त हो गया। जब लिखित मुनि अपने आश्रम में आये तो शंखमुनि ने अस्तेय व्रत का पालन न करने की भूल स्वीकार की ओर दण्ड की याचना की, इस पर लिखित मुनि ने कहा कोई बात नहीं तुम मेरे भाई हो मेरी वस्तु तुम्हारी ही है लेकिन शंखमुनि न माने और राजा के समीप जाकर उन्होंने अपने दोनों कर कटवा लिये। यह था अस्तेयव्रत, वैदिक वाङ्मयस्थ धर्म। अस्तेयधर्म के पालन से विश्व के सभी सुख हमारे चरण चूमेंगे अतः इस धर्म का पालन हमें अवश्य करना चाहिए।

४ ब्रह्मचर्य :-

यह व्रत जितना कठिन उतना ही सुखकर है। योग दर्शन के सूत्रानुसार

ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः

ब्रह्मचर्य के पालन से मानसिक, वाचिक एवं कायिक त्रिविध शक्तियों की प्राप्ति होती है और त्रिविधतापों की समाप्ति होती है। अर्थात् तीनों तापों का परिहार करने में ब्रह्मचारी सक्षम होता है। इतना ही नहीं मृत्यु को भी पराजित कर देता है, महाभारत में पितमह भीष्म का उदाहरण सर्वश्रुत हैं इसीलिए अथर्ववेद के ब्रह्मचर्य सूक्त में कहा है -

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत - अथर्ववेद

ब्रह्मचर्य के तप से देवों ने अर्थात् दिव्यगुण सम्पन्न महापुरूषों ने मृत्यु को भी पराभूत किया है। ब्रह्मचर्य अर्थात् संयमी जीवन से विश्व की समस्त आसुरी शक्तियों को पराभूत करके दैवी शक्तियों को पाया जा सकता है - श्रीमद् भगवद् गीता में दैवी सम्पती एवं आसुरी सम्पती का वर्णन अत्यन्त सूक्ष्मता से किया गया है। संयमी जीवन से मानव सभी मानसिक एवं शारीरिक रोगों से मुक्त हो सकता है और एक स्वस्थ समाज का निर्माण

कर सकता है। ब्रह्मचर्य आश्रम चारों आश्रमों का मूलाधार ह, इस आश्रम में जो प्राप्त किया जाता है वही गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यासश्रम में सहायक बनता है। ब्रह्मचारी सम्यक् स्वास्थ्य, सम्यक साधना, सम्यक् तप सम्यक श्रम, सम्यक् कर्म, सम्यक् वाणी, इत्यादि सर्व प्रकार से परिपूर्ण होता है इसलिए उसे सर्व शक्तियों की प्राप्ति होती है।

ब्रह्मणि चरतीति ब्रह्मचारी के अनुसार वह संसार से सर्वथा दूर रहता हुआ ब्रह्ममय होकर ज्ञानार्जन करता है। सभी सिद्धियों को प्राप्त करता है। यह मानव जीवन की अमूल्यनिधि है। निश्चिंत होकर सदाचार के साथ आत्मिक उन्नति करना ब्रह्मचर्य से ही सम्भव है। ब्रह्मचर्य मानव जीवनरूपी भव्य भवन की नीव है। ब्रह्मचर्य रूपी दर्पण में ही आदर्शगृहस्थ, वैराग्यपूर्ण वानप्रस्थ, त्यागमय संन्यास इन, सभी का प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है। मनुस्मृति के अनुसार यह व्रत अत्यन्त कठिन है -

बलवानिन्दियग्रामो विद्ववांसमप्यप कर्षति (मनु. अ.२ - २१५ पृ. ११३)"[३६]

यह इन्द्रियसमूह अत्यन्त बलवान है जो व्यक्ति को निरन्तर कुमार्ग की ओर खींचता रहता है। इसे एकमेव ब्रह्मचर्य की लगाम से वश में किया जा सकता है। ब्रह्मचारी संयम से तेजस्वी, ओजस्वी होता है। ब्रह्मचर्य अर्थात् संयम केवल प्रथम आश्रम में ही नहीं अपितु अन्य तीनों आश्रमों में भी आवश्यक है। संयम से विश्व में आरोग्य, सुख शान्ति एवं आनन्द की सरिता निरन्तर बहती है। असंयमी जीवन मानव को विनाश की ओर ले जाता हैं। मानव के चञ्चल नयन रूप की ओर दौडते हैं, कान शब्द की ओर, नासिका गन्ध की ओर, जिह्वा स्वाद की ओर ये इनके विषय हैं। विषयों की ओर दौड़ना स्वभाविक है किन्तु उचितानुचित विचार आवश्यक है। वेदादेश के अनुसार -

भद्रं कर्णेभि श्रणुयाम देवाः भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः

हम भद्र कहें, भद्र देखें, भद्रसुनें और भद्र ही करें इस प्रार्थना को सार्थक करना हमारा धर्म है। यही ब्रह्मचर्य व्रत की कसौटी है। जो ब्रह्मचर्य अर्थात् संयम की भट्टी में तपता है वह कुन्दन बन जाता है। ब्रह्मचर्य वह अमृत है जिसे पीकर व्यक्ति अमर हो जाता है।

कवि देवेन्द्रनाथशास्त्री जी ने ब्रह्मचर्य का अतीव रमणीय वर्णन किया है -

ब्रह्मचर्य की शिक्षा का
सन्देश सुना जिसने
निज जन्म संवारा है। (देवगीत मंजरी)

५. अपरिग्रह :

भौतिक साधनों का अनावश्य संग्रह न करना अपरिग्रह है। महर्षि पतंजलि लिखते हैं :-

अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः

अपरिग्रह के पालन से जीवन का रहस्य समझ में आता है। मैं कौन हूँ कहाँ से आया हूँ? इन सभी प्रश्नों पर चिन्तन, मनन करने के लिए मनुष्य समय दे पाता है अन्यथा भौतिक अनावश्यक वस्तुओं के रक्षण में समय नष्ट होता है। भौतिक वस्तुएँ हमें अपने मोह जाल में उलझाए रखती हैं। जिससे हम अपने ध्येय तक नही पहुँचते। मानव ही एक ऐसा प्राणी है जो संग्रह करने में सतत मग्न रहता है तथा उन संग्रहित वस्तुओं के रक्षण में अपना अनमोल समय नष्ट कर देता है। ये अत्यधिक संग्रहित वस्तुएँ व्यक्ति के अन्तः करण में अहंकार का बीज बो देती हैं और मनुष्य दिन प्रतिदिन उसे तृष्णा का जल सिंचन करता हुआ स्वंय को उनका स्वामी समझने लगता है। वह भूल जाता है कि वह खालीहाथ आया है और खालीहाथ जायेगा फिर भी संग्रह करके अहंकार के अंकुर का पोषण करता है। संग्रहवृत्ति और अहंकार की दंतकथा बडी ही रोचक है जिसका उल्लेख यहाँ उचित होगा।

एक महात्मा किसी मन्दिर मे दर्शन करके बैठे थे उनके पास एक भौतिक वैभव सम्पन्न व्यक्ति आकर बैठ गया और अपने वैभव की गरिमा गाने लगा। बहुत समय तक वह कहता रहा मेरे पास अनेक प्रासाद है, गाड़ियाँ हैं। नौकर हैं बहुत सारी खेती हैं, मैं बहुत धनिक व्यक्ति हूँ इस प्रकार उसकी गर्वोक्ति सुनकर वे महात्माजी मुस्कुराये और उन्होंने एक बटन उसके हाथ पर रखते हुए कहा श्रीमान्जी आपके पास अपार सम्पत्ति है, मकान हैं, गाडियाँ हैं, तिजोरियाँ हैं तो मेरा यह बटन अपनी तिजोरी में रख देना यदि मुझे आवश्यकता पड़ी तो मैं आप से माँग लूँगा अन्यथा मृत्यु के पश्चात् हम दोनों जब स्वर्ग में मिलेंगे तो आप मुझे मेरा बटन लौटा देना। साधु की उक्ति पर मानो वह धनिक मूर्च्छावस्था से जागकर सोचने लगा क्या मृत्यु के पश्चात् यह बटन मैं साथ ले जा सकूँगा ? अन्दर से ध्वनि आयी नहीं और उस धनिक व्यक्ति ने महात्मा जी के चरणों पर नतमस्तक होकर कहाँ महाराज! अब तक जो मैं मेरा मेरा कह रहा था। मेरे समझ में आ गया मेरा कुछ भी नहीं आपके इस बटन ने मेरी आँखे खोल दी।

किसी कवि ने बहुत ही मार्मिक शब्दों में कहा है :-

क्यों करता है मेरी मेरी तज दे इस अभिमान को

छोड़ जगत् के झूठे धन्धे जपले प्रभू के नाम को

गया समय फिर हाथ न आए फिर पछताये तली तली

अपरिग्रह के पालन से हमें सच्चा लक्ष्य प्राप्त हो जाता है। ना कुछ हम ले के आए ना लेके जायेंगे सत्य समझ में आता है। मिथ्या गर्व नष्ट हो जाता है। जो आज हमारा है, कल किसी और का था, परसों किसी और का होगा यह रहस्य समझ में आता है। यह तथ्य समझने में ही जीवन की इति कर्तव्यता है। वेद में इस विश्व को पीपल का वृक्ष कहा है और मानव जीवन को उसके पर्ण पर गिरने वाले क्षण भंगुर जल बिंदूसम कहा है -

ओं अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिस्कृत। गो भाज इत्किलासथ

इस तथ्य को स्वीकार करते हुए अतिसंग्रह वृत्तिसे हमें दूर रहना चाहिए। आज समस्त विश्व संग्रह के लिए एक दुसरे के रूधिर का प्यासा बन चुका है अत: आवश्यकता है अपरिग्रहवृत्ति को स्वीकार करने की एवं अतिसंग्रह वृत्ति को त्यागने की इस अपरिग्रह व्रत से हमे स्वास्थ्य एवं शान्ति दोनों की प्राप्ति हो सकती है। अतिसंग्रह का अर्थ है अन्यों के भाग को छिनना। एक ओर हम देखते है किसी को तन ढकने के लिए वस्त्र नही मिल रहे हैं तो दुसरी ओर संग्रह सम्भालने के अभाव में बर्बाद हो रहा है। किसी को सर ढकने के लिए छत नही है तो किसी की गगनचुम्बी इमारतें खाली पड़ी है। कोई भूखा सो रहा है तो किसी के यहाँ अन्न प्रचुर मात्रा में नष्ट हो रहा है। अपना संग्रह सीमित रखकर हम दीन दु:खियों के दु:ख दूर कर सकते हैं तथा पुण्यभागी बन सकते हैं यह पवित्र व्रत स्वीकार करना विश्वधर्म है इससे सम्पूर्ण विश्व में शान्ति का साम्राज्य लाया जा सकता है। अपरिग्रहव्रत से व्यक्ति का अन्त: करण निश्चिंत एवं शान्त रहता है। इस संसार में जितनी अशान्ति है कलह है वे सब संग्रह विषवल्ली के विषाक्त फल हैं। इससे यथा सम्भव बचकर आत्मचिन्तन करना मानव का धर्म है।

द्वितीय योगांग-नियम

शौचसन्तोषतपस्वाध्ययेश्वप्रणिधानानि नियमा: ।

१ - शौच : शौच का शाब्दिक अर्थ है पवित्रता।

बाह्याभ्यन्तर पवित्रता को शौच कहा है।

अन्त:करण की पवित्रता, शरीर की शुद्धता, वाणी की शुद्धता, यह त्रिविध शौच है। सत्याचरण से अन्त: करण पवित्र होता है। जल मृतिका एवं फेनिलादि से शरीर शुद्ध होता है। अन्त:करण की पवित्रता से मन प्रसन्न एवं स्वस्थ रहता है। आन्तरिक आनन्द

मिलता है। शरीर शुद्धि से विविध रोगों से मुक्ति मिलती है। वाणी की पवित्रता से माधुर्य विश्वास आत्मीयता प्राप्त होती है, इसलिए मनु ने कहा है -

अद्‌भि गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।

विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति।।

शौचात्स्वांग जुगुप्सापरैरसंसर्ग (यो.द.सा.पा.सू. ४०)"[३७]

जिस दिन मानवमात्र का मन, वाणी, एवं तन ये तीनों शुद्ध हो जायेंगे उस दिन वसुधातल पर सर्वत्र सुख ही सुख दृग्गोचर होगा। हमारे वस्त्र, गात्र, घर, आंगन सभी शुद्ध हों तभी हम व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, एवं वैश्विक सुख, समाधान एवं आरोग्य प्राप्त कर सकेंगे अतः सभी प्रकार की शुचिता आवश्यक है। बाह्यशुचिता के अभावसे हम शारीरिक रोगों के शिकार बनते हैं। अन्तःशुचिता के अभाव से मानसिक रोगों से पीड़ित होते हैं। अन्तर्शुचिता के लिए बुद्धि की पवित्रता आवश्यक है। मानस शास्त्र में कहा है -

प्रज्ञापराधो हि सर्वरोगाणाम् (मन और मानस रोग)

सभी प्रकार के रोग बौद्धिक अपराधों से होते हैं। अतः सदसद्‌विवेक द्वारा बुद्धि को पवित्र करना आवश्यक है। सद्‌विचारों से मानवसमाज रोगमुक्त होता है। काम क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार ईर्ष्यादि सामाजिक रोग है। इन सामाजिक रोगों के निवारण के लिए क्रोध को शान्ति से काम, को संयम से, अविवेक को विवेक से, राग को वैराग्य से, लिप्तता को अलिप्तता से, अहंकार को नम्रता से, ईर्ष्या को प्रेम से जीतना आवश्यक है। जहाँ शान्ति है, संयम है, विवेक है वैराग्य है, नम्रता है, प्रेम है वहाँ समाज को पीड़ित करने वाले कोई भी रोग नही रह सकते। आवश्यकता है अपने जीवन को दुर्गुण रूपी अशुचिता से दूर करके सद्‌गुण रूपी शुचिता से पवित्र बनाने की, सर्वत्र सद्‌भाव होगा तो चारों ओर आनन्द ही आनन्द होगा। इस स्वस्थता एवं शान्ति हेतु शौच धर्म का पालन करना आवश्यक है।

२ - सन्तोष

सर्वाः सम्पत्तयः तस्य सन्तुष्टं यस्य मानसम् - (नीतिशास्त्र)

जिसका मन सन्तुष्ट है उसे दुनिया का सम्पूर्ण वैभव प्राप्त होता है। जो सुख, दुःख, हानि-लाभ सम्पति विपत्ति सभी अवस्थाओं में आनन्दी रहता है उसे कुछ अप्राप्य नहीं होता है क्योंकि सन्तोष ही सबसे उत्तम खजीना है। जिसे सन्तोष रूपी खजीना मिल गया उसे अन्य किसी वस्तु की आवश्यकता नही होती है। महर्षि पतंजलि ने कहा है -

सन्तोषादनुतमः सुखलाभः (यो.द.सा.पा.सु. ४२)"[३८]

सन्तोष से अनुपम, अत्युत्तम, अपूर्व सुख मिलता है। सन्तुष्ट व्यक्ति त्रिविध तापों से **आध्यात्मिक, आधि दैविक, आधिभौतिक** इन सभी दुःखो से दूर रहता है। किसी कवि ने कहा है -

जो सुख आये तो हँस लेना,

जो दुःख आये तो सह लेना

न कहना कुछ कभी जग से

प्रभु से ही तू कह लेना

(आर्य सत्संग गुटका)

इन अनमोल पंक्तियों के अनुसार यदि हम जीवन व्यतीत करें तो वास्तव में सच्चे सुख को पा सकतें है।

सन्तोष को अमृत की उपमा दी है

सन्तोषामृत तृप्तानां यत्सुखं शान्तचेतसाम्।

कुतस्तद्धन लुब्धानामितश्चेतश्च धावताम्

सन्तोषरूपी अमृत का पान करने वाले शान्तचित व्यक्ति को जो सुख है, वह केवल भौतिकता के पीछे दौडने वालों को नहीं मिलता है। अपने पास विद्यमान साधनों के द्वारा पूर्ण पुरूषार्थ करने के पश्चात् जो भी परिणाम प्राप्त हो उसे बिना किसी शिकायत के प्रेम पूर्वक स्वीकार कर लेना सन्तोष है। आकांक्षा अपेक्षा ऐसी हैं जो कि जितनी अच्छी है उतनी ही बुरी भी है। कर्म करने से पूर्व आकांक्षा अमृत तुल्य है क्योंकि वह हमारे प्रयासों मे प्राण ड़ाल देती है लेकिन कर्म के समाप्त हो जाने पर यदि वह अपनी अभिलाषा के अनुकूल फल न दे तो महाविष तुल्य प्रतीत होती है और हमें निराशा के गर्त मे गिरा देती है। इससे विचलित न होने को ही सन्तोष कहा है। इसी कारण मानव को सन्तोष नियम का पालन करने का आदेश योग शास्त्र ने दिया है। गीता में भी निष्काम कर्म योग का उपदेश इसी सन्तोष भाव की और इंगित करता है। सदसद्विवेकी सत्कर्म करके फलाभिलाषा का त्याग करता है, जो भी परिणाम सामने आता है उसे आनन्द से स्वीकार कर लेता है। इस स्वीकृति भाव से उसके अन्तः करणे में सुखात्मक अनुभूति का आविर्भाव होता है। इस अपूर्व आनन्द की अनुभूति के लिए हमें सन्तोष नियम का पालन करना आवश्यक यह मानव का धर्म है। मनसा-मन से सन्तुष्ट बने, सन्तोषपूर्ण वाणी बोलें, सन्तोष प्रद कर्म करें यह विश्वधर्म है। जो भी, जैसा भी फल हमारे सामने आये उसका स्वागत हम हँसते हुए करें अन्यथा असन्तोष की मृग तृष्णा हमें विनाश की और ले जा सकती है। सन्तोष अमृत है, असन्तोष विष है। सन्तोष रूपी अमृत के पान से विश्व में चारों ओर शान्ति एवं सुस्वास्थ्य का ही साम्राज्य दृग्गोचार होगा। ऐसे सुखद, आनन्ददायक अमृत का प्राशन कर ही लेना चाहिए।

३ तप :

कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः (यो.द.सा.पा.सू.४३)"[३९]

तपस्या से अशुद्धि का नाश होकर तन,मन, वाणी ये सभी शुद्ध होते हैं। मानसिक, वाचिक, कायिक तप के अनुष्ठान से अशुद्धि का क्षय हो जाने से शरीर और इन्द्रिय सम्बन्धी विभिन्न आन्तरिक शक्तियों की प्राप्ति होती है। आँखो की दृष्टि कानों की श्रवण शक्ति, नासिका की गन्ध शक्ति, जिह्वा की रस ग्रहणशक्ति त्वचा की स्पर्शशक्ति बुद्धि की कुशाग्रता, वाणी की मधुरता, शरीर की श्रमशीलता इसी प्रकार सर्व अवयवों की आन्तिरिक शक्ति जागृत होती है। दिव्यशक्तियों का उदय तप से होता है, तपस्वी की प्रत्येक क्रिया दिव्य होती है। आश्चर्य कारक होती है।

वेदों में तप की महिमा का वर्णन स्थान-स्थान पर दृग्गोचार होता है। तप मानव के बाह्याभ्यन्तर पवित्रता का सर्वोत्तम साधन है -

ओ. पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः।

अतप्ततनूर्नतदामोअश्नुते श्रृतास इद्वहन्तस्तत् समाशत।

(ऋग्वेद - ९-८३-१ पृ.२७२)"[४०]

मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष तप बिना पाना असम्भव है। ईश्वर के पवित्र नियम सर्वत्र व्याप्त हैं। वह हमारे प्रत्येक अंग -अंग में रमा हुआ है किन्तु उसका दर्शन नही हो पा रहा है क्योंकि **अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते** तपस्यारहित तनवाला मनुष्य उस सर्वत्र वितत पवित्रता को नही पा सकता। सुवर्ण तभी कुन्दन बनता है जब वह अग्नि में तपाया जाता है सत्यपाल पथिक जी ने कहा है -

पड़ा भट्टी में जब सोना पथिक वह बन गयाकुन्दन।

द्वन्द्वसहनं तपः

सुखदुःख को सहन करना ही तप है तभी असम्भव प्रतीत होने वाले कार्य सम्भव होते है। जो तप की भट्टी में नही तपा वह उस परमानन्द को रस को कैसे पा सकता है ? ईश्वर को रस कहा है - **रसो वै सः** कच्चे घड़े में पानी नहीं ड़ाला जाता। पानी ड़ालने के लिए उसे भट्टी में पकाना पड़ता है। इसीलिए आनन्दरस को भरने के लिए उसे शरीररूपी घट को तपाना पडता है। तप की महत्ता के विषय में वेद कहता है -

ओं-तपसा ये अनाधृष्यास्तपसा ये स्वर्ययुः।

तपो ये चक्रिरे महताँश्चिदेवापिगच्छतात्।। (ऋग्वेद १०-१५४-२)"[४१]

तप के कारण जो आदरणीय है, अतिरस्कृत है, तप से जिन्होंने आनन्द प्राप्त किया, तप से जो महान् बने हैं, उन्हें भगवान् प्राप्त होते हैं एवं स्वयं देवत्त्व को दिव्य गुणों को पारलौकिक अनुपम आनन्द को भी पा लेते हैं। सत्य तप है, सद्भाव से रहना तप है, सौहार्द तप है, एकता तप है, समता तप हैं, बन्धुता तप है। शान्ति प्राप्त्यर्थ प्रयास तप है, सहिष्णुता तप है, सहानुभूति तप है, क्षमा तप है, धैर्य तप है, इन्द्रियदमन तप है, पवित्रता तप है, अक्रोध तप है, विद्यार्जन तप है। ऋग्वेद में कहा है -

ओं - ये चित्पूर्व ऋतसाप ऋतावान ऋतावृधः।

पितृन्तपस्वतो यम ताँश्चिदेवापि गच्छतात्।।

(ऋग्वेद १०-१५४-४)

जो ऋत अर्थात् तप से सम्बन्ध रखने वाले हैं। जो ऋत का आदर करने वाले हैं। तप को वृद्धिंगत करने वाले हैं, जो तपस्वी ज्ञानी है, उन्हें वह सर्वशक्तिमान परमेश्वर समस्त शक्तियाँ प्रदान करता है। सभी समस्याओं का सामना करने का सामर्थ्य देता है।

उनके तप:पुष्पों की सुरभि सम्पूर्ण वसुन्धरा को सुरभिमय बना देती है। तपस्वी निर्भय होता है, सशक्त होता है, उसका मनोबल अतुलनीय होता है, वह जीवन के सभी आँधी तूफानों से संघर्ष करने का सामर्थ्य रखता है। वह सभी विघ्नों को पराभूत कर देता है। काम क्रोध, लोभ, मोहादि षड्रिपु उसे तबा नही सकते क्योंकि वह तपोबल से उन्हें वश में कर लेता है। तप का अर्थ है ज्ञानपूर्वक कर्मो का अनुष्ठान तैतिरीयोपनिषद में कहा है -

ऋतं च स्वाध्याय प्रवचने च। सत्यंच स्वाध्याय प्रवचने च।

तपश्च स्वाध्याय प्रवचने च । दमश्च स्वाध्याय प्रवचने च।

शमश्च स्वाध्याय प्रवचने च। अग्नयश्च स्वाध्याय

प्रवचने च । अग्निहोत्रं च स्वाध्याय प्रवचने च।

अतिथयश्च स्वाध्याय प्रवचने च । मानुषं च स्वाध्याय

प्रवचने च । प्रज्ञा च स्वाध्याय प्रवचने च।

प्रजनश्च स्वाध्याय प्रवचने च। प्रजातिश्च स्वाध्याय

प्रवचने च । सत्यमिति। सत्यवचा राधीतरः तप इति

तपो नित्यः पौरूशिष्टि। स्वाध्याय प्रवचने ऐवेति मौद्गल्यः

तद्धि तपस्तद्धि तपः (तैतिरीयोपनिषद -१-९)"[४२]

ऋत और अध्ययनाध्यापन तप है। सत्य और सत्य का अध्ययनाध्यापन तप है तप का करना कराना तप है। शम और शान्त रहना और शान्त रखना तप है। ज्ञानग्नियाँ और जानना तथा जनाना तप है। अग्निहोत्र और वेद का पढ़ना-पढ़ाना तप है। अतिथियज्ञ ओर ज्ञानग्रहण करना तथा ज्ञानदान करना तप है। सन्तान, सन्तान की उत्पत्ति तथा सन्तान में उत्कर्ष की भावना जागृत करना तप है। इन उपनिषद वाक्यों का मर्म यह है कि स्वाध्याय और प्रवचन के बिना सभी तप अधूरे हैं, स्वाध्याय और प्रवचन इनके पूरक है। अतः स्वाध्याय और प्रवचन मुख्य हैं। मनुजी का कहना है कि जो नित्यप्रति स्वाध्याय करता है

नखशिखान्त तप करता है। ज्ञान ही परम तप है और ज्ञानानुसार आचारण सर्वोष्कृष्ट तप है। इसिलिए कहा है- **ज्ञानं भारः क्रियां बिना ।** तप की भट्टी में स्वाध्याय प्रवचन की ज्वालामें जलकर पापमुक्त होकर अपने को उज्ज्वल, विमल, निर्मल, बनाकर तपको आत्मसात् करने वाले ही आनन्द पाते है। आनन्द कौन नही चाहता सभी चाहते है अतः तप करना स्वयं सर्वथा पावन बनना विश्व धर्म है।

तप का महत्त्व

सृष्टि के आरम्भ में ऋषियों को मनीषा, वाणी, मति, ज्ञान परमात्मा ने तप करने के पश्चात् ही दिया है। किंबहुना इस सृष्टि की उत्पत्ति हेतु साक्षात् परमात्मा ने भी तप किया है उपषिद् में कहा है -

सः तपोऽ तप्यत तस्मात् इमा प्रजा अजायत

उस परमपिता के तपसे ही इस सम्पूर्ण विश्व का सृजन हुआ है अतः किसी भी महान् उपलब्धि के लिए तप आवश्यक है। ज्ञान का आदिमूल परमेश्वर है लेकिन उसका पवित्र ज्ञान अपरिष्कृत को नही मिलता। ज्ञानदान का प्रथम गुरू निस्सन्देह परमेश्वर है, किन्तु पश्चात् गुरूशिष्य परम्परा से ज्ञानधारा निरन्तर बहती है। ज्ञानधारा की पावन परम्परा को अखण्ड प्रवाहित करने हेतु गुरूशिष्य दोनों को ही तपस्या करनी पड़ती है, कठोर नियमों का पालन करना पडता है। परोपकार में तत्पर ध्यान मग्न तपस्वी महात्माओं का इस लोक और परलोक में विशेष स्थान है। तप की महिमा इतनी महान् है कि उसके द्वारा तपस्वी सभी पदार्थो का साक्षात्कार कर लेता है। उपनिषद में कहा है **तपोब्रह्म - (तैतिरीयोपनिषद् -३-४)**"[४३] तप ब्रह्म है और **तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व** तप से ही ब्रह्म को जानना सम्भव है। ब्रह्म को जानने के पश्चात् कुछ भी ज्ञातव्य शेष नहीं रहता। वेद में तो अनेक स्थलों पर तप की महिमा का गौरव गान किया गया है और तप करने का आदेश दिया गया है। **तपो तपिष्ठ तपसा तपस्वान् - (ऋग्वेद -६-५-४)**"[४४]

हे मानव! मनसा, वाचा, कर्मणा सर्वथा तपोपूत बन तभी तेरा जीवन धन्य होगा, सफल होगा एवं अन्तिम लक्ष्य को तू प्राप्त कर लेगा। धैर्य के बिना तप करना सम्भव नही है, अधीर तप नहीं कर सकता। मनु ने तप न करनेवाले की दुर्गति का वर्णन करते हुए कहा है -

अतपास्त्वनधीयानः प्रतिग्रहरूचिर्द्विजः

अम्भस्यश्मप्लवेनेव सह तेनैव मज्जति।।

त्रिष्वप्येतेषु दत्तं हि विधिनाप्यर्जितं धनम्।

दातुर्भवत्यनर्थाय परत्रादातुरेव च ।

(मनु. अ. ४-१९०-१९३ पृ. २१३-१४)"[४५]

अतपस्वी, वेदाध्ययन न करने वाला तथा दान लेने में तत्पर मूढ, पत्थर की नौका के समान भवसागर में डूब मरता है। अतपस्वी को दान देनेवाला धर्मानुकूल धनार्जन करने पर भी अनर्थकारी बनता है क्योंकी श्रम से अर्जित धन उसने अतपस्वी को दिया होता है। तपस्या के बिना लेने वाले का तो इहलोक और परलोक दोनों ही नष्ट हो जाते है। मनुजी कहते है - **तपो विद्या विप्रस्य निःश्रेस्करं परम् (मनु. अ.१२-१०४)** तप और विद्या सभी के लिए मोक्षप्रद है।

न विस्मयेत्तपसा- (मनु.अ.४-२३६)

कल्याणकारक तप करते हुए अहंकार नहीं करना चाहिए । तपः क्षरति विस्मयात् (मनु. अ.४-२३७)

अहंकार से तप का नाश होता है अतः तपस्वी को ऋजु अर्थात् सरल एवं नम्र होना आवश्यक है। नम्रता मानव का अलंकार है, तप तेज है, इन दोनों को प्राप्त करना मानव का धर्म है। तपतरू का आनन्दरूपी फल बहुत ही मधुर होता है, वह फल तपस्वी अकेला

नही खाता सभी को खिलाता है क्योंकि इसे वह अपना धर्म समझता है। तपस्वी व्यक्ति का जीवन सूर्य सम तेजस्वी एवं चन्द्रसम शीतल होता है अर्थात् बाह्यदृष्टि से वह सूर्य तुल्य तेजोमय होता है किन्तु अन्तःकरण चन्द्रतुल्य शीतल होता है। सम्प्रति विश्व को दोनों की नितान्त आवश्यकता है। तपस्या के अभाव में हम अशान्त, दुःखी, श्रमहीन, भोगविलास में लिप्त हो रहे हैं और विविध रोगों के शिकार बन रहे है। यह तप रूपी रत्न हमारे जीवन का अंग बन जाये तो हम, शान्त, सुखी, आनन्दी एवं निरामय जीवन जीने में सफल हो सकते हैं। अशान्ति कौन चाहता है ? दुःख कौन चाहता है ? रोग किसे प्रिय है ? किसी को भी नही तो तप करना वैश्विक धर्म है।

४ चतुर्थ नियम स्वाध्याय :

स्वाध्याय का अर्थ है आत्मचिन्तन तथा वेदादि सद्ग्रन्थों का अध्ययन। महर्षि पतंजलि स्वाध्याय के फल के विषय में लिखते है - **स्वाध्यायादिष्टदेवता सम्प्रयोग : (यो.द.सा.पा.सू. ४४ पृ. १५४)**"[४६]

स्वाध्याय से इष्ट देवता से सम्पर्क हो जाता है। वेदादिशास्त्रों के अध्ययन से, आत्मचिन्तन से जीवन पवित्र एवं ज्ञानमय हो जाता है। अपने स्वरूप का परिचय प्राप्त होता है। सांख्य शास्त्रानुसार नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव का ज्ञान प्राप्त होता है। इस ज्ञान से प्रबुद्ध व्यक्ति सभी दुर्गुणों से दूर रहता है, क्योंकि उसे अपने वास्तविक स्वरूप का बोध हो जाता है और वह अभीष्ट पथ का पथिक बन कर इष्ट देवता को दिव्यगुणों को पा लेता है। ज्ञान को प्राप्त करता हुआ ध्येय की ओर अग्रेसर होता है। स्वयं का अध्ययन, उचितानुचित ज्ञान ही स्वाध्याय है। उपनिषेदोंने अनेकधा कहा है - **स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां मा प्रमदितव्यः** अध्ययनाध्यापन से कभी प्रमाद अर्थात् आलस्य न करें।

अथर्ववेद् में कहा है - **ओं बृहस्पतिना सख्यं जुषाणो यथावशं तन्वः कल्पयाति (अथर्व वेद -७-१०४-१)**"[४७]

इन्द्रिय द्रोह के कारण आत्मा रूपी राजा अपनों सें पराजित हो जाता है किन्तु चिन्तन के द्वारा अर्थात् स्वाध्याय के द्वारा अपनी शक्ति को पहचान लेता है और उस परमेश्वर से सख्य करके उसे मित्र बनाकरके अपनी उलझन को सुलझाकर इन्द्रियों पर विजय पा लेता है। कठोपनिषद् में कहा है आत्मचिंतन करके वास्तविकता का परिचय पाने वाला कोई भी मानव इन्द्रिय जाल में लिप्त होना नहीं चाहता वह अजर अमर अवस्था चाहता है।

जिसने इस संसार की असारता को जान लिया है वह स्वाध्याय द्वारा उस परमपिता के निकट पहुँचने का प्रयास करता है। गहन अध्ययन एवं आत्मचिन्तन से वह इतना ज्ञानी हो जाता है कि उस महान् प्रभु को भी जान लेता है तभी तो कह सकता है -

ओं वेदाहमेतं पुरूषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्। तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।।(यजुर्वेद -३१-१८) [४८]

मैं उस महान तेजस्वी परम पुरूष परमात्मा को जानता हूँ जो अन्धकार से परे है। उसे जानकर ही मृत्यु को जीता जा सकता है और अमरत्त्व को पाया सकता है। इससे भिन्न कोई मार्ग नहीं है। मुक्ति का पथिक बनने हेतु मानव जीवन के अन्तिम लक्ष्य को पाने के लिए स्वाध्याय अनिवार्य है। स्वाध्याय से उस चरमसीमा तक पहुँचना सम्भव है। सच्चा सुख, शान्ति एवं आरोग्य की प्राप्ति के लिए वेद, वेदांग, दर्शन, उपनिषद, ब्राह्मण, आरण्यक तथा अन्य सद्ग्रन्थों का अध्ययन, चिन्तन, मनन निदिध्यासन एवं आचरण परम धर्म है। ज्ञान के समान पावन इस विश्व में कुछ भी नहीं है - **न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते (महाभारत)**

दुःखसागर से पार उतरने के लिए ज्ञान वह नौका है जिसके आश्रय से हम सुख शान्ति का किनारा पा सकते है। शम, दम, तप, सत्य, शान्ति, सुख, अमृत, आनन्द, आदि सभी का गूढ तत्त्व स्वाध्याय से ही जाना जा सकता है। जिस प्रकार चाबी के बिना तिजोरी

में रखा हुआ खजिना नहीं पा सकते उसी प्रकार स्वाध्याय रूपी चाबी के बिना ग्रन्थरूपी खजिना नहीं खोला जा सकता अतः सर्वानन्द की प्राप्ति के लिए स्वाध्याय आवश्यक है।

५ ईश्वर प्रणिधान

समाधिसिद्धिरीश्वर प्रणिधानात् (यो.द.सा.पा.सू ४५) "[४९]

ईश्वर मुझे सदैव देख सुन रहा है इस प्रकार की अनुभूति को मन में बनाए रखकर सभी शारीरिक वाचिक, एवं मानसिक क्रिया कलापों को करना तथा उन सभी कर्मो को बिना किसी आकांक्षा के अति प्रेम से परमपिता परमात्मा को समर्पित करना ईश्वर प्रणिधान है। सखा अपने सखा को सब कुछ दे देता है। यह हुई सांसारिक सखा की बात किन्तु ईश्वर तो सर्वज्ञ अभिन्न अलौकिक सखा है उसे उसीका दिया समर्पित करने में क्या हानि है? लाभ ही लाभ है। **सखा सख्युर्न प्रमिनाति संगिरम् - (ऋग्वेद - ९-८६-१६)**"[५०]

सखा सखा के वचन को नहीं तोड़ता वह साधारण सखा नहीं है, वज्री है। सभी विघ्नों को मार भगाता है ऐसे विघ्न विघातक मित्र के होते हुए हम अभीष्ट पाने में असमर्थ नहीं हो सकते अतः उसे सर्वस्व समर्पित कर देना चाहिए इस विश्व में जो कुछ है उसी ईश्वर का है **"तेरा तुझको अर्पण करते क्या लगे मेरा"** यह भावना हमारे अन्तः करण में विद्यमान रहे। हम अपने कर्तव्य का पालन करते हुए तल्लीन हो जायें यही समर्पण है, ईश्वर प्रणिधान है। हमारी प्रत्येक क्रिया सत्य, शिव, सुन्दर हो तथा समर्पित भावना से की गई हो ।

यह सम्पूर्ण विश्व उस प्रभू का धाम है जैसा कि ऋग्वेद में कहा है -

धामन्ते विश्वं भुवनम् (ऋग्वेद -४-५८-११)"[५१]

वह समस्त प्राणियों के हृदयरूपी सरोवर में रहता है। हृदय की क्या बात, वह सम्पूर्ण जीवन में ओत प्रोत है। समाधि से प्राप्त दिव्य दृष्टि से ही उसे देखा जा सकता है। समाधि भी समर्पण से प्राप्त होती है। छान्दोग्योपनिषद् के अष्टम प्रपाठक के प्रथम खण्ड में

अत्यन्त मनोरम वर्णन मिलता है -**अथ यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽ स्मिन्नन्तराकाशस्तस्मिन यदन्तस्तदन्वेष्टव्यम् (छान्दोग्योप ८-९)**"[५२]

महान् भगवान् सारा जहान लेकर इस हृदय में समाये हुए है। कितना विशाल है यह हृदय । दार्शनिक लोग कहते है - संसार में षड्रस हैं, मधुर रस स्वभाव से जल में है। जल में मधुरता तूने भर रखी है। तेरी उस मधुभरी लहरी का स्वाद हम भी ले। यह लहरी मुक्ति देती है। क्या इस सर्वोच्च पद की प्राप्ति के लिए हम समर्पित भाव से कार्य नही करेंगे? अवश्य करेंगे।

समुद्रादूमिर्मधुमाँ उदारदुपांशुना सममृतत्त्वमानट् - (ऋग्वेद - ४-५८-१ पृ.७६९) "[५३]

हृदय समुद्र से मधुभरी लहर उठी और उसने शान्तभाव से मौन रूप से मोक्ष दे दिया । शान्तभाव से मोक्ष रस का पान करानेवाली इस मधुभरी लहरी मे स्नान करना ही समाधि है जो ईश्वर प्रणिधान अर्थात् समर्पण से प्राप्त होती है।

३. तृतीय योगांग आसन

महर्षि पतंजलि आसनों के विषय में लिखते है-

स्थिरसुखमासनम् (यो. दर्शन साधन पाद सू. ४६)

साधक को धारणा, ध्यान आदि के द्वारा लम्बी यात्रा पर निकलना होता हे, जिसके लिए उसे लम्बे समय तक एक स्थिति में बैठना होता है। बैठने की स्थिति एवं शरीर के विविध व्यायाम आसन कहलाते हैं। आसन अनेक हैं अपनी-अपनी शारीरिक स्थिति के अनुसार हम निरामय रहने के लिए आसनों का चयन कर सकते हैं। उनमें से कतिपय आसनों की विधि एवं लाभ यहाँ प्रस्तुत करना उचित समझती हूँ। सम्पूर्ण विश्व यह जान चुका है कि आसनों का क्या महत्त्व है। आसनों से शरीर निरामय रहता है। स्फुर्ति मिलती है विविध व्याधियाँ भस्म हो जाती हैं।

जिससे कोई हानि न हो ऐसे आसनों का चयन सभी को अपने स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए करना आवश्यक है। आरम्भ में योग्य गुरू से सीखना चाहिए अन्यथा लाभ के स्थान पर हानि हो सकती है। सभी आसन सभी आवस्थाओं में नहीं किये जा सकते । महिलाओं को गर्भावस्था एवं मासिक धर्म काल में कठिन आसन नहीं करने चाहिए जिनसें गर्भपात एवं अतिस्राव की समस्या निर्माण होती है। महिलाओं की शरीर रचना एवं पुरूषों की शरीर रचना भिन्न है अतः महिलाओं एवं पुरूषों की योगकक्षाएँ भी स्वतंत्र ली जानी चाहिएँ।

कतिपय आसन जो सभी कर सकते हैं

१- हस्तचक्रासान - प्रथम एक हाथ को चक्र की भाँति घुमाना, दुसरी अवस्थामें दुसरा हाथ घुमाना, तिसरी अवस्था में दोनो हाथो को दोनों बाजूओं से घुमाना, आगे से और पछिे से उभय पक्ष से । इस आसन से हाथों के सभी स्नायु शिथिल होकर उनमें हलकापन आ जाता है। हाथों का दर्द या कोई अकड़ी हुई नस हो तो वह भी ठीक हो जाती है।

२- गोमुखासन - एक पैर पर बैठकर दूसरा पैर उस पर रखें पूरी तरह ऊपर लें और बाएँ हाथ को नीचे से पीछे की ओर से ऊपर लें दाएँ हाथ को ऊपर से नीचे लाते हुए बाएँ हाथ की ऊँगलियों को पकडें बाएँ हाथ को मोडते हुए दाएँ स्कन्ध की ओर ले जाएँ और दाएँ हाथ की ऊपर से आती हुई ऊंगलियों को पकडे । इसी प्रकार दाएँ पैर बैठकर दाएँ हाथ को मोड़कर नीचें से ऊपर ले जाएँ दाएँ हाथों को बाएँ स्कन्ध की ओर ले जाएँ, बाएँ हाथ को ऊपर से नीचे लाते हुए दाएँ हाथ की ऊंगलियों को पकडें। इस आसन से हाथ की नसें जोडों का दर्द समाप्त होता हैं।

३- त्रिकोणासन - खड़े होकर बाएँ घुटने को मोड़कर बाएँ हाथ को बाएँ घुटने पर रखें और दाँए हाथ को ऊपर सीधा खींच कर स्थिर हो जायें। इससे घुटनों का स्कन्धों का तथा कमर का दर्द समाप्त हो जाता है।

४- पश्चिमोत्तमासन - जमीन पर बैठकर पैरों को फैलाकर समीप ले आएँ और हाथों से अंगुष्ठ पकड़कर नासिका को घुटनों को लगाने का यथासामर्थ्य प्रयास करें। इस आसन को करने से पीठ का दर्द समाप्त होता है।

५- आकर्णधनुरासन - पश्चिमोत्तमासन की अवस्था में फैलाए हुए पैरों में से एक पैर को प्रथम दाएँ पैर को बाएँ हाथ में पकडकर कर्ण का स्पर्श करें तथा दाएँ हाथ से बाएँ पैर के अंगुष्ठ को पकडें इसी प्रकार दूसरी ओर से। इस आसन से एडियों एवं पिण्डलियों का दर्द समाप्त होता है।

६- ताडासन - धीरे - धीरे बाजु से हाथों को फैलाकर ऊपर की ओर ले जाएँ और एडियों को ऊपर उठाकर पंजों पर खड़े हो जाए और धीरे-धीरे नीचे ले आएँ । इस आसन को अपनी सुविधा के अनुसार दो या तीन बार कर सकते हैं। इस आसन से शरीर के सभी अवयवों का व्यायाम हो जाता है। शिशुओं की ऊँची बढ़ाने के लिए यह आसन अत्युत्तम है।

७- सर्पासन - प्रथम पेट के बल लेट जाएँ और धीरे-धीरे हाथों के बलपर सिर से कटि तक आगे से ऊपर उठें। इस को दो से तीन बार कर सकते हैं। इससे कटि पेट तथा कमर के रोग नष्ट होते है।

८- शलभासन - पेट के बल लेटकर दोनों हाथों को जंघा के नीचे लेकर यथासम्भव पृष्ठ भाग से पैरों को तथा अग्रभाग से सिर को उठाएँ। इसे हम दो से तीन बार कर सकते हैं। यह आसन पेट की चर्बी को कम करने में सहायक है।

९- उत्तानपादासन - पीठ के बल लेट कर हथेलियें को नितम्भ के नीचे लेकर आगे से पैरों को ऊपर उठाएँ तथा सिर को भी यथासम्भव उठायें इसे भी दो से तीन बार कर सकते हैं। इस आसन से पीठ पिण्डलियाँ एवं गर्दन के रोग समाप्त होते है।

१०- मकरासन - पेट के बल लेटकर सिर को थोडा ऊपर उठायें दोनों हाथों की कोहनियों को जमीन पर रखकर हथेलियों को दोनों गालों के दोनों ओर लगाकर पीछे से एक पैर को क्रमशः ऊपर नीचे करें तथा अन्त में दोनों पैरों को एक साथ ऊपर नीचे करे। इस आसन से कटि वेदना समाप्त होती है।

११- कटिचक्रासन - पीठ के बल पर लेटकर हाथों को दोनों बाजु से समीप रखकर बीच से कमर को उठाएँ इस आसन से कटिवेदना पूरी तरह समाप्त होती है। यह आसन दो से तीन बार कर सकते हैं। इस प्रकार असंख्य आसनों में से अपने स्वास्थ्य के लिए उपयुक्त आसन को चुन लेना चाहिए। निरामय जीवन के लिए आसनों का असामान्य स्थान है।

जिस प्रकार शारीरिक स्वास्थ्य के लिए स्थिर सुख के लिए आसनों की आवश्यकता है उसी प्रकार मानसिक स्वास्थ्य एवं मन की शान्ति के लिए प्राणायाम की आवश्यकता है।

४ प्राणायाम

प्र. उपसर्ग पूर्वक अन-प्राणने धातु से प्राणायाम शब्द बना है। प्राणों का आयाम् अर्थात् वशीकरण को प्राणायाम कहा जाता है। प्राणायाम के विविध प्रकार है। यहाँ उन प्राणायामों का विवेचन किया जा रहा है। जो सभी के लिए करणीय है-

१- भस्त्रि का प्राणायाम - भस्त्रिका का अर्थ है लोहकार का भाता। जिस प्रकार भाँते में वायु अन्दर बाहर की जाती है। उसी प्रकार दीर्घ श्वास अन्दर लेना और बाहर छोड़ना इससे प्राण वायु फेकड़ों में भरा जाता है और अशुध्द वायु वेग के साथ बाहर फेंका जाता है। इससे कफ की निवृत्ति हो जाती है श्वास लेने में सुविधा होती है उर्ध्व श्वास आदि बीमारियों से मुक्ति मिलती है।

जिस प्रकार अग्नि में तपाने से सुवर्ण आदि धातुओं के मल दग्ध होकर वे चमकती हैं उसी प्रकार प्राणायाम की अग्नि से इन्द्रियों के सभी दोष दग्ध हो जाते हैं।

प्राणों की गति के विच्छेद को प्राणायाम कहा गया है। पूरक, कुम्भक, रेचक इस परिभाषा को सार्थक करने वाले प्राणायाम हैं।

३-अनुलोमविलोभ - नासिका स्थित लोमों के अनुकूल एवं प्रतिकूल प्रक्रिया को अनुलोम - विलोम कहते है।

विधि -

प्रथम अंगुष्ठ से दक्षिण नासापूटी को बन्द करना और वाम नासापुटी से श्वास अन्दर भरना, भरे हुए श्वास को वाम नासिका को मध्यमा एवं तर्जनी से बन्द करके दक्षिण, नासापुढी से बाहर छोड़ना फिर दक्षिण से भरना और वाम से छोड़ना यह प्रक्रिया अपनी सुविधा के अनुसार दस या पन्द्रह मिनट तक करना अनुलोम विलोम कहलाती है। इस प्राणायाम से मस्तिष्क शान्त होता है। पुनः पुनः होने वाला प्रतिश्याय एवं कास से मुक्ति मिलती है।

४- उज्जयी - गले को खींचते हुए किञ्चित् ध्वनि गले से निकालते हुए नासिका से श्वास अन्दर भरना दबाना, एवं दक्षिण नासापुढी को बन्द करके वाम नासिका से श्वास बाहर छोड़ना। इस प्राणायाम से गलगण्डों के सभी रोग समाप्त हो जाते हैं। यह प्राणायाम तीन से सात बार कर सकते हैं।

५- स्तम्भवृत्ती - भस्त्रिको करते हुए श्वास को अचानक जहाँ है वहाँ रोक देना। यह है वशीकरण स्तम्भवृत्ति इससे तीव्र गति से श्वास लेने के कारण गले की खरास दूर होकर कफ साफ हो जाता है। यह प्राणायाम दो या तीन बार ही करना उचित है अन्यथा नासिका एवं गले में वेदना हो सकती है।

६- भ्रामरी - भ्रमर अर्थात् भौंवरा यह प्राणायाम करते समय दोनों अंगुष्ठो से दोनों कान बन्द करना, तर्जनियों को भ्रकृटियों पर रखना एवं अन्य उंगलियों को आँखोंपर रखकर मध्यमा से किञ्चित् आँखो के मूल में दबाते हुए दीर्घ श्वास भरकर नासिका से भ्रमर जैसी ध्वनि निकालना भ्रामरी प्राणायाम कहलाता है। यह प्राणायाम ग्यारह से इक्कीस या अपनी सुविधा के अनुसार अधिक भी कर सकते हैं इस प्राणायाम से अनिद्रारोग समाप्त होता है सम्प्रति बहुत लोग इस रोग से ग्रस्त हैं। इस रोग से मुक्ति पाने के लिए भ्रामरी प्राणायाम अत्युपयुक्त है।

७- शीतली - जिह्वा को बाहर निकालकर दोनों ओर से मोड़ते हुए नलिंका आकर देकर उससे वायु को अन्दर खींचते हुए कुछ समय अन्दर रखकर नासिका से सहज गति से बाहर छोड़ना शीतली प्राणायाम कहलाता है। इस प्राणायाम से शरीर में बढ़ी हुई उष्णता कम होती है। विशेष करके ग्रीष्म ऋतु में यह प्राणायाम लाभदायक है।

८- शीतकारी - ओंठो को फैलाते हुए दांतो को बन्द करके दाँतो से वायु को अन्दर खींचना तथा कुछ समय रखकर छोड देना है

आरोग्य हेतु

१- नाकुली /१८ बासा (अडुळसा)

२-ब्राम्ही /१९ कण्टकारि /

३- शंखपुष्पी २० मकोय/

४-घृतकुमारी / ११-मन्दार (रूचिका)।

५- संजीवनी /२२- मालती / पुष्पाणि

६- जेष्ठमध (धमुयष्टि) २३ - गेंदा २४- बिल्व - फलम् पुष्पम् पत्रम् वल्कल

७- जपाकुसुमानि २५-आर्द्रकम्

८- पलाशपुष्पाणि - पत्राणि / २६- तुलशी

९-जटामांसी /२७- धन्वन्तरी

१०-वचा /२८ पुनर्नवा

११- अश्वगन्धा / २९- गोक्षुरम् (गोखरू) ३०- दाडिमः

१२- भृंगराज / ३१ अमृत फलम् पत्रम्

१३- खरपुंखा

१४- पर्णबीजम

१५-शिंशपत्रणि

१६- ज्योतिष्मती

१७- वाकुची

प्रतिदिन करने के आसन

१. शीर्षासनम्

२. सर्वांगासनम्

३. हलासनम्

४. पश्चिमोत्तमासनम्

५. आकर्ण धनुरासन भुजंगासागसन्

६. जानु नासास्पर्शनम्

७. बकासनम्

प्राणायाम के लाभ

१. प्राणायाम से आयु की वृद्धि होती है।

२. प्राणायाम से शारीरिक और मानसिक उन्नति होती है।

३. प्राणायाम से रोग दूर होते हैं।

४. प्राणायाम से कुत्सित मनोवृत्तियाँ नष्ट होती हैं।

५. प्राणायाम से प्राण वश में होने से इन्द्रियाँ और मन भी वश में हो जाते हैं।

६. प्राणायाम से प्राण वश में होने सें इन्द्रियाँ और मन भी वश में हो जाते हैं।

७. प्राणायाम से धातुओं की पुष्टि होती है।

८. प्राणायाम से हृदय पर पड़े तम के आवरण का नाश होता है,

५- प्रत्याहार

स्वविषयासंप्रयोग चित्त स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहार : (यो.द.सा.पा.सू. ५४) "[५४]

अपने - अपने विषयों के साथ सम्बन्ध न होने के कारण इन्द्रियों की चित्तस्थिति के समान स्थिति का नाम प्रत्यहार है। इन्द्रियों का बाह्यविषयों में जाना सहज स्वभाविक है, उस सहज स्वभाव के विपरीत अन्तर्मुख होने को प्रत्याहार कहते हैं।

६- धारणा

देशबन्धविश्चत्तस्य धारणा (यो.द.वि.पा.सू.१)"[५५]

चित्त का देश विशेष (शरीर के नासिकाग्र, जिव्हाग्र, हृदयकमल, आदि अंगो- विशेष) में स्थिर करना धारणा है।

७- ध्यानम् तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्

(यो.ग.वि.पा.सूत्र-२)"[५६]

धारणा के पश्चात् ध्येयपदार्थ में होने वाली चित्तवृत्ति की एकतानता को ध्यान कहते है।

८- समाधि

तदेवार्थ मात्र निर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः

(यो.वि.पा.सूत्र-३)"[५७]

अपने ध्यानात्मक रूप से रहित केवल ध्येय रूप में प्रतीत होने वाले उक्त ध्यान को समाधि कहते हैं। त्रिपुटी अष्टांगयोग से योगियों की तो उन्नति होती ही है, सांसारिक मनुष्यों को भी इससे रोगमुक्ति से शान्ती मिलती है अत योगाभ्यास विश्वधर्म है।

संदर्भ सूची :

१. ऋग्वेद -१-१६-७१, महर्षि दयानन्द सरस्वती- ऋग्वेद हिन्दी भाष्य

२. यजुर्वेद -३१-१८,महर्षि दयानन्द सरस्वती- ऋग्वेद हिन्दी भाष्य

३. कठोप - ५-१२, महर्षि दयानन्द सरस्वती- ऋग्वेद हिन्दी भाष्य

४. कठोप - ५-१३, महर्षि दयानन्द सरस्वती- ऋग्वेद हिन्दी भाष्य, पृ.५२

५. ऋग्वेद -१-१०-१९, महर्षि दयानन्द सरस्वती- ऋग्वेद हिन्दी भाष्य

६. ऋग्वेद ५-३०-४, महर्षि दयानन्द सरस्वती- ऋग्वेद हिन्दी भाष्य

७. गीता ६-३४

८. यजु: ३४-१

९. आ.ध.सू.-११-३, हरदत्तमिश्र, आपस्तम्ब धर्मसूत्र, पृ. १६३

१०. मनु: ६-६२ पं. तुलसीराम स्वामी- मनु:भाषानुवाद -१८७

११. आ.ध.सू.१३-५ हरदत्तमिश्र,आपस्तम्ब धर्मसूत्र, पृ. १७५

१२. आ.ध.सू.१४-६ हरदत्तमिश्र, आपस्तम्ब धर्मसूत्र पृ.१७६

१३. योग.स.पा. सूत्र. २- जगदीश्वरानन्द षड्दर्शनम्, पृ.४५

१४. कठोप २-६-११, सिद्धरामेश्वरशास्त्री चित्राव, उपनिषदाचं मराठी भाषांतर, पृ. १०१

१५. यो.द.सा.पा.सू. ५, जगदीश्वरानन्द षड्दर्शनम्,पृ.४५

१६. श्वेता श्वेतादोपनिषद् उपनिषद् अंक

१७. गीता - २-४८

१८. गीता -२-५०

१९. अथर्व कां १९ सू.१५-६ क्षेमकरणदास त्रिवेदी अथर्व हिन्दी भाष्य

२०. यजुः - १२-३२, महर्षि दयानंन्द सरस्वती यजुः हिन्दी भाषा भाष्य

२१. सामवेद- उत्तरार्चिक, पं. तुलसीरामस्वामी साम हिन्दी भाषा भाष्य

२२. सामवेद ४-४२

२३. बृहदारण्यक - ४-५-३

२४. ब्रहद् आ. ४-५-३

२५. बृहद् आ. ४-५-६

२६. यजुर्वेद -३६-१८ महर्षि दयानन्द स. ऋग्वेद हिन्दी भाषा भाष्य

२७. यजुः १-१, महर्षि दयानन्द स. ऋग्वेद हिन्दी भाषा भाष्य

२८. ऋग्वेद५-११-२, महर्षि दयानन्द स. ऋग्वेद हिन्दी भाषा भाष्य

२९. ऋग्वेद -७-१०४-१२, महर्षि दयानन्द स. ऋग्वेद हिन्दी भाषा भाष्य

३०. ऋग्वेद -७-१०४-१२, महर्षि दयानन्द स. ऋग्वेद हिन्दी भाषा भाष्य

३१. मनुः ६-४६, पं. तुलसीरामस्वामी. मनुः भाषानुवाद, पृ.२८२

३२. छान्दोग्य उप. ४-४, उपनिषद अंक , पृ. ४३८

३३. यो.द.सा.पा.सू. ३६, जगदीश्वरानन्द, षड्दर्शनम्

३४. यो.द.सा.पा.सू. ३६, जगदीश्वरानन्द, षड्दर्शनम्

३५. यजुः अ. ४०-२, महर्षि दयानन्द सरस्वती, ऋग्वेद हिन्दी भाष्य

३६. मनुः अ. २१५, पं. तुलसीराम स्वामी मनुः भाषानुवाद- ११३

३७. यो.द.सा.पा.सूत्र ४०, जगदीश्वरानन्द, षड्दर्शनम्

३८. यो.द.सा.पा.सू. ४२, जगदीश्वरानन्द, षड्दर्शनम्

३९. यो.द.सा.पा.सू.४३, जगदीश्वरानन्द, षड्दर्शनम्

४०. ऋग्वेद-९८३-१, महर्षि दयानन्द सरस्वती, ऋग्वेद हिन्दी भाष्य, पृ.२७२

४१. ऋग्वेद-१०-१५४-२, महर्षि दयानन्द सरस्वती, ऋग्वेद हिन्दी भाष्य, पृ.२७२

४२. तैत्तिरीयोपनिषद् १-९, महर्षि दयानन्द सरस्वती, ऋग्वेद हिन्दी भाष्य,

४३. तैत्तिरीयोपनिषद् ३-४, महर्षि दयानन्द सरस्वती, ऋग्वेद हिन्दी भाष्य,

४४.मनुः ४-१९०,९३, पं. तुलसीरामस्वामी, मनुः भाषानुवाद, पृ.२१३,१४

४५. यो.द.सा.पा.सू.४४, जगदीश्वरानन्द, षड्दर्शनम्, पृ.१५४

४६. अथर्व १०४-१, क्षेमकरणदास त्रिवेदी अथर्ववेद हिन्दी भाष्य

४७.यजुर्वेद-३१-१८, महर्षि दयानन्द स.यजु. हिन्दी भाषा भाष्य

४८. यो.द.सा.पा.सू.४५ जगदीश्वरानन्द, षड्दर्शनम्,

४९. ऋग्वेद ९-८६-२६, म.द.स. ऋग्वेद हिन्दी भाष्य

५०. ऋग्वेद, ४-५८-११

५१. छान्दोग्योपनिषद् ८-९

५२. ऋग्वेद ४-५८-१, म.द.स. ऋग्वेद हिन्दी भाष्य, पृ.७६९

५३. यो.द.सा.पा.सू.५४ जगदीश्वरानन्द, षड्दर्शनम्,

५४. यो.द.सा.पा.सू.१ जगदीश्वरानन्द, षड्दर्शनम्,

५५. यो.द.सा.पा.सू.२ जगदीश्वरानन्द, षड्दर्शनम्,

५६. यो.द.वि.पाद, जगदीश्वरानन्द, षड्दर्शनम्,

****

पंचम अध्याय

उपसंहार

ओ३म् यथासूर्यो मुच्यते तमसस्परि रात्रिं जहात्युषश्च केतून्

एवाहं सर्वदुर्भुतं कत्रं कृत्या कृतं हस्तीव रजो दुरितं जहामि।।

(अथर्ववेद - १०, १, ३२) "[१]

(धर्मसूर्य)

१. घनघोर पसरता सन्नाटा, जग को भयभीत बनाता है।

गहन तमिस्रा चीर दिवाकर, अघनिशा को आकर मिटाता है।

२. कुटिलकेत संकेतरात्रि के आ दिनकर दूर हटाता है।

तब उषा सुन्दरी का स्वर्णिम. अरूणिम सौन्दर्य सुहाता है।।

३. रूपाकर्षण में सूर्य नहीं किंचित् भी फंसने पाता है-

वह अपनी प्रखर रश्मियों से, उत्थान सृजन चमकाता है।।

४. आदर्श सूर्य की वंशज हूँ मैं, प्रण उसका मुझको निभाना आता है।

हर हिंसक और दुराचारी हर क्षण मुझ से भय खाता है

५. मेरा जयरथ आगे, आगे वैसे ही दौड़ लगाता है।

जैसे गजराज लोकान्तर में निर्भय झूमता जाता है।।

आदित्य नित्य मुस्काता है।

विश्वकल्याण

मन्त्र श्रुत्यं चरामसि (ऋग्वेद - मं -१०,१३४,७)"[२]

हम मन्त्र श्रवण के अनुसार चलें अर्थात् मानव कल्याणार्थ वेदों ने जो आदेश दिये हैं, उसी के अनुसार हमारा आचरण होना चाहिए। ईश्वर ने वेदों के द्वारा मानव कल्याणार्थ जीवनोपयोगी सिद्धान्त बनाए हैं। उनके पालन से विश्व का कल्याण अवश्य होगा। वेदों का आदेश है ।

पक्षेभिरपि कक्षेभिरत्रापि संरभामहे।

(ऋग्वेद-१०-१३४-७)

किसी को भी घृणा या तुच्छता की दृष्टि से न देखें। संकेत से यह मन्त्र उँच-नीच भाव को समाज के लिए घातक कहते हुए तुच्छता की भावना को त्यागने की प्रेरणा दे रहा है। सबसे एकरूप होकर रहने में मानव का कल्याण निहित है। इसी को एकता, विश्वबन्धुता, सौहार्द, स्नेह, सिद्धान्त हैं कहा है।

श्रोतव्यः श्रुति वाक्येभ्यः (स्वाध्याय सन्दोह पृ.२०)"[३]

वेद वचनों के श्रवण द्वारा आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहिए। वेद से बढ़कर आत्मज्ञान कराने वाला ग्रन्थ ब्रह्माण्ड में दूसरा नहीं है। वेदाध्ययन से ही मानव कर्तव्याकर्तव्य को यथार्थ रूप में समझ पाता है। आत्मज्ञान के बिना मानव जीवन अपूर्ण है। आत्मकल्याण के लिए वेदों का आश्रय लेना आवश्यक है।

वैदिक वाङ्मय में विश्वकल्याण की कामना

ओ३म्- स्वस्तिमात्र उत पित्रो नो अस्तु स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरूषेभ्यः विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु ज्योगेव दृशेम सूर्यम्।। (ऋग्वेद -१-३१-४)"[४]

सभी मनुष्यों को सब के कल्याण की कामना करनी चाहिए यह मानव धर्म इस मन्त्र में अतीव मार्मिक शब्दों में बताया गया है। उस में भी माता-पिता की मंगलमयता की कामना को प्रथम स्थान दिया गया है। यह वैदिक वाङ्मय की विशेषता है। सन्तान के

पालन पोषण में जो कष्ट माता-पिता उठाते हैं, उससे मुक्त होना सम्भव नहीं है अतः उनकी सेवा करके सभी प्रकार से उन्हें आनन्द में रखना ही सर्वोत्तम है।

पिता के कल्याण की कामना हम कठोपनिषद् में नचिकेता वर में देख सकते हैं। अपने क्रुद्ध पिता से

मृत्यवे त्वा परिददामि -

मैं तुझे मृत्यु को देता हूँ यह वचन सुनकर जब नचिकेता यम के द्वार पर पहुँचा और तीन दिन और तीन रात्री उसके द्वार पर भूखा प्यासा रहने के कारण यम अपने सन्तोष के लिए उसे तीन वर देने को तैयार हो जाता है तो नचिकेता सर्व प्रथम वर अपने पिता के कल्याण का वर माँगता है।

शान्तसंकल्पः सुमना यथा स्याद् वीतमन्यु गौतमो माभि मृत्यो! त्वत् प्रसृष्टं माभि वदेत प्रतीत एतत् त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे।। (कठोप - १-१-२०१०)[५]

हे मृत्यो। तीन वरों में प्रथम वर मैं यह माँगता हूँ कि मेरे पिता गौतम ऋषि शान्तसंकल्प प्रसन्नमन तथा क्रोध रहित हो जायें और आप के पास से लौट जानेपर मुझे प्रसन्नता से प्यार से बुलाएँ।

पिता ने पुत्र को मौत के हवाले करने की बात क्रोध में कही थी जब वे मन्यु रहित हुए तब उन्हें अपनी बात पर पश्चाताप हुआ। नचिकेता कितना संस्कारी पुत्र था जो अपने पिता की निश्चिन्तता की माँग कर रहा है। क्या आज इस धरा पर ऐसा पुत्र दीप लेकर घूमने से भी मिल सकता है ? उत्तर नहीं होगा। आज हम माता-पिता की हत्या करने वाले पुत्रों की कथाएँ दिन प्रतिदिन समाचार पत्रों में दूरदर्शन पर देख रहे हैं। धन्य थे वे गौतम और नचिकेता, श्रावणबाल और पुण्डलीक, राम और दशरथ, नन्द बाबा और कान्हा जो विश्व में अपने धर्म पालन के कारण अजर-अमर हो गये। आज भी उनके नाम इतिहास के पन्नों

पर स्वर्णाक्षरों में अंकित हैं। माता-पिता का महत्त्व तो वैदिक वाङ्मयस्थ यज्ञ संस्कृति से भी स्पष्ट होता है।

माता-पिता की मंगलमयता के साथ गो आदि पशुधन की भी मंगल कामना की आज्ञा वेदिक वाङ्मय में विद्यमान है। गो से दधि, घृत आदि मधुर पदार्थ प्राप्त होते हैं। अत: उनकी सेवा करना पशुकल्याण है पशुओं के कल्याण में ही हमारा कल्याण निहित है। गौ आदि पशु विश्व को आरोग्य सम्पन्न बनाते हैं जिससे मानव मात्र का कल्याण होता है। सम्पूर्ण मानव जाति जब एक दूसरे के कल्याण की कामना करेगी तो सर्वत्र अहिंसा, सौहार्द, सहिष्णुता आदि का साम्राज्य निश्चत आयेगा

"अपने राष्ट्र का कल्याण विश्वधर्म है"

ओं-सत्यं बृहत् ऋतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञ: पृथिवी धारयन्ति।

सा नो भूतष्य भव्यस्य पत्न्युरूं लोक पृथिवीन: कृणोतु।।

(अथर्व -११-१-१)"[६]

राष्ट्र एवं विश्व की रक्षा के लिए जिन गुणों की आवश्यकता है उन सभी गुणों का उल्लेख इस मन्त्र में आया है।

१. सत्यम् - अविचल सत्यता - जो लोग अपने देश के प्रति सच्ची भावना नहीं रखते, सच्चा व्यवहार नहीं करते वे स्वदेश की वञ्चना करके स्वयं को अधोगति के गर्त मे धकेलते हैं। अत:स्वदेश की रक्षा हेतु निष्कपट सत्य व्यवहार करना आवश्यक है। वेद में अन्यत्र भी उल्लेख है-

सत्येनोत्तभिता भूमि: (अथर्व - १४-१-१)"[७]

पृथिवी सत्य के सहारे स्थिर है। जिस दिन सत्य सूर्य अस्त हो जायेगा पृथिवी का अर्थात् इस विशाल विश्व का कोई अस्तित्व शेष नही रहेगा। वेद राष्ट्र हित में सत्य को

सर्वप्रथम स्थान देता है। वेद की दृष्टि में सत्य सर्वोपरि धर्म है अतः सत्यधर्म का पालन वैश्विक धर्म है। हमारी स्मृतियों ने भी सत्य को सबसे बड़ा धर्म माना है-

न हि सत्यात्परोधर्म : (मनुस्मृतिः)

२. बृहत् - महत्त्वाकांक्षा देश की रक्षा के लिए हर मानव के मन में महत्त्वाकांक्षा होनी चाहिए।

३.ऋतम्- न्याययुक्त । अत्यन्त परिश्रम तथा तितिक्षा से प्राप्त स्वातन्त्र्य की रक्षा के लिए ऋत अर्थात् सत्य व्यवहार आचारण नितरां आवश्यक है। वेद तो ऋत का ही साथ देते हैं, ऋत धर्म के प्रचारक है।

ऋतस्य देवा अनुव्रतागुः (ऋग्वेद -१-६५-२)[८]

दैवी शक्तियाँ ऋत के व्रतानुसार चलती हैं। ऋताय पृथिवी बहुले गभीरे (ऋग्वेद -४-१३-१०)[९]

ये विशाल द्यौ और पृथिवी ऋत के लिए है अर्थात् ऋतव्रती, ऋतधारी, ऋतवादी,ऋतचारी, ही इस वसुन्धरा पर वास करने का अधिकारी है। सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, द्युलोक ये सभी ऋत के अनुकूल चल रहे हैं अतः ऋतपालन विश्वधर्म है।

४. उग्रम् - तेजस्विता । स्वतन्त्रता संग्राम में कभी ऐसे कार्य भी करने पड़ते हैं जो सामान्य स्थितिमें किसी को प्रिय न हों। ऐसे समय में भीरू लोग धैर्य छोड़कर बैठते हैं। उन्हें व्यामोह घेर लेता है। प्रत्येक कार्य का अपना एक विशेष अवसर होता है। वह अवसर तेजस्विता कहा है।

५. दीक्षा - दृढसंकल्प। किसी भी कार्य की सफलता के लिए दृढसंकल्प आवश्यक है। वेद में दीक्षा का बहुत महत्त्व है।

भद्रमिच्छन्त ऋषयः सवविद्रस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे (अथर्व १९-४१-१) "[१०]

आनन्द प्राप्ति के रहस्य को जानने वाले ज्ञानी जनकल्याण की कामना से पहिले तप और दीक्षा को स्वीकार करते हैं और तदनुसार आचरण करते हैं।

६. तप - तितिक्षा। कार्य सिद्धि होने से पूर्व अनेक विघ्न आते हैं। कईबार असफलता मुख खोले सामने खडी रहती है।

श्रेयंसि बहूनि विघ्नानि उत्तम कार्यो में विघ्न बहुत होते हैं। उन विघ्नों को तथा बुभुक्षा - पिपासा, सर्दी, गर्मी सुख-दुःख आदि की परवाह न करके लक्ष्य की ओर गमन हेतु सब कुछ सहन करना पड़ता है, इसी को तप कहते है।

७. ब्रह्म - ब्रह्मचर्य - संयम, आत्मज्ञान, कल्याणाभिलाषी को इसका विशेष रूप से पालन करना चाहिए। दुष्टों के पास विद्वानों को गिराने के अनेक उपाय होते हैं। मनुष्य में अनेक दुर्बलताएँ है। उनमें एक दुर्बलता बड़ी भयंकर है। जैसा कि उपनिषद् में कहा है -

बलवानिन्द्रिय ग्राम विद्वांसमप्यपकर्षति - इन्द्रिय समूह बड़ा बलवान् है बड़े बड़े ऋषि मुनियों को भी पतन की ओर ले जाता है। पुरूष को पतित करने के लिए स्त्री तथा स्त्री को पतित करने के लिए पुरूष बहुत दारूण हाथियार है। तभी तो यम ने नचिकेता की परीक्षा लेने के लिए कहा था-**इमाः रामाः सरथाः सतूर्य्याः (कठोपनिषद्)**

सदाचार से संयम से राजा राष्ट्र की रक्षा करता है,

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति। अथर्व

सदाचार से आत्मज्ञान एवं अपनी शक्ति का परिचय मिलता है।

स्वपर कल्याण के लिए आत्मशक्ति ज्ञान आवश्यक होता है।

८. यज्ञ - उत्तम कर्म-दान-विद्वानों का सम्मान आदि यज्ञ के विविध अर्थ हैं।

यज - देवपूजा संगतिकरण दानेषु इस धातु से यज्ञ शब्द निष्पन्न होता है। कल्याणकारी हितैषी कलाकोविद महापुरूषों के साथ सदा रहने से देश हित स्वहित एवं विश्वहित के नित नूतन भाव तथा उत्तमोत्तम प्रेरणाएँ मिलती है, जिस देश में विद्वानों का सत्कार नही होता

वहाँ सदा दुःसख, दारिद्र्य, मृत्यु, भय बने रहते हैं। क्योंकि यथेष्ट आदर न पाकर विद्वान् दूसरे देशों में चले जाते हैं अथवा विद्यादान का कार्य छोड़ देते है। इन आठों ही सिद्धान्तों का आचरण विश्वकल्याण के लिए अत्यावश्यक है।

पुरुषार्थ :

विश्वकल्याण के लिए पुरुषार्थ की अत्यन्त आवश्यकता है। पुरुषार्थ का अर्थ है कठोर परिश्रम, जिसके द्वारा वैश्विक अनुचित प्रथा रीति अन्धविश्व शत्रुता आदि दुष्प्रवृत्तियों का नाश किया जा सके उसे परुषार्थ कहते हैं।

पुरूषस्य- अर्थः पुरूषार्थः षष्ठीतत्पुरूष - जो अपने और पराये सभी के दुःखों को दूर कर सके। ऋग्वेद में कहा है

ओ३म् - एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम्।

पतयन्मंदयत्सखा। (ऋग्वेद मं.१ -सू.४ - मं ७)"[११]

पुरुषार्थ मानवमात्र का धर्म है। पुरुषार्थ के बिना किसी को भी सच्चा सुख, शान्ति, सफलता तथा आनन्द नहीं मिल सकता। पुरूषार्थ के बल पर ही आज मानव चाँद पर पँहुच सका है। वायुमान, जलयान, तैलयान, आदि बनाकर समस्त विश्व में भ्रमण कर रहा है। यह हुआ भौतिक पुरुषार्थ लेकिन वैदिक वाङ्मय केवल भौतिकता में ही जीवन की इतिश्री नहीं मानता। उसे अन्तिम लक्ष्य मोक्ष तक पहुँचाने वाला आध्यात्मिक पुरूषार्थ भी अभिप्रेत है।

भगवान पुरुषार्थी पर कृपा करते हैं और उसे अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचाते हैं, वे आलसी की सहायता नहीं करते इसीलिए कहा है - **न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवा : ऋग्वेद**

ओ३म् - रायोऽवनिर्महान्त्सुपर :सुन्वतः सखा।

तस्मा इन्द्राय गायत- (ऋग्वेद- मं. १-सू.४-मं १०)"[१२]

समस्त चराचर के उत्पादक, रक्षक महान् प्रभु की स्तुति करना भी मानवमात्र का धर्म है, लेकिन स्तुति करने मात्र से प्रभु प्रसन्न नही होते हैं अतः केवल ईश्वरस्तुति से सन्तुष्ट नही होना चाहिए किन्तु उसकी आज्ञा में रहकर और ऐसा समझकर कि परमेश्वर मुझे सर्वत्र देख रहा है। इसीलिए अधर्म मार्ग को छोड़कर धर्म मार्ग सन्मार्ग पर चलते हुए ईश्वर सहाय की इच्छा करनी चाहिए। अर्थ मिल सकता है, काम मिल सकता है यहाँ तक मोक्ष भी मिल सकता है यदि मानव धर्म पर चले तो उसे सदैव सन्मार्ग मे क्रियाशील रहना चाहिए, इसी को पुरूषार्थ कहा है। इसी पुरुषार्थ से पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि होती है।

ओ३म्-त्वं सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः।

इन्द्र ज्येष्ठ्याय सुक्रतो । (ऋग्वेद म. १-सू.५-मं ६)"[१३]

उक्त मन्त्र में परमेश्वर मनुष्य को विश्व में विद्यमान सभी पदार्थो का अपनी मेधाबुद्धि से ज्ञान प्राप्त करके पुरुषार्थ द्वारा उनसे लाभ उठाकर अन्यों का भी हित करने का आदेश देते हैं। साथ ही यह भी कहते हैं कि जब तक मनुष्य उद्यम नही करता आलसी बना रहता है तब तक वह मनुष्य कहलाने का अधिकारी नहीं होता और किसी प्रकार की सुख, शान्ति एवं सन्तुष्टि भी नहीं पा सकता अतः श्रमनिष्ठा पुरुषार्थ चतुष्टय की पूर्तता के लिए आवश्यक है।

ओ३म्- आत्वा विशन्त्वाशवः सोमासः इन्द्र गिर्वणः।

शन्ते सन्तु प्रचेतसे।।(ऋ.मं.१-सू.५-मं ७)"[१४]

अपने पुरुषार्थ से, बुद्धिबल से एवं ज्ञान से जो अपना और समस्त विश्व का कल्याण करते हैं। ईश्वर ऐसे मनुष्यों को आशीष देता है। ईश का आशीष कोई सामान्य नहीं होता अतः उसको कोई विरला ही श्रमशील पा सकता है। मनुष्य को रात्रि के

चौथे प्रहर में अर्थात ३ से ६ बजे तक उठकर आलस्य का त्याग करके स्फुर्ती से अज्ञान और दरिद्रता के विनाश हेतु प्रयत्नशील रहना चाहिए। नित्य नूतन सत्कार्य करना विश्वधर्म है यह इस मन्त्र का आशय है।

एक हिन्दी कवि ने कहा है-

हर रात के पिछले पहरे में इक दौलत लुटती रहती है,

जो जागता है वह पाता है जो सोता है वह खोता है।।

अतः ब्रह्ममहूर्त में उठना विश्वधर्म है। उस समय

पशु-पक्षी भी नही सोते हैं सारी प्रकृति प्रफुल्लित होती है

स्वर्णिम उषा देवी का आगमन सूर्यदेव के साथ होता है उसका आनन्द से स्वागत करना हमारा धर्म है।

Early to bed and early to rise

Make a man healthy whelthy and wise.

संस्कृत में अतीव सुन्दर उल्लेख मिलता है-

ब्रह्ममुहूर्ते प्रबुद्धेत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्

चतुर्थ विध पुरुषार्थों में जो दो पुरुषार्थ हैं - धर्म और अर्थ

इनका चिन्तन प्रातः शीघ्र उठकर करना चाहिए

एक कवि ने अत्यन्त सुन्दर शब्दों में कहा है-

प्रातः काल उठकर प्रभु गुण गा

वेद अनुसार निज जीवन बना

पाया तूने मानव का प्यारा प्यारा चोला है

मिलता न बारबार बड़ा अनमोला है २

पाप न कमा इसे दाग न लगा

वेद अनुसार जिन जीवन बना

कुछ तो विचार कर दुनियाँ में आया क्यों ?

खाने पीने सोने मे ही जीवन गँवाया क्यों ?

हीरा ये जीव, को न धूल में मिला वेद....

धर्म का सम्बन्ध मानव मात्र से है किसी व्यक्ति या जाति विशेष से नहीं है। धर्म ध्रुव अखण्ड है, इसे खण्ड २ किया जा रहा है। वैदिक वाङ्मय के माध्यम से वेदमन्त्रों का शंखनाद करके धर्म सम्बन्धी अज्ञान - अन्धकार को दूर करके इस अज्ञान निशा को मिटाने के लिए धर्म सूर्य की नितान्त आवश्यकता है।

ईश्वर के अनुग्रह और अपने पुरुषार्थ से आत्मा और शरीर के सुख के लिए विद्या और ऐश्वर्य की प्राप्ति, उनकी रक्षा उन्नति तथा सत्य मार्ग का अनुसरण दानादि धर्म सदैव करने चाहिएँ। जिससे दारिद्र्य और आलस्य से उत्पन्न होने वाले दु:खों का नाश होकर उत्तम-उत्तम पदार्थो की प्राप्ति और वृद्धि हो सके। मनुष्यों को इस सृष्टि में परमेश्वर की आज्ञा के अनुकूल चलने तथा परुषार्थी होकर, यशस्वी होकर जीने से समस्त सुखों की प्राप्ति होती है क्योंकि ईश्वर ने पुरूषार्थी सज्जनों के लिए ही समस्त सुख बनाये हैं । अत: परिश्रम से उन्हें प्राप्त करना विश्वधर्म है।

ओं संमरिन्द्र .. (ऋग्वेद म.१-सू.९म ७)"[१५]

ब्रह्मचर्य का पालन भी बहुत बड़ा पुरूषार्थ है। इसके अभाव से आज संसार में अनाचार, व्यभिचार, असंयम, आदि अधर्म अपनी सीमा पार कर चुके हैं। वैदिक वाङ्मयस्थ धर्म आज विश्व का सबसे महत्त्वपूर्ण पालनीय धर्म है।

मुण्डकोपनिषद् की तृतीय वल्ली में कहा है मानव का अन्तिम लक्ष्य परमात्मा की प्राप्ति सत्य के बिना नहीं हो सकती। इस लक्ष्य को पाने के लिए सत्य, तप, ज्ञान तथा ब्रह्मचर्य की आवश्यकता है। इस प्रकार सत्य, तप तथा ज्ञान ब्रह्मचर्य का पालन विश्वधर्म है।

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यक् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्। अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रोऽयं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः।

(मुण्डकोपनिषद् - तृ.वल्ली ५-४८-पृ. क्रमांक ६३ उपनिषद्र् प्रकाश)[१६]

सत्य से तप से सम्यक् ज्ञान से ब्रह्मचर्य से जिनके काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि सभी दोष नष्ट हो चुके हैं, ऐसे पवित्रात्मा को ही उस जगत् के अस्तित्व के दर्शन होते हैं। अतःउपनिषद् में कहा है- अन्तिम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति हेतु सच्चिन्तन, सद्वचन, तथा सत्कर्म आवश्यक है। इसी के साथ तप सुख-दुःख सभी अवस्थाओं में सम रहना सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति तथा जीवन का सारभूत ब्रह्मचर्य का पालन करना विश्वधर्म है।

जो मनुष्य सत्य पर चलता है, सत्य ही बोलता है, सत्य ही मानता है, मनुष्य को जीवन में सफल होने के लिए सत्य का आश्रय लेना पड़ता है। असत्य कभी विजयी नही होता है। अतः सत्य धर्म का पालन आवश्यक है। उपनिषद् में कहा है-

सत्यमेव जयति नानृतम् सत्येन पन्था वितथो देवयानः। येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम् । उपनिषद् प्रकाश - मुण्डकोपनिषद् तृ. वल्ली (६/४९ पृ. ६४)। [१७]

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्मपश्चाद् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण अधश्चोर्ध्वच प्रस्तृतं ब्रह्मैवेदं विश्चमिदं वरिष्ठम् (उप.प्र.मु.द्वि.व. ११ -४३-५६)[१८]

ब्रह्म अविनाशी है वह आगे,पीछे, दक्षिण, उत्तर, ऊपर, नीचे, सभी स्थानों पर विद्यमान है जो यह जान लेता है वह कभी अधर्म नहीं कर सकता अतः धर्म की रक्षा हेतु परमेश्वर को जानना विश्वधर्म है।

परमात्मा को जान लेने पर सभी संशय नष्ट हो जाते हैं। संशय रहित जीवन सफल होता है। संशययुक्त जीवन कभी सफल नहीं होता।

अतः उपनिषद् में कहा है-

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व संशया। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे (उप.प्र.मुण्डको -८-४०- पृ.५२)"[१९]

''वेदों में विश्वकल्याण की कामना''

ओं- अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।

होतारं रत्नधातमम् (ऋग्वेद १-१-१)"[२०]

अनादि काल से अनन्त काल तक समस्त विश्व का कल्याण करने वाले, सभी प्रकार की विद्याएँ शिल्प कलाएँ दर्शानेवाले, सभी वसन्तादि षड्ऋतुओं में सुन्दर तथा मधुर पदार्थो को देने वाले, रमणीय रत्नों का पोषण करने वाले, प्रकाशमय प्रभु की मैं उपासक स्तुति करता हूँ क्योंकि वह हम सब का दाता है, पोषक, रक्षक है, कल्याण कारक है हम सभ को उसकी आराधना करनी चाहिए यह मानव का धर्म है

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव।

सच स्वा नः स्वस्तये (ऋग्वेद मं १ - सू.१- मन्त्र-९)"[२१]

हे ज्ञानमय प्रभो! जिस प्रकार पिता अपने पुत्र का कल्याण चाहता है, उसे सुखदायक कर्मों में नियुक्त करता है। उसी प्रकार हम सब भी आपकी सन्तान हैं अतः हमारे लिए सुख कारक पदार्थो को प्रदान कीजिए और कल्याण कारक पथ के पथिक बनने

के लिए सद्बुद्धि दीजिए। अपने पिता से माँगना भी हमारा धर्म है। हम जब तक माँ को, भोजन नहीं मांगते तब तक वह कैसे जानेगी हमे भूख लगी है। वह माता है, पिता है, भर्ता है, बन्धु है सखा है वह निश्चित ही हमारा कल्याण करनेवाला है। आवश्यकता है केवल सन्मार्ग पर चलते हुए (अग्ने नय सुपथराये कहने की फिर देखें वह सुख की वृष्टि कर देगा। प्रसिद्ध भजनोपदेशक सत्यपाल पथिक जीने अपनी काव्य पंक्तियों में सुन्दर प्रार्थना की है।

हे देव उपास्य उपसक के सब पाप दुरित दुःख दूर करो

हम भद्र कहें और भद्र सुनें और भद्र करें सद्बुद्धि दो

सद्ज्ञान विवेक समृद्धि दो । तन धन की मन की शुद्धि दो सब ऋद्धि - वृद्धि सिद्धि दो... (सत्यपाल पथिक)

इन मर्मस्पर्शी प्रार्थनाओं के साथ यदि हम श्रम करेंगे सत्पथ पर चलेंगे तो निश्चित ही विश्व का कल्याण होगा.

सन्देह लेशोऽपिन विद्यतेऽत्र

ओं.स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देणव्यदितिनर्वणः

स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावा पृथिवी सुचेतुना

(ऋग्वेद मं-५- सू ५१ मं ११)"[२२]

हे प्रभो! समस्त विश्व को सन्मार्ग दिखाने वाले तथ अहर्निश ज्ञानदान करनेवाले अध्यापक एवं उपदेशक हम सबको सन्मार्ग दिखायें । सुसंस्कारों से सम्पन्न बनायें, वायु सुख कारक हो,। निरन्तर प्रकश देनेवाली विद्युत हम निर्धनों को सम्पन्न बनाए। अन्न देकर सब के प्राणों का रक्षक मेघ समय पर बरसे उचित मात्रा में बरसे हमारा कल्याण करे अतिवृष्टि, अनावृष्टी न हो। विश्व में दुर्भिक्ष न हों। शिक्षक अपने कर्तव्य धर्म को समझकर उत्तमोत्तम छात्रों का निर्माण करें। वायु आंधी के रूप में उग्र रुप न धारण करें जिससे विनाश से बच सके हमें शीतलता देनेवाली हो।

विद्युत से हमें कोई हानि न हो। विविध स्थानों पर कार्यसहायक बनें हम देखते हैं कि आज विद्युत के बिना कोई कार्य नहीं होता। अतः ऐसी आवश्यक विद्युल्लता हमारा कल्याण करे।

निष्कर्ष - वायु, अग्नि, मेघ, ये सभी प्राकृतिक देवता सुखदायी हों। सत्यधर्म के पालन से यह सम्भव है।

अश्विनौ - अध्यापक एवं उपदेशक

संस्कृत में अध्यापक को आचार्य कहते हैं यास्काराचार्यने निरूक्तशास्त्र में आचार्य शब्द की व्याख्या दी है-

आचारं ग्राहयति इति आचार्यः।

आचिनोति अर्थान् इति आचार्यः।

आचिनोति बुद्धिमिति आचार्यः।

सदाचार,सद्बुद्धि एवं सभी विद्याओं का ज्ञान यदि हमारे पास है तो निश्चित कल्याण ही कल्याण है।

वैदिक वाङ्मय भारतीय संस्कृति और जन मानस में सदियों से विरासत के रूप में विद्यमान है। इसमें कोई शंका नही है, वैदिक वाङ्मय में विश्व की एकता एवं आखण्डता के भाव सर्वत्र स्यूत है। इस का एक एक अवयव प्रत्येक ज्ञान प्रत्येक शिक्षा एवं वैश्विक एकता एवं अखण्डता का पाठ पढाता है। वैश्विक एकता के लिए आपस में सौहार्द, मानवता, उदारता अहिंसा, धर्माचरण, परोपकार, कर्तव्य, त्याग आदि के सम्बन्ध में हमारे वाङ्मय में जिस गम्भीरता के साथ चिन्तन एवं मनन हुआ है, वह सम्पूर्ण विश्व के लिए

ग्राह्य है। हमारी परम्परा ने कभी भी ऐसा दृष्टिकोण प्रस्तुत नहीं किया जो मानवता के लिए, मानव कल्याण के लिए प्रतिकूल हो। इसकी शिक्षा है-

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत।

उत्तष्ठ ब्रह्मणस्पते ! देवान् यज्ञेन बोधय।

उठो, जागो और श्रेष्ठ मनीषियों से कर्तव्य की शिक्षा ग्रहण करो। अपने साहित्य, भाषागत सौन्दर्य, गाम्भीर्य, दार्शनिक चिन्तन, नैतिक आदर्श, वैज्ञानिकता तथा परिष्कृत जीवन मूल्यों की निधि के कारण वैदिक वाङ्मय मात्र अतीत की धरोंहर नही है आज भी उसमें आचार-विचार व्यवहार की ऐसी उत्कृष्ट सुपरीक्षित प्रणाली है जो अधिक सशक्त ढंग से विश्व में परिवर्तन की भूमिका निभा सकती है विभिन्न विकृतियों से ग्रस्त विश्व को सन्मार्ग पर लाने हेतु संजीवनी सिद्ध हो सकती है।

भारतीय संस्कृति के विकास में अपनी प्राचीनता , अपनी बहुमुखी, उपादेयता, तथा व्यापक प्रभाव के कारण वैदिक वाङ्मय का स्थान अद्वितीय है। वैदिक सामाजिक संगठन सर्वथा मानवीय उदात्त भावनाओं तथा नैतिक सिद्धान्तों पर आधारित है। उस आदर्श की उपलब्धि ही जीवन का चरम लक्ष्य है। सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय में व्यष्टि-समष्टि के उत्थान की भावना अन्तर्निहित है।

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्स्वसारमुत स्वसा। (अथर्ववेद ३-३०-३)"[२३]

सम्यञ्च सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रा।।

भाई भाई से प्रेम करे बहन बहन का द्वेष न करे आपस में सब मिल जूल कर रहें। मीठी एवं कल्याण करक भद्र वाणी बोलें तो सभी का कल्याण हो सकता है। वेदों में प्रकृति को हमारे लिए कल्याण कारक अर्थात् हमें शान्ति दायिनी होने की प्रार्थना की है।

यथा

ओं - द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिः

वनस्पतयः शान्तिः विश्वे देवाः शान्तिः ब्रह्मशान्तिः सर्वं शान्तिः

शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधिः (यजुःɜ६-१७)"[२४]

द्युलोक, अन्तरिक्षलोक भूलोक अर्थात् त्रिभुवन हमारे लिए शान्ति दायक हो, जल हमें शान्ति दे, वनस्पतियाँ शान्ति दे, सूर्य, चन्द्रादि सभी देवतागण हमें शान्ति प्रदान करें। वह ब्रह्मदेव अर्थात् इस विशाल विश्व का विष्णु परमेश्वर हमारे जीवन को शान्तिर्मय बनाये।

सर्वत्र शान्ति का ही साम्राज्य हो और वह शान्ति जन - जन में ओत प्रोत हो।

द्यौःद्युत- दीप्तौ- अन्तर पूर्वक इक्ष- दर्शने- पृथिवी- पृथु-विस्तारे- आपः आप्लृ-व्याप्तौ-शान्तिः शमु- उपशमे।।

मनुष्य का शरीर नश्वर है परन्तु वह मरणोत्तर कीर्ति के रूप में विद्यमान रहता हैं अतः कीर्ति के लिए वेदों में आदेश है-

ओं-शतहस्त समाहार सहस्त्र हस्त संकिर।

कृतस्य कार्यं चेह स्फीतिं समावह।। (अथर्ववेद ɜ-२४-५)"[२५]

मनुष्य जीवन मे दानादि कर्मो के द्वारा लोक में यश प्राप्त करता है और आयु समाप्ति पर भी शरीर नष्ट हो जाने पर भी वह अपने पुण्य कर्मो द्वारा किर्ती रूप में विद्यमान रहता है।

कीर्ति यस्य स जीवति

जिसकी कीर्ति है वह मरकर भी अमर है।

ओं- न भोजा मुमुर्न न्यर्थमीयुर्नरिष्यन्ति न व्यथन्ते ह भोजाः।

इदं यद् विश्वं भुवनं स्वश्चैतत् सर्वं दक्षिणेभ्यो ददाति।।

(ऋग्वेद -१०-१०-७)"[२६]

दान कर्म वेदों की महत्त्वपूर्ण शिक्षा है। इससे समाज में मैत्री और उदारता की भावना बढ़ती है। लोग परस्पर एक दूसरे की सहायता करते हैं। जो वेदों की इन शिक्षाओं की उपेक्षा करता है वह मूर्ख और पापी है उसे अपना कल्याण मार्ग ही समझ में नहीं आता है। स्वार्थ के साथ परमार्थ भी आवश्यक है तभी जीवन परिपूर्ण एवं सफल हो सकता है।

अथर्ववेद में भी कहा है- दक्षिणावन्तोऽमृतं भजन्ते - अथर्व

दानी मनुष्य मोक्ष पा लेता है। मोक्ष पाना जीवन का अन्तिम लक्ष्य है।

इसी प्रकार लोककल्याण कारक अनेक उपदेश एवं आदेश वैदिक वाङ्मय मे हैं

वेदों में सत्य, अहिंसा, अतिथिसत्कार आदि करणीय एवं ईर्ष्या- द्वेष काम-क्रोध, द्युतक्रीडा आदि को अकरणीय कर्म कहा हैं ।

१) सत्य -

ओं - सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्योणोत्तभिताः द्यौः।

ऋतेनादित्यातिष्ठन्ति दिविसोमो अधिश्रितः।। (अथर्व - १४-१)"[२७]

सत्य से सृष्टि का संचालन हो रहा है। सत्य से पृथिवी, सूर्य द्युलोक, सभी एक दूसरे साथ सहयोग कर रहे हैं। सत्य से समाज में विश्वास स्थिर है। लोक एक-दूसरे के प्रति विश्वास के कारण सहयोगात्मक व्यवहार करते हैं। समाजमें यदि सत्य की स्थिति नही होती तो कोई किसी पर विश्वास नहीं करता और कोई किसी से नहीं जुड़ता। बिखरे हुए एक एक का कल्याण नहीं हो सकता अतः एक होकर सन्मार्ग पर चलते हुए कल्याण की ओर बढ़ना विश्वकर्तव्य है।

२- अहिंसा - ओं मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं

मा न उक्षन्तामुत मा न उक्षितम्। (यजुः१६-१५)"[२८]

इस मन्त्र में अहिंसा की शिक्षा दी गई है हिंसक से कहा जा रहा है वह हमारे बच्चों , बड़ो को भाई बहनों को अर्थात् किसी को भी न मारे जिससे वह पुण्यात्मा बन जाये हिंसा पाप है अहिंसा पुण्य है। हिंसा - अधर्म है अहिंसा धर्म है।

सम्प्रति समाज में हिंसा सर्वत्र दृग्गोचर हो रही है कभी सम्पत्ति के नाम पर कभी चरित्र के नाम पर कभी आतंक वाद के रूप में कभी कौटुम्बिक कलह के रूप त्राहि त्राहि हो रही है। यदि हमें व्यक्ति परिवार, ग्राम, मण्डल, अनुमण्डल राज्य एवं राष्ट्र से प्रेम है तो हिंसा से दूर हटकर वैदिक वाङ्मय की शरण में आना होगा उसमें लिखित मन्त्रादेशों का पालन करना होगा तभी हम अहिंसा के पुजारी बनकर शान्ति देवी की गोद में निश्चिन्त रह सकते है चैन की निद्रा का सुख पा सकते है।

त्याज्यकर्म -

लोककल्याण की सुसम्बद्धता के लिए ऋषियों ने उन दुर्बल कर्मों का त्याग करने की ओर संकेत किया है, जो न तो व्यक्ति के लिए और न ही समाज के लिए सुखावह हैं।

१) ईर्ष्या-

ओं यथा भूमिमृतमना, मृतान्मृतमनस्तरा।

यथोत मम्रुषो मन, त्वेण्र्योमतं मनः (अथर्व-६-१८-२)[२९]

ईर्ष्या करने वाले का मन मरा हुआ होता है, ईर्ष्या सात्विक भावना को नष्ट करती है और तामसिक भावना को प्रबल करती है। समाज में सहिष्णुता, सौहार्द आदि उदात्त भावनाओं का नाश होत जाता है और हिंसादि का प्रसरण होता है।

अतः ईर्ष्या त्याज्य है।

२) द्वेष - ओं-न तमंहो न दुरितं देवासो अष्ट मर्त्यम्।

सजोषसो यमर्यमा मित्रो नयन्ति वरूणो अति द्विषः।। (ऋग्वेद - १०-२६-१)[३०]

द्वेष शत्रुत्व निर्माण करता है, वह एक मानसिक रोग है किसी मनुष्य ने उत्तम औषधी खाई पर दूसरे के लिए मन में वैर है तो ऐसे अशान्त व्यक्ति को औषधि से काई लाभ नही होता क्योंकि उसके अन्त:करण में तो द्वेष रूपी अग्नि जलरही है। जो द्वेष करता है उसका मन मलीनता से लिप्त रहता है। उस पर उस परमेश्वर की कोई कृपा दृष्टि नही होती। ईश्वरीय व्यवस्था के अनुसार उसे अनन्त दु:ख भोगने पड़ते है। स्व पर हित चाहते हुए हमें द्वेष को तिलाञ्जलि दे देनी चाहिए यह हम सबका धर्म है कर्तव्य है।

३) काम क्रोधादि- उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम्।

सपर्ण यातुमुत गृध्रयातुं दृषेव प्र म्रण रक्ष इन्द्र (अथर्व - ८-१४-२२)[३१]

यहाँ पर उल्लू, भेडिये, कुत्ते, चकवापक्षी, गरुडपक्षी तथा गृध्र पक्षी के उदाहरणों से समझाया गया है कि इनके तुल्य जो कुटिल भाव हैं उनका सर्वथा परित्याग कर देना चाहिए अन्यथा आत्मनाश से विश्व नाश भी हो जाता है। इस त्याज्य भावनाको मन से बलपूर्वक सदसद् विवेक के साथ छोड़ देना चाहिए। ये काम, क्रोध,मोह, मद, लोभ, ईर्ष्या द्वेषादि दोष मन को मधुर लगते है अत: मन सरलता से इन्हें छोड़ने को तैयार नहीं होता इसीलिए बलपूर्वक आत्मशक्ति को जगा कर दोषों का त्याग करने से कल्याण सम्भव है।

४. द्युतक्रीडा -

जाया तप्यते कितवस्य हीना,

माता पुत्रस्य चरतः क्व स्वित् ।

ऋणावा बिभ्यद् धनमिच्छमानोः

द्युतक्रीडा करनेवाले जुआरी की पत्नी माता-पिता दु:खी होते हैं। जुआरी सभी मर्यादाओं को छोड़कर, चोरी आदि सभी दुर्गुणों में फँस जाता हैं। इस प्रकार के पथभ्रष्ट लोग परिवार, समाज, राष्ट्र एवं विश्व को विनाश गर्त में धकेल कर केवल करूण क्रन्दन

करते हैं। वेद निर्देश करता है कि स्वपर कल्याण हेतु मानवीय मर्यादाओं का पालन करना आवश्यक है। वैदिक मानव सम्पूर्ण विश्व को मैत्री की भावना से देखना चाहता है ।

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे

मित्रस्य चक्षुषा समीक्षा महे।

सर्वा आ मम मित्रंभवन्तु (यजु:३६-१८)"[३२]

संदर्भ सूची :

१. अथर्ववेद १०-१-३२, क्षेमकरणदास त्रिवेदी, अथर्व हिन्दी भाष्य

२. ऋग्वेद १०-१३४-७, म.द.स. ऋग्वेद हिन्दी भाष्य

३. स्वामी वेदानन्दतीर्थ, स्वाध्यायसन्दोह, पृ २०

४. ऋग्वेद १-३१-४, म.द.स. ऋग्वेद हिन्दी भाष्य

५. कठोप १-१-२०

६. अथर्व. ११-१-१, क्षेमकरणदास त्रिवेदी अथर्व हिन्दी भाष्य

७. अथर्व. १४-१-१, क्षेमकरणदास त्रिवेदी अथर्व हिन्दी भाष्य

८. ऋग्वेद १-६५-२, म.द.स., ऋ.हिन्दी भाष्य

९. ऋग्वेद ४-१३-१०, म.द.स., ऋ.हिन्दी भाष्य

१०. अथर्व १९-४१-१, क्षेमकरणदास त्रिवेदी, अथर्व. हिन्दी भाष्य

११. ऋग्वेद १-४-७, म.द.स. , ऋग्वेद हिन्दी भाष्य

१२. ऋग्वेद, १-४-१०, म.द.स. , ऋग्वेद हिन्दी भाष्य

१३. ऋग्वेद १- सू. ५ मं. ६, म.द.स. , ऋग्वेद हिन्दी भाष्य

१४. ऋ. मं.१ सू.५ मं. ७, म.द.स. , ऋग्वेद हिन्दी भाष्य

१५. ऋग्वेद १-९-७, म.द.स. , ऋग्वेद हिन्दी भाष्य

१६. मु.३-५-४८, दयानन्द स्वामी, उपनिषद् प्रकाश, पृ. ६३

१७. मु. ३-६-४९, दयानन्द स्वामी, उपनिषद् प्रकाश, पृ. ६४

१८. उप.प्र.मु.२ व. ११-४३-५६, दयानन्द स्वामी, उपनिषद् प्रकाश,

१९. उप.प्र.मु.८-४० दयानन्द स्वामी, उपनिषद् प्रकाश, पृ.५२

२०. ऋग्वेद १-१-१-, म.द.स, ऋ.हिन्दी.भाष्य

२१. ऋग्वेद १-१-९-, म.द.स, ऋ.हिन्दी.भाष्य

२२. ऋग्वेद ५-५१-११, म.द.स, ऋ.हिन्दी.भाष्य

२३. अथर्व- ३-३०-३, क्षेमकरणदास त्रिवेदी, अथर्व हि.भा.

२४. यजु: ३६-१७, म.द.स., ऋ.हि.भा.भाष्य

२५. अथर्व- ३-२४-५, क्षेमकरणदास त्रिवेदी, अथर्व हि.भा.

२६. ऋग्वेद १४-१, क्षेमकरणदास , अथर्व हि. भा.

२७. अथर्व- १४-१, क्षेमकरणदास त्रिवेदी, अथर्व हि.भा.

२८. यजु: १६-१५, म.द.स. यजु: हि.भा.भाष्य

२९. अथर्व ६-१८-२, क्षेमकरणदास त्रिवेदी, अथर्व हि.भा.

३०. ऋग्वेद १०-२६-१, म.द.स., ऋ.हि.भा.भाष्य

३१. अथर्व- ८-१४-२२, क्षेमकरणदास त्रिवेदी, अथर्व हि.भा.

३२. यजु: ३६-१८, म.द.स. यजु. हि.भाषा भाष्य.

*****

संदर्भ ग्रंथसूची

१. उप.प्र.मु.२ व. ११-४३-५६, दयानन्द स्वामी, उपनिषद् प्रकाश.

२. उप.प्र.मु.८-४० दयानन्द स्वामी, उपनिषद् प्रकाश.

३. उपनयन सं., महर्षि दयानन्द स. विधि.

४. अथर्ववेद-३-५६-६५, क्षेमकरणदास त्रिवेदी , अथर्ववेद हिन्दी भाष्य, ११४०

५. अथर्व-२०-११०-२, क्षेमकरणदास त्रिवेदी, अथर्ववेद-हिन्दी भाष्य

६. आश्वलायन गृह्यसूत्र तथा पास्कर गृह्यसूत्र संस्कार विधि.

७. कठोप - ५-१२, महर्षि दयानन्द सरस्वती- ऋग्वेद हिन्दी भाष्य

८. गीता -२-५०

९. चरैवेति २ ऐतरेय ब्राह्मण ३३ वाँ अध्याय- डॉ. सुधाकर मालवीय : ऐतरेय ब्राह्मण

१०. छान्दोग्य उप. ४-४, उपनिषद अंक.

११. तैत्तिरीयोपनिषद् १-९, महर्षि दयानन्द सरस्वती, ऋग्वेद हिन्दी भाष्य

१२. न्याय ४-२-४६, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्.

१३. पशुयज्ञ मिमांसा डॉ. कृष्णा महाभारत शा.प.२६३,६

१४. परिच्छेद : महर्षि दयानन्द सरस्वती, संस्कार विधि.

१५. पूर्वमीमांसा जैमिनिदर्शन १-१-२, जगदीश्वरानन्द षड्दर्शनम्.

१६. पारस्कर गृह्यसूत्र संस्कार विधि.

१७. मु. ३-६-४९, दयानन्द स्वामी, उपनिषद् प्रकाश.

१८. मु.१-१-७, सिद्धरामेश्वर शास्त्री, म.भा.

१९. मु.३-५-४८, दयानन्द स्वामी, उपनिषद् प्रकाश.

२०. मैत्रयणी आरण्यक -६-९

२१. मैत्रायणी ब्राह्मण १-५-२४

२२. मैथिली शरणगुप्त, भारत भारती

२३. माण्डूक्य-७

२४. मनु. अ. ६-२ पं. तुलसीराम स्वामी मनुभाषानुवाद.

२५. मनुस्मृति अ. ६-९२- तुलसीरामस्वामी, मनु:भाषानुवाद.

२६. मानव की सेवा में, विश्व के प्रमुख धर्म.

२७. बृहद् आ. ४-५-६

२८. बृहदारण्यक - ४-५-३

२९. बृहदारण्यक उप-४-५-३

३०. भागवद्गीता तृ.३.श्लो.१२

३१. यजुर्वेद अ. २० मन्त्र - २९, महर्षि दयानन्द सरस्वती, यजु: भाषा भाष्य

३२. यजुर्वेद -३१-१८,महर्षि दयानन्द सरस्वती- ऋग्वेद हिन्दी भाष्य

३३. यो.द.सा.पा.सू. ३६, जगदीश्वरानन्द, षड्दर्शनम्

३४. याज्ञ वल्क्य स्मृति,१-७

३५. वेदा. १-१, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्,

३६. स्वस्त्यायन स्मारिका सविता आर्या पृ.८२,८३

३७. सं.चन्द्रिका , भीम सेन शर्मा, आत्माराम अमृतसरी.

३८. सामवेद- उत्तरार्चिक, पं. तुलसीरामस्वामी साम हिन्दी भाषा भाष्य

३९. सामवेद ४-४२

४०. संस्कार चन्द्रिका, भीमसेन शर्मा.

४१. सांख्यदर्शन १-७१, जगदीश्वरानंद, षड्दर्शनम्.

४२. शतपथ ब्राह्मण -१-७-३-५

४३. श्वेता श्वेतादोपनिषद् उपनिषद् अंक

४४. ऋग्वेद-१०-१५४-२, महर्षि दयानन्द सरस्वती, ऋग्वेद हिन्दी भाष्य.

*****

परिशिष्ट

वैदिक वाङ्मय ग्रन्थ सूचि

१. वेद

१.ऋग्वेद २. यजुर्वेद ३. सामवेद ४. अथर्ववेद

२. उपवेद

१. अर्थवेद २.धनुर्वेद ३.गन्धर्ववेद ४. आयुर्वेद

३. ब्राह्मण

१.ऐतरेय २.कौषीतकि ३.तांड्य ४. षड्विंश ५. जैमिनीय

६. सामविधान ७.पूर्व गोपथ ८. उत्तर गोपथ ९. शतपथ

४. आरण्यक

१. ऐतरेय २. शांखायन ३.तैत्तिरीय ४.मैत्रायणीय ५. तवलकार

६.बृहदारण्यक

५. उपनिषद

१. ईश २. केन ३. कठ ४.प्रश्न ५.मुण्डक ६.माण्डूक्य

७. ऐतरेय ८.तैत्तिरीय ९. बृहद १०. छान्दोग्य ११. श्वेताश्वेतर

६. वेदांग

१.शिक्षा २.कल्प ३.व्याकरण ४.निरूक्त ५.छन्द ६.ज्योतिष

७. दर्शनशास्त्र

१. योगदर्शन २.सांख्यदर्शन ३. न्यायदर्शन ४. मीमांसादर्शन ५.वैशेषिक दर्शन

६. वेदान्तदर्शन

*****